सूर्यकुमारी पुस्तकमाला—३

संपादक—चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०

शशांक

अर्थात्

श्रीयुत राखालदास वंद्योपाध्याय, एम० ए०, के शशांक
नामक बँगला उपन्यास का हिंदी अनुवाद

अनुवादक

रामचंद्र शुक्ल

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

संवत् २०१२] [मूल्य २॥)

मुद्रक—महताब राय
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
संवत् २०१२ : तृतीय संस्करण १५००

परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्रीअजीतसिंह जी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणितशास्त्र में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे। स्वामी जी से घंटों शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंह जी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुख प्रतिभा राजा श्रीअजीतसिंह जी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअजीतसिंह जी की रानी आउआ (मारवाड़) की चांपावत जी के गर्भ से तीन संतति हुईं—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूर्यकुँवर थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्री-नाहरसिंह जी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महा-रावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंह जी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंह जी थे जो राजा श्री अजीतसिंह जी और रानी चांपावत जी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति संचित-कर्मों के परिणाम से दुःखमय हुई। जयसिंह जी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ और सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्रीसूर्यकुँवर बाई जी को एकमात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचाँदकुँवर बाई जी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृ-वियोग और पति-वियोग दोनों का असह्य

दुःख वे झेल रही हैं। उनके एकमात्र चिरजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीरामसिंह जी से मातामह राजा श्रीअजीतसिंह जी का कुल प्रजावान् है।

श्रीमती सूर्यकुमारी जी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी ने उनके जीवनकाल में दूसरा विवाह नहीं किया किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीव वंशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारी जी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाला चमत्कृत रह जाय। स्वर्गवास के कुछ समय पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंद जी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामी जी के लेखों और अध्यात्म, विशेषतः अद्वैत वेदांत, की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निदेशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय निधि की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते न बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार श्री उमेदसिंह जी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार लगभग एक लाख रुपया श्रीमती के इसी संकल्प की पूर्ति के लिये विनियोग किया। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई है। स्वामी विवेकानंद जी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायँगे और लागत से कुछ ही अधिक मूल्य पर सर्वसाधारण के लिये सुलभ होंगे। इस ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी अक्षय निधि में जोड़ दी जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंह जी के पुण्य और यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों का ज्ञान लाभ।

श्रीचंद्रधर शर्मा

भूमिका

यह उपन्यास श्रीयुत राखालदास बंद्योपाध्याय महोदय के बँगला उपन्यास का हिंदी भाषांतर है। राखाल बाबू का संबंध पुरातत्व-विभाग से है। भारत के प्राचीन इतिहास की पूरी जानकारी के साथ साथ दीर्घ कालपटल को भेद अतीत के क्षेत्र में क्रीड़ा करनेवाली कल्पना भी आपको प्राप्त है। अपना स्वरूप भूले हुए हमें बहुत दिन हो गए। अपनी प्रतिभा द्वारा हमारे सामने हिंदुओं के पूर्व जीवन के माधुर्य का चित्र रखकर आपने बड़ा भारी काम किया। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि आपने यह स्पष्ट कर दिया कि प्राचीन काल की घटनाओं को लेकर उनपर नाटक या उपन्यास लिखने के अधिकारी कौन हैं। प्राचीन काल में कैसे कैसे नाम होते थे, कैसा वेश होता था, पद के अनुसार कैसे संबोधन होते थे, राजकर्मचारियों की क्या क्या संज्ञाएँ होती थीं, राजसभाओं में किस प्रकार की शिष्टता बरती जाती थी इन सब बातों का ध्यान रखकर इस उपन्यास की रचना हुई है। यही इसका महत्व है। मुसलमानी या फ़ारसी तमीज़ के क़ायल इसमें यह देख सकते हैं कि हमारी भी अलग शिष्टता थी, अलग सभ्यता थी, पर वह विदेशी प्रभाव से लुप्त हो गई। वे राजसभाएँ न रह गईं। हिंदू राजा भी मुसलमानी दरबारों की नक़ल करने लगे; प्रणाम के स्थान पर सलाम होने लगा। हमारा पुराना शिष्टाचार अंतर्हित हो गया और हम समझने लगे कि हम में कभी शिष्टाचार था ही नहीं।

इस उपन्यास में जो चित्र दिखाया गया है वह गुप्त-साम्राज्य की घटती के दिनों का है जब श्रीकंठ (थानेश्वर) के पुष्यभूति वंश का प्रभाव बढ़ रहा था। प्राचीन भारत के इतिहास में गुप्तवंश उन

प्रतापी राजवंशों में है जिनके एकछत्र राज्य के अंतर्गत किसी समय सारा देश था। कामरूप से लेकर गांधार और वाह्लीक तक और हिमालय से लेकर मालवा, सौराष्ट्र, कलिंग और दक्षिणकोशल तक पराक्रांत गुप्त सम्राटों की विजय पताका फहराती था। इस क्षत्रिय वंश के मूलपुरुष का नाम गुप्त था। इन्हीं गुप्त के पुत्र घटोत्कच हुए जिनके प्रतापी पुत्र प्रथम चंद्रगुप्त लिच्छवी राजवंश की कन्या कुमारदेवी से विवाह कर सन् ३२१ ई० में मगध के सिंहासन पर बैठे और गुप्त वंश के प्रथम सम्राट् हुए। उनके पुत्र परम विजयी समुद्रगुप्त (सन् ३५० ई०) ने अपने साम्राज्य का विस्तार समुद्र से लेकर समुद्र तक बढ़ाया। प्रतिष्ठान (झूँसी) इनके प्रधान गढ़ों में से था जहाँ अब तक इनके कीर्त्तिचिह्न पाये जाते हैं। समुद्रकूप इन्हीं के नाम पर है। इलाहाबाद के किले के भीतर अशोक का जो स्तंभ है उसे मैं समझता हूँ कि इन्हींने कौशांबी से लाकर अपने प्रतिष्ठानपुर के दुर्ग में खड़ा किया था। पीछे मोगलों के समय में झूँसी से उठकर वह इलाहाबाद के किले में आया। इसी स्तंभ पर हरिषेण कृत समुद्रगुप्त की प्रशस्ति अत्यंत सुंदर श्लोकों में अंकित है। समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त (विक्रमादित्य) हुए (सन् ४०१—४१३ ई०) जिन्हें अनेक इतिहासज्ञ कथाओं में प्रसिद्ध विक्रमादित्य मानते हैं। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के पुत्र प्रथम कुमारगुप्त ने ४१५ से ४५५ ई० तक राज्य किया। कुमारगुप्त के पुत्र स्कंदगुप्त के समय में हूणों का आक्रमण हुआ और गुप्त साम्राज्य अस्त-व्यस्त हुआ। स्कंदगुप्त ने ४५५ से ४६७ ई० तक राज्य किया। जान पड़ता है कि हूणों के साथ युद्ध करने में ही इनके जीवन का अंत हुआ। इनकी उपाधि भी विक्रमादित्य थी।

स्कंदगुप्त के पीछे, जैसी कि कुछ लोगों की धारणा है, गुप्तसाम्राज्य एकबारगी नष्ट नहीं हो गया। ईसा की छठी और सातवीं शताब्दी तक गुप्तसाम्राज्य के बने रहने के अनेक प्रमाण पाए जाते हैं। गुप्त

५११ ई० में अरिकिण (एरन) के गोपराज को हम गुप्तसम्राट् की ओर से युद्ध में प्रवृत्त पाते हैं। इसी प्रकार दभाला के राजा संक्षोभ को भी हम सन् ५१८ और ५२८ ई० में गुप्तसम्राट् के सामंत के रूप में पाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि त्रिपुरविषय वा मध्यप्रदेश पर उस समय हूणराज का अधिकार नहीं था। वह प्रदेश गुप्तों की ही अधीनता में था। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि बालादित्य ने तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल को अच्छी तरह ध्वस्त किया। पीछे मंदसोर के जनेंद्र यशोधर्मन् ने सन् ५३३ ई०[1] के पहले ही उसे उत्तर की ओर (काश्मीर में) भगा दिया। इस प्रकार हूणों का उपद्रव सब दिन के लिये शांत हुआ। संक्षोभ के दोनों लेखों से हम मध्यप्रदेश में सन् ५२८ ई० तक गुप्तों का आधिपत्य पाते हैं। इसके उपरांत जान पड़ता है कि यशोधर्मन् प्रबल हुए और उन्होंने बालादित्य के पुत्र वज्र को अधिकारच्युत किया। हुएन्सांग ने भी लिखा है कि मगध और पुंड्रवर्द्धन में वज्र के पीछे मध्यप्रदेश के एक राजा का अधिकार हुआ। गुप्तों के सामंत दत्तवंश वालों का अधिकार उस समय हम पुंड्रवर्द्धन में नहीं पाते हैं। पर यह स्पष्ट है कि यशोधर्मन् का अधिकार बहुत थोड़े दिनों तक रहा क्योंकि सन् ५३३-३४ ई० (गुप्त संवत् २१४) में हम फिर पुंड्रवर्द्धन (उत्तरपूर्व बंगाल) को किसी "गुप्त परमभट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वीपति" के एक सामंत के अधिकार में पाते हैं।

इस काल के पीछे हमें माधवगुप्त के पुत्र परम प्रतापी आदित्यसेन के पूर्वजों के नाम मिलते हैं। आदित्यसेन का जो शिलालेख अफसड़ गाँव (गया जिले में) में मिला है उसके अनुसार उनके पूर्वजों का क्रम इस प्रकार है—

---

(१) विष्णुवर्द्धन के शिलालेख का संवत् जिसमें जनेंद्र यशोधर्मन् की विजय का वर्णन है।

महाराज कृष्णगुप्त, उनके पुत्र श्रीहर्षगुप्त, उनके पुत्र जीवितगुप्त (प्रथम) और उनके पुत्र कुमारगुप्त (तृतीय) हुए जिन्होंने मौखरिराज ईशानवर्मा को पराजित किया। कुमारगुप्त के पुत्र श्रीदामोदरगुप्त भी मौखरी राजाओं से लड़ते रहे। दामोदरगुप्त के पुत्र महासेनगुप्त ने कामरूप के राजा सुस्थितवर्मा को पराजित किया। महासेनगुप्त के पुत्र माधवगुप्त हुए जो श्रीहर्षदेव के सहचर थे। इन्हीं माधवसेन के पुत्र आदित्यसेन हुए।

उपर्युक्त राजाओं में कुमारगुप्त (तृतीय) के काल का पता ईशानवर्मा के हड़हावाले शिलालेख में लग जाता है जिसके अनुसार ईशानवर्मा सन् ५५४ ई० में राज्य करते थे। माधवगुप्त के पूर्वजों के संबंध में यह ठीक ठीक नहीं निश्चित होता कि वे मगध में राज्य करते थे या मालवा में। बाण के हर्षचरित में मालवा के दो राजकुमारों, कुमारगुप्त और माधवगुप्त का, थानेश्वर के राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन का सहचर होना लिखा है—

मालवराजपुत्रौ भ्रातरौ भुजाविव मे शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्तमाधवगुप्तनामानावस्माभिर्भवतोरनुचरत्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ। (हर्षचरित, ४र्थ उच्छ्वास)

माधवगुप्त हर्षवर्द्धन के अत्यंत प्रिय सहचर थे। अपने बहनोई कान्यकुब्ज के राजा ग्रहवर्मा के मालवराज द्वारा और अपने बड़े भाई राज्यवर्द्धन के गौड़ाधिप द्वारा मारे जाने पर जब हर्षवर्द्धन अपनी बहिन राज्यश्री को ढूँढ़ते ढूँढ़ते 'विंध्याटवी' में बौद्ध आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम पर गए थे तब वे अपना दहना हाथ माधवगुप्त के कंधे पर रखे हुए थे—

अवलंब्य···दक्षिणेन हस्तेन च माधवगुप्तमंसे (अष्टम-उच्छ्वास)। माधवगुप्त के हर्ष के सहचर होने का उल्लेख अफसड़ के लेख में भी इस प्रकार है—**श्रीहर्षदेवनिजसंङ्गमवाञ्छया च।**

सारांश यह कि हर्षचरित के अनुसार माधवगुप्त के पिता महासेन-गुप्त मालवा में राज्य करते थे। बाणभट्ट हर्षवर्द्धन के सभा-पंडित थे अतः उनकी बात तो ठीक माननी ही पड़ती है। हो सकता है कि महा-सेनगुप्त पहले स्वयं मालवा में ही रहते रहे हों और मगध में उनका कोई पुत्र या सामंत रहता हो। यह भी संभव हैकि जिस समय बुधगुप्त, भानुगुप्त (बालादित्य) आदि मगध में राज्य करते थे उस समय गुप्त-वंश की दूसरी शाखा, माधवगुप्त के पूर्वज, मालवा में राज्य करते रहे हों। पीछे मौखरियों के यहाँ राज्यवर्द्धन की बहिन राज्यश्री का संबंध हो जाने पर महासेगुनप्त मगध में अपना अधिकार रक्षित रखने के लिये पाटलिपुत्र में रहने लगे हों और उन्होंने मालवा को देवगुप्त के अधि-कार में छोड़ दिया हो। पर कुछ इतिहासवेत्ता माधवगुप्त के पूर्वज कृष्णगुप्त को वज्रगुप्त का भाई मान कर सम्राटों की शृंखला जोड़ कर पूरी कर देते हैं।

हर्षचरित में राज्यवर्द्धन के बहनोई ग्रहवर्मा को मार कर कान्यकुब्ज पर अधिकार करनेवाले और राज्यश्री को कैद करनेवाले मालवराज का नाम स्पष्ट नहीं मिलता। उसमें इस प्रकार इस घटना का उल्लेख है—

देवो ग्रहवर्म्मा दुरात्मना मालवराजेन जीवलोकमात्मनः सुकृतेन सह त्याजितः। भर्तृदारिकापि राज्यश्रीः कालायसनिगड़-युगलचुम्बितचरणा चौराङ्गनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता।

दूसरे स्थल पर भंडि ने कान्यकुब्ज पर अधिकार करनेवाले को 'गुप्त' कहा है—"**देव! देवभूयं गते देवे राज्यवर्द्धने गुप्तनाम्नाच गृहीते कुशस्थले।**" हर्षवर्द्धन के एक ताम्रपत्र में राज्यवर्द्धन का देव-गुप्त नामक राजा को परास्त करना लिखा है। इससे यह अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि ग्रहवर्म्मा को मारनेवाले राजा का नाम देवगुप्त

था। यह घटना महासेनगुप्त के पाटलिपुत्र चले आने के पीछे हुई होगी क्योंकि जिस समय वे मालवा में थे उस समय उनके दो कुमार कुमारगुप्त और माधवगुप्त राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन के सहचर थे। श्रीयुत हेमचंद्र रायचौधरी, एम० ए०, ने अपने लेख में (J. A. S. B. New Series, Vol. XVI. 1920, No. 7) देवगुप्त को महासेनगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र मान लिया है। इस प्रकार उन्होंने महासेन-गुप्त के तीन पुत्र माने हैं—देवगुप्त, कुमारगुप्त और माधवगुप्त। इस मत से कुछ और इतिहासज्ञ भी सहमत हैं।

अब इस उपन्यास के नायक शशांक की ओर आइए। हर्षचरित में राज्यवर्द्धन को धोखे से मारनेवाले गौड़ के राजा का इस प्रकार उल्लेख है—

तस्माच्च हेलानिर्जितमालवानीकमपि गौड़ाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत्।

इसमें गौड़ाधिप के नाम का कोई उल्लेख नहीं है। फिर यह शशांक नाम मिला कहाँ? हर्षचरित की एक टीका शंकर नाम के एक पंडित की है जो ईसा की बारहवीं शताब्दी से पहले हुए हैं। उन्होंने अपनी टीका में गौड़ाधिप का नाम शशांक लिखा है। इस नाम का समर्थन हुएन्सांग के विवरण से भी हो गया है। उसने लिखा है कि राज्यवर्द्धन को शे-शंग-क्यि ने मारा था। शशांक की राजधानी का नाम कर्ण-सुवर्ण भी हुएन्सांग के कि-ए-लो-न-सु-फ-ल-न से निकाला गया है। मुर्शिदाबाद ज़िले के राँगामाटी नामक स्थान में जो भीटे हैं उन्हीं को विद्वानों ने कर्णसुवर्ण का खँड़हर माना है।

यह सब तो ठीक, पर शशांक गुप्तवंश के थे यह कैसे जाना गया? बूलर साहब को हर्षचरित की एक पुरानी पोथी मिली थी जिसमें

गौड़ाधिप का नाम 'नरेन्द्रगुप्त' लिखा था। प्राचीन कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद ज़िले में) के खँडहरों में रविगुप्त, नरेंद्रादित्य, प्रकटादित्य, विष्णुगुप्त आदि कई गुप्तवंशी राजाओं की जो मुहरें मिली हैं उनमें नरेंद्रादित्य के सिक्के नरेंद्रगुप्त या शशांक के ही अनुमान किए गए हैं। इनमें एक ओर तो ध्वजा पर नंदी बना रहता है और राजा के बाएँ हाथ के नीचे दो अक्षर बने होते हैं और दूसरी ओर 'नरेंद्रादित्य' लिखा रहता है। पर इस विषय में ध्यान देने की बात यह है कि ऐसे सिक्के भी मिले हैं जिनमें "श्रीशंशांकः" लिखा हुआ। इन पर एक ओर तो बैल पर बैठे शिव की मूर्त्ति है; बैल के नीचे 'जय' और किनारे पर 'श्रीश' लिखा मिलता है। दूसरी ओर लक्ष्मी की मूर्ति है जिसके एक हाथ में कमल है। लक्ष्मी के दोनों ओर दो हाथी अभिषेक करते हुए बने हैं। बाएं किनारे पर "श्रीशशांक" लिखा है। रोहतासगढ़ के पुराने क़िले में मुहर का एक साँचा मिला है जिसमें दो पंक्तियाँ हैं—एक में "श्रीमहासामंत" और दूसरी में "शशांकदेवस्य" लिखा है। रोहतासगढ़ में यशोधवलदेव का भी लेख है जो इस उपन्यास में महासेनगुप्त और शशांक के सामंत महानायक माने गए हैं। शशांक के गुप्तवंशी होने का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विंसेंट स्मिथ ने भी किया है—

The king of Central Bengal, who was probably a scion of the Gupta dynasy, was a worshipper of Shiva.

इस प्रकार ऐतिहासिक अनुमान तो शशांक को गुप्तवंश का मान कर ही रह जाता है। पर इस उपन्यास के विज्ञ और प्रत्नतत्व-दर्शी लेखक शशांक को महासेनगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र और माधवगुप्त का बड़ा भाई मान कर चले हैं। यदि और कोई उपन्यास-लेखक ऐसा मान कर

चलता तो उसे हम कोरी कल्पना कहते—जिसे उपन्यास या नाटक लिखनेवाले प्रायः अपने अधिकार के भीतर समझते हैं—पर राखालबाबू ऐसे पुरातत्व-व्यवसायी के इस मानने को हमें अनुमान कोटि के भीतर ही रखना पड़ता है। भारत के इतिहास में वह काल ही ऐसा है जिसमें अनुमान की बहुत जगह है। देवगुप्त किस प्रकार महासेनगुप्त के पुत्र अनुमित हुए हैं इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

सन् ६०६ ई० में राज्यवर्द्धन मारे गए और हर्षवर्द्धन थानेश्वर के राजसिंहासन पर बैठे। इस काल में हम शशांक को गौड़ या कर्ण-सुवर्ण का अधीश्वर पाते हैं। अपने बड़े भाई के बध का बदला लेने के निमित्त हर्ष के चढ़ाई करने का उल्लेख भर बाण ने अपने हर्षचरित में किया है। यहीं पर उनकी आख्यायिका समाप्त हो जाती है। इससे निश्चय है कि मगध और गौड़ पर अधिकार तो उन्होंने किया पर शशांक को वे नहीं पा सके। गंजाम के पास सन् ६१९–२० का एक दानपत्र मिला है जो शशांक के एक सामंत सैन्यभीति का है। इससे जान पड़ता है कि माधवगुप्त के मगध में प्रतिष्ठित हो जाने पर वे दक्षिण की ओर चले गए और कलिंग, दक्षिण कोशल आदि पर राज्य करते रहे। सन् ६२० में हर्षवर्द्धन परम प्रतापी चालुक्यराज द्वितीय पुलकेशी के हाथ से गहरी हार खाकर लौटे थे। ६२० के कितने पहले शशांक दक्षिण में गए इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सकता। सन् ६३० ई० में चीनी यात्री हुएन्सांग भारतवर्ष में आया और १४ वर्ष रहा। उस समय शशांक कर्णसुवर्ण में नहीं थे। शशांक कब तक जीवित रहे इसके जानने का भी कोई साधन नहीं है। हर्षवर्द्धन से अवस्था में शशांक बहुत बड़े थे। हर्षवर्द्धन की मृत्यु सन् ६४७ या ६४८ में हुई। इसके पहले ही शशांक की मृत्यु हो गई होगी क्योंकि हर्षवर्द्धन ने अनेक देशों को जय करते हुए सन् ६४३ में गंजाम पर जो चढ़ाई की थी उसके अंतर्गत शशांक का कोई उल्लेख नहीं है। यदि अपने परम

शत्रु शशांक को वे वहाँ पाते तो इसका उल्लेख बड़े गर्व के साथ होता। शशांक मारे नहीं गए और बहुत दिनों तक राज्य करते रहे इसे सब इतिहासज्ञों ने माना है। विंसेंट स्मिथ अपने इतिहास में लिखते हैं—

The details of the campaign against Sasanka have not been recorped, and it seems clear that he escaped with little loss, He is known to have been still in power as late as the year 619 but his kingdom probably became subject to Harsha at a later date.

इतिहास में शशांक कट्टर शैव, घोर बौद्धविद्वेषी और विश्वासघाती प्रसिद्ध हैं। पर यह इतिहास है क्या? हर्ष के आश्रित वाणभट्ट की आख्यायिका और सीधेसादे पर कट्टर बौद्धयात्री (हुएन्सांग) का यात्राविवरण। इस बात का ध्यान और उस समय की स्थिति पर दृष्टि रखते हुए यही कहना पड़ता है कि इस उपन्यास में शशांक जिस रूप में दिखाए गए हैं वह असंगत नहीं है। उपन्यासकार का काम यही है कि वह इतिहास के द्वारा छोड़ी हुई बातों का अपनी कल्पना द्वारा आरोप करके सजीव चित्र खड़ा करे। बौद्धधर्म वैराग्यप्रधान धर्म था। देश भर में बड़े बड़े संघ स्थापित थे। भारी भारी मठ और विहार थे जिसमें बहुत सी भूसंपत्ति लगी हुई थी और उपासक गृहस्थों की भक्ति से धन की कमी नहीं रहती थी। इन विशाल मठों और विहारों में सैकड़ों, सहस्रों भिक्षु बिना कामधंधे के भोजन और आनंद करते थे; कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें सच्चे विरागी तो बहुत थोड़े ही रहते होंगे, शेष आज कल के संडे मुसंडे साधुओं के मेल के होते होंगे। महास्थविर आदि अपने सुदृढ़ विहारों में उसी प्रकार धन जन से प्रबल और संपन्न होकर रहते होंगे जिस प्रकार हनुमानगढ़ी के महंत

लोग। ये हिंदू राजाओं के विरुद्ध षडयंत्र में अनन्य योग देते रहे होंगे। हिंदुओं में उस समय संन्यासियों का ऐसा दल नहीं था, इस प्रकार की संघव्यवस्था नहीं थी। यही देख शंकराचार्य ने संन्यासियों के संघ का सूत्रपात्र किया जिसके पल्लवित रूप आजकल के बड़े बड़े अखाड़े और संगतें हमारे सामने हैं।

एक बात और भी कही जा सकती है। बौद्ध धर्म का प्रचार भारतवर्ष के बाहर शक, तातार, चीन, भोट, सिंहल आदि देशों में पूरा पूरा था। कनिष्क आदि शक राजाओं से बौद्धधर्म को बड़ा भारी सहारा मिला था। इससे जब विदेशियों का आक्रमण इस देश पर होता तब ये बौद्ध भिक्षु उसे उस भाव से नहीं देखते थे जिस भाव से भारती जनता देखती थी। अतने मत की वृद्धि के सामने अपने देश का उतना ध्यान उन्हें नहीं रहता था। इसी कारण भरतीय प्रजा का विश्वास उनपर से क्रमशः उठने लगा। बौद्धधर्म के इस देश से एकबारगी उच्छिन्न होने का यह राजनैतिक कारण भी प्रतीत होता है। जैन मत के समान बौद्ध मत हिंदूधर्म का द्वेषी नहीं है, उसमें हिंदुओं की निंदा से भरे हुए पुराण आदि नहीं बल्कि स्यान स्थान पर प्राचीन ऋषियों और ब्राह्मणों की प्रसंशा है। पर जैन मत भारत में रह गया और बौद्धधर्म अपना संस्कार मात्र छोड़ सब दिन के लिए विदा हो गया।

मैंने इस उपन्यास के अंतिम भाग में कुछ परिवर्त्तन किया है। मूल लेखक ने हर्षवर्द्धन की चढ़ाई में शशांक की मृत्यु दिखा कर इस उपन्यास को दुःखान्त बनाया है। पर जैसा कि सैन्यभीति के शिलालेख से स्पष्ट है शशांक मारे नहीं गए वे हर्ष की चढ़ाई के बहुत दिनों पीछे तक राज्य करते रहे। अतः मैंने शशांक को गुप्तवंश के गौरव-रक्षक के रूप में दक्षिण में पहुँचा कर उनके निःस्वार्थ रूप का दिग्दर्शन

कराया है। मूल पुस्तक में करुणरस की पुष्टि के लिए यशोधवल की कन्या लतिका का शशांक पर प्रेम दिखा कर शशांक के जीवन के साथ ही उस बालू के मैदान में उसके जीवन का भी अंत कर दिया गया है। कथा का प्रवाह फेरने के लिये मुझे इस उपन्यास में दो और व्यक्ति लाने पड़े हैं—सैन्यभीति और उसकी बहिन मालती। लतिका का प्रेम सैन्यभीति पर दिखाकर मैंने उसके प्रेम को सफल किया है। शशांक के निःस्वार्थ जीवन के अनुरूप मैंने मालती का अद्भुत और अलौकिक प्रेम प्रदर्शित किया है। कलिंग और दक्षिण कोशल में बौद्ध तांत्रिकों के अत्यचार का अनुमान मैंने उस समय की स्थिति के अनुसार किया है। वंग और कलिंग में बौद्ध मत की महायान शाखा ही प्रबल थी। शशांक के मुख से माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन को जो आशीर्वाद दिलाया गया है वह भी आदित्यसेन के भावी प्रताप का द्योतक है।

काशी,
१२ फरवरी, १९२२ } रामचन्द्र शुक्ल

परिच्छेद-सूची

पहला खंड

उदय

दूसरा खंड

तीसरा खंड

———

पहला खंड

शशांक

पहला परिच्छेद

सोन के संगम पर

हजार वर्ष से ऊपर हुए जब कि पाटलिपुत्र नगर के नीचे सोन की धारा गंगा से मिलती थी। सोन के संगम पर ही एक बहुत बड़ा और पुराना पत्थर का प्रासाद था। उसका अब कोई चिह्न तक नहीं है। सोन की धारा जिस समय हटी उसी समय उसका खँडहर गंगा के गर्भ में विलीन हो गया।

वर्षा का आरंभ था; संध्या हो चली थी। प्रासाद की एक खिड़की पर एक बालक और एक वृद्ध खड़े थे। बालक का रंग गोरा था, लंबे-लंबे रक्ताभ केश उसकी पीठ पर लहराते थे। संध्या का शीतल समीर रह-रह कर केशपाश के बीच क्रीड़ा करता था। पास में जो बुड्ढा खड़ा था उसे देखते ही यह प्रकट हो जाता था कि वह कोई योद्धा है। उसके लंबे-लंबे सफेद बालों के ऊपर एक नीला चीरा बँधा था उसके लंबे-चौड़े और गठीले शरीर के ऊपर एक मैली धोती छोड़ और कोई वस्त्र नहीं था। बुड्ढा हाथ में बरछा लिए चुपचाप लड़के के पास खड़ा था। पाटलिपुत्र के नीचे सोन की मटमैलो धारा गंगा में गिरकर ऊँची-ऊँची तरंगें उठाती थी। वर्षा के कीचड़ मिले जल के कारण गंगा की मटमैली धारा बड़े वेग से समुद्र की ओर बह रही थी। बालक ध्यान लगाए यही देख रहा था। पच्छिम को जानेवाली नावें धीरे-धीरे किनारा छोड़कर आगे बढ़ रही थीं। सोन के दोनों तटों पर बहुत सी

नावें इकट्ठी थीं। उस घोर प्रचंड जल धारा में नाव छोड़ने का साहस माझियों को नहीं होता था। वृद्ध सैनिक खड़ा-खड़ा यही देख रहा था। इतने में बालक बोल उठा "दादा! ये लोग आज पार न होंगे क्या?" वृद्ध ने उत्तर दिया "नहीं, भैया! वे अँधेरे के डर से नावें तीर पर लगा रहे हैं।" बालक कुछ उदास हो गया; वह खिड़की से उठकर कमरे में गया। वृद्ध भी धीरे-धीरे उसके पीछे हो लिया।

अब चारों ओर अँधेरा फैलने लगा; सोन-संगम पर धुँधलापन छा गया। तीर पर जो नावें बँधी थीं.उन पर जलते हुए दीपक दूर से जुगनुओं की पंक्ति के समान दिखाई पड़ते थे। कमरे के भीतर चाँदी के एक बड़े दीवट पर रखा हुआ बड़ा दीपक सुगंध और प्रकाश फैला रहा था। कमरे की सजावट अनोखी थी; संगमर्मर की बर्फ सी सफेद दीवारों पर अनेक प्रकार के अस्त्रशस्त्र टँगे थे। दीपक के दोनों ओर हाथीदाँत जड़े दो पलंग थे। एक पलंग पर सोने का एक दंड रखा था। दोनों पलंगों के बीच सफेद फर्श थी। बालक जाकर पलंग पर बैठ गया; वृद्ध भी एक किनारे बैठा। कुछ काल तक तो बालक चुप रहा, फिर बालस्वभाव की चपलता से उठ खड़ा हुआ और सुवर्ण दंड को उलटने-पलटने लगा। वृद्ध घबराकर उसके पास आया और कहने लगा "भैया, इसे मत उठाना, महाराज सुनेंगे तो बिगड़ेंगे।" बालक ने हँसते-हँसते कहा "दादा, अब तो मैं सहज में समुद्रगुप्त का ध्वज उठा सकता हूं, अब वह मेरे हाथ से गिरेगा नहीं।" बालक ने क्रीड़ावश पाँच हाथ लंबे उस भारी हेमदंड को उठा लिया। वृद्ध ने हँसते हँसते कहा "भैया! वह दिन आएगा जब तुम्हें घोड़े की पीठ पर इस गरुड़-ध्वज को लेकर युद्ध में जाना होगा।" बुड्ढे की बात बालक के कानों तक न पहुँची, वह उस समय बड़े ध्यान से सुवर्ण दंड को देखने-भालने में लगा था। सुवर्ण दंड के ऊपर अनेक प्रकार के बेलबूटों के बीच कुछ अक्षर लिखे थे। बालक उन्हें पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। दंड के

शीर्ष पर एक सुंदर गरुड़ बैठा था जिसकी परछाईं नाना अस्त्रशस्त्रों के बीच संगमर्मर की दीवार पर पड़ कर विलक्षण-विलक्षण आकार धारण करती थी। बालक ने वृद्ध से कहा "दादा! मुझे पढ़ना आता है, यह देखो इस दंड पर कई एक नाम लिखे हैं। यह सब क्या आर्य्य समुद्रगुप्त का लिखा है?" वृद्ध ने उत्तर दिया "गरुड़ध्वज पर कुछ लिखा है यह तो मैंने कभी नहीं सुना।"

बालक कुछ कहना ही चाहता था इतने में एक बालिका झपटी हुई आई और उसके गले से लग कर हाँफती-हाँफती बोली "कुमार! माधव मुझसे कहते हैं कि तुम्हारे साथ ब्याह करूँगा। मैं उसके पास से भागी आ रही हूँ, वे मुझे पकड़ने आ रहे हैं।" इतना कह कर वह बालक की गोद में छिपने का यत्न करने लगी। बालक और वृद्ध दोनों एक साथ हँस पड़े। उनकी हँसी की गूँज पुराने प्रासाद के एक कक्ष से दूसरे कक्ष तक फैल गई। इतने में एक और बालक दौड़ता हुआ उस कमरे की ओर आता दिखाई दिया, पर अट्टहास सुन कर वह द्वार ही पर ठिठक रहा। बालिका ने जिसे 'कुमार' कह कर संबोधन किया था उसे देखते ही आने वाले बालक का मुँह उतर गया। पहले बालक ने इस बात को देखा और वह फिर ठठाकर हँस पड़ा। दूसरा बालक और भी डर कर द्वार की ओर हट गया। बालिका अब तक अपने रक्षक की गोद में मुँह छिपाए थी। दूसरा बालक काला, दुबला-पतला और नाटा था। देखने में वह पाँच बरस से अधिक का नहीं जान पड़ता था, पर था दस बरस से ऊपर का। बालिका अत्यंत सुंदर थी। उसका वयस् आठ वर्ष से अधिक नहीं था। उसका रंग कुंदन सा और अंग गठीले थे। छोटे से मस्तक का बहुत सा भाग काले घुँघराले बालों से ढँका था। पहले बालक ने दूसरे बालक से कहा "माधव! तू चित्रा से ब्याह करने को कहता था? चित्रा तो बहुत पहले से स्वयंवरा हो चुकी है।" दूसरा बालक बोला "चित्रा मुझे काला कह कर मुझ से घिन करती है।

क्या मैं राजा का पुत्र नहीं हूँ ?" बुड्ढे सैनिक ने हँस कर कहा "माधव ! तुम क्या जिस किसी को सुंदर देखोगे उसी से ब्याह करने को तैयार हो जाओगे ?" जेठा भाई हँस पड़ा, बालक मर्माहत होकर धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

ईसा की छठीं शताब्दी के शेष भाग में गुप्तवंशी महासेनगुप्त मगध में राज्य करते थे। उस समय गुप्तसाम्राज्य का प्रताप हो अस्त चुका था, समुद्रगुप्त के वंशधर सम्राट् की उपाधि किसी प्रकार बनाए रखकर मगध और वंगदेश पर शासन करते थे। गुप्तसाम्राज्य का बहुत सा अंश औरों के हाथ में जा चुका था। आर्यावर्त्त में मौखरी वंश के राजाओं का एकाधिपत्य स्थापित हो गया था। ब्रह्मावर्त्त और पंचनद में स्थाण्वीश्वर का वैसक्षत्रिय राजवंश धीरे-धीरे अपना अधिकार बढ़ा रहा था। कामरूप देश तो बहुत पहले से स्वाधीन हो चुका था। वंग और समतट प्रदेश कभी-कभी अपने को साम्राज्य के अधीन मान लेते थे, पर सुयोग पाकर राज-कर भेजना बंद कर देते थे। पिछले गुप्तसम्राट् अपने वंश की प्राचीन राजधानी पाटिलपुत्र में ही निवास करते थे। भारतवर्ष की वह प्राचीन राजधानी ध्वंसोन्मुख हो रही थी, उसकी समृद्धि के दिन पूरे हो रहे थे। धीरे-धीरे कान्यकुब्ज का गौरवरवि उदित हो रहा था। आगे चलकर फिर कभी मगध की राजधानी भारतवर्ष की राजधानी न हुई।

पाटलिपुत्र के पुराने खँड़हर में बैठ कर पिछले गुप्तसम्राट् केवल साम्राज्य का स्वांग करते थे पर आसपास के प्रबल राजाओं से उन्हें सदा सशंक रहना पड़ता था। कुमारगुप्त और दामोदरगुप्त बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से मौखरी राजाओं के हाथ से अपनी रक्षा कर सके थे। थोड़े ही दिनों में मौखरी राज्य नष्ट करके और पश्चिम प्रांत में हूणों को परास्त करके महासेनगुप्त के भांजे प्रभाकरवर्द्धन उत्तरापथ में सबसे अधिक प्रतापशाली हो गए थे। गुप्तवंश में सम्राट् की पदवी अभी तक

चली जाती थी। पाटलिपुत्र में महासेनगुप्त को अपने भांजे का सदा डर बना रहता था। वे यह जानते थे कि प्रभाकरवर्द्धन के पीछे उत्तरापथ से गुप्तवंश का रहा-सहा अधिकार भी जाता रहेगा।

महासेनगुप्त के दो पुत्र थे। पुस्तक के आरम्भ में जो बालक सोन की धारा की ओर ध्यान लगाए तरंगों की क्रीड़ा देख रहा था वह महासेनगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र गुप्तसाम्राज्य का उत्तराधिकारी शशांक था। दूसरा बालक उसका छोटा भाई था। माधवगुप्त शशांक की विमाता से उत्पन्न था और अपने बूढ़े पिता का बहुत ही दुलारा, तथा अत्यन्त उग्र और निष्ठुर स्वभाव का था। शशांक धीर, बुद्धिमान, उदार और बलिष्ठ था। युवराज बाल्यकाल से ही सैनिकों का प्रियपात्र था। बालिका चित्रा मंडला के दुर्गपति मृत तक्षदत्त की कन्या और शशांक के सखा नरसिंहदत्त की भगिनी थी। तक्षदत्त के मरने पर जब बर्बरों ने मंडला-दुर्ग पर अधिकार कर लिया तब उनकी विधवा पत्नी अपने पुत्र और कन्या को लेकर पाटलिपुत्र चली आई। नरसिंहदत्त का पैतृक दुर्ग सम्राट् ने अपने दूसरे सेनापति को भेजकर किसी प्रकार फिर अपने अधिकार में किया। उस समय मंडला, गौड़, मगध और बंग में गुप्त-साम्राज्य के दुर्जय दुर्ग थे।

वृद्ध सैनिक और कुमार शशांक अस्त्रागार में बैठे बातचीत कर रहे थे इतने में पास के घर में बहुत से मनुष्यों के पैरों की आहट सुनाई दी। सैनिक चौंक पड़ा और बरछा हाथ में लेकर द्वार पर जा खड़ा हुआ। सबके आगे दीपक के प्रकाश में श्वेत वस्त्र धारण किए बूढ़े भट्ट (भाँट) की मूर्त्ति दिखाई पड़ी, उसके पीछे राजभवन के बहुत से परिचारक और परिचारिकाएँ थीं। कुमार को देख वृद्ध भट्ट ने जय-ध्वनि की। देखते-देखते सबके सब उस घर में आ पहुँचे। बात यह थी कि दोपहर से ही कुमार अस्त्रागार में आ बैठा था, इससे दोपहर के पीछे किसी ने उसे नहीं देखा। चारों ओर खोज होने लगी। जब

माधवगुप्त और चित्रा से पता मिला कि संध्या समय कुमार और कोल सेनानायक लल्ल अस्त्रागार में थे तब लोग इधर आए। सम्राट् और पट्टमहादेवी कुमार को न देखकर अधीर हो रही थीं। महादेवी मन ही मन सोचती थीं कि चंचल बालक कहीं बढ़े हुए सोन नद की धारा में न जा पड़ा हो। भट्ट कुमार को गोद में उठाकर अस्त्रागार के बाहर ले चला! बालक किसी तरह नहीं जाता था। वह बूढ़े भट्ट से हाथा-पाई करने लगा और कहने लगा "मैं लल्ल से आर्य्यसमुद्रगुप्त का हाल सुनता था, मैं इस समय न जाऊँगा।" इसपर लल्ल भी समझाने-बुझाने लगा। पर कुछ फल न हुआ। अंत में भट्ट ने वचन दिया कि मैं कल आर्य्यसमुद्रगुप्त की कथा गाकर सुनाऊँगा। कुमार शांत हुआ और परिचारक उसे लेकर चले। बूढ़ा लल्ल भी उनके पीछे-पीछे हो लिया।

जो वृद्ध संध्या समय कुमार के पास खड़ा था वह मगधसेना का एक नायक था। वह वर्वर जातीय कोलसेना का अध्यक्ष था और और आप भी कोल जाति का था। उसका नाम था लल्ल। लल्ल ने बहुत से युद्धों में साम्राज्य की मर्य्यादा रखी थी। बुढ़ापे में लड़का पाकर महासेनगुप्त ने लल्ल को उसका रक्षक नियुक्त किया था। वही उसका लालन-पालन करता था। शशांक लल्ल से बहुत हिल गया था और उसे 'दादा' कहा करता था।

दूसरा परिच्छेद

पुरानी कथा

कड़कड़ाती धूप से धरती तप रही थी। राजप्रासाद के नीचे की अँधेरी कोठरी में वृद्ध यदुभट्ट भूमि पर एक बिस्तर डाल खा पीकर विश्राम कर रहा था। वह पड़ा पड़ा गुप्त वंश के अभ्युदय की कथा कह रहा था। उसका गंभीर कंठस्वर उस सूनी कोठरी के भीतर गूँज रहा था। सम्राटों की दशा के साथ प्रासाद की दशा भी पलट गई थी। बहुत पहले पाटलिपुत्र के लिच्छवि राजाओं ने गंगा और सोन के संगम पर एक छोटा सा उद्यान बनवाया था। जब गुप्तराजवंश का अधिकार हुआ तब प्रथम चंद्रगुप्त नगर के बीच का राजप्रासाद छोड़ बाहर की ओर उद्यान में आकर रहने लगे। प्रासाद का यह भाग उसी समय बना था। भारी भारी पत्थरों की जोड़ाई से बनी हुई ये छोटी कोठरियाँ बहुत दिनों तक यों ही पड़ी रहीं, उनमें कोई आता जाता नहीं था। मगध राज्य जब सारे भारतवर्ष का केंद्रस्थल हुआ तब समुद्रगुप्त और द्वितीय चंद्रगुप्त के समय में सोन के किनारे अपरिमित धन लगाकर एक परम विशाल और अद्भुत राजप्रासाद बनवाया गया। प्रथम कुमारगुप्त ने उस बृहत् प्रासाद को छोड़ अपनी छोटी रानी के मनो-रंजन के लिये गंगातट पर श्वेत संगमर्मर का एक नवीन रम्य भवन उठवाया। गिरती दशा में गुप्तवंश के सम्राट् कुमारगुप्त के बनवाए भवन में ही रहने लगे थे। प्रासाद के शेष भाग में कर्मचारी लोग रहते थे। लगभग कोस भर के घेरे में फैले हुए प्रासाद, उद्यान और आँगन के भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न नामों से परिचित थे। जिस घर में यदु-भट्ट रहता था उसे लोग 'चंद्रगुप्त का कोट' कहते थे। इसी प्रकार

'ध्रुवस्वामिनी का उद्यान', 'समुद्रगुप्त का प्रासाद', 'गोविंदगुप्त का रंगभवन' इत्यादि नामों से प्रासाद के भिन्न भिन्न प्रांत नगरवासियों के बीच प्रसिद्ध थे। गुप्तसाम्राज्य के ध्वस्त होने पर यह विस्तीर्ण राजप्रासाद भी खँडहर सा होने लगा। पिछले सम्राटों में उसे बनाए रखने की भी सामर्थ्य नहीं थी। दिनों के फेर से विस्तीर्ण सौधमाला गिर पड़कर रहने के योग्य नहीं रह गई थी। मगधराज के परिचारक और छोटे कर्मचारी इन पुराने घरों में रहते थे। लंबे चौड़े उद्यान और भारी भारी आँगन जंगल हो रहे थे। पाटलिपुत्रवासी रात को इन स्थानों में डर के मारे नहीं जाते थे। प्रासाद का यदि कोई भाग अच्छी दशा में था तो कुमारगुप्त का श्वेत पत्थरवाला भवन, जो सब के पीछे बनने के कारण जीर्ण नहीं हुआ था। उसी श्वेत प्रासाद में मगधेश्वर महासेनगुप्त रहते थे। समुद्रगुप्त के लालपत्थरवाले विस्तृत प्रासाद में सम्राट् की शरीररक्षक-सेना रहती थी। पुस्तक के आरंभ में पाठक ने इसी प्रासाद के एक भाग में कुमार शशांक और सेनापति लल्ल को देखा था।

वृद्ध भट्ट पुरानी कथा इस प्रकार कह रहा था—"इस सुंदर पाटलिपुत्र नगर में शकराज निवास करते थे। प्राचीन मगध देश अधीन होकर उनके पैरों के नीचे पड़ा हुआ था। तीरभुक्ति के राजा पाटलिपुत्र में आकर उन्हें सिर झुकाते थे और सामान्य भूस्वामियों के समान प्रति वर्ष कर देते थे। वैशाली के प्राचीन लिच्छविराजवंश ने दुर्दशाग्रस्त होकर पाटलिपुत्र में आश्रय लिया था। उस प्रतापी वंश के लोग साधारण भूस्वामियों के समान शकराज की सेवा में दिन काटते थे।

कुमार का मुँह लाल हो गया। क्रोधभरे शब्दो में बालक बोल उठा—"भट्ट! क्या उस समय देश में मनुष्य नहीं थे? सारे मगध और तीरभुक्ति के राजाओं ने शकों का आधिपत्य कैसे स्वीकार किया?"

भट्ट बहुत बूढ़ा हो गया था, कान से भी कुछ ऊचा सुनता था। बालक की बात उसके कानों में नहीं पड़ी। वह अपनी कहता जाता था—

"शकों के अत्याचार से मगध की भूमि जर्जर हो गई, देश में देवताओं और ब्राह्मणों का आदर नहीं रह गया। प्रजा पीड़ित होकर देश छोड़ने लगी। मगध और तीरभुक्ति के ब्राह्मण निराश्रय होकर लिच्छविराज के द्वार पर जा पड़े। किंतु परम प्रतापी विशाल के वंशज लिच्छविराज आप घोर दुर्दशा में थे। उस समय वे शकराज के वेतन-भोगी कर्मचारी मात्र थे। उन्हें ब्राह्मणों को अपने यहाँ आश्रय देने का साहस न हुआ। ब्राह्मणमंडली को आश्रय देना शकराज के प्रति प्रकाश्य रूप में विद्रोहाचरण करना था। किंतु जिसे करने का साहस लिच्छ-विराज को न हुआ उसे उनके एक सामंत चंद्रगुप्त ने बड़ी प्रसन्नता से किया। उन्होंने ब्राह्मणों को अपने यहाँ आश्रय दिया"।

वृद्ध पुरुषपरंपरा से चली आती हुई कथा लगातार कहता चला "आश्रय पाकर ब्राह्मण लोग पाटलिपुत्र की गली गली, घर घर देवद्वेषी बौद्धों और शकों के अत्याचार की बातें फैलाने लगे। शकराज की सेना ने महाराज चंद्रगुप्त का घर जा घेरा। नगरवासियों ने उत्तेजित होकर शकराज का संहार किया। चंद्रगुप्त को नेता बनाकर पाटलिपुत्रवालों ने शकों को मगध की पवित्र भूमि से निकाल दिया। धीरे धीरे विद्रोहाग्नि मगध के चारों ओर फैल गई। तीरभुक्ति और मगध दोनों प्रदेश बौद्ध शकों के हाथ से निकल गए। पाटलिपुत्र में गंगा के तट पर धूमधाम से चंद्रगुप्त का अभिषेक हुआ। पुत्रहीन लिच्छविराज अपनी एकमात्र कन्या कुमारदेवी का महाराजाधिराज चंद्रगुप्त को पाणिग्रहण कराकर तीर्थाटन को चले गए। देश में शांति स्थापित हुई।"

"पाटलिपुत्र नगर में फिर वासुदेव के चक्रध्वज और महादेव के त्रिशूलध्वज से सुशोभित मंदिर चारों ओर आकाश से बातें करने

लगे। अत्याचार-पीड़ित प्रजा देश में धीरे धीरे लौटने लगी। मगध और तीरभुक्ति की भूमि फिर धनधान्य से पूर्ण हुई। अनेक-सामंतचक्र-सेवित महाराजाधिराज परमभट्टारक प्रथम चंगुगुत के बाहुबल से मगध की राजलक्ष्मी ने गुप्तवंश में आश्रय लिया।"

वृद्ध जब तक लड़ाई भिड़ाई की बात कहता रहा तब तक बालक एकाग्रचित्त होकर सुनता रहा। उसके उपरांत वृद्ध का कंठस्वर सुनते सुनते बालक को झपकी आने लगी। उसी सोड़ में पड़े हुए बिस्तर के ऊपर मगध का युवराज सो गया। श्रोता बहुत देर से सो रहा है वृद्ध को इसकी कुछ भी खबर नहीं थी। वह बिना रुके हुए अपनी कथा कहता जाता था—

"पूरी आयु भोग कर यथासमय सम्राट् प्रथम चंद्रगुप्त ने गंगालाभ किया। कुल की रीति के अनुसार पट्टमहिषी लिच्छविराजकन्या कुमार-देवी स्वामी की सहगामिनी हुईं। गुप्तवंश के मध्याह्नमार्त्तंड परम प्रतापी महाराजाधिराज समुद्रगुप्त पाटलि पुत्र के सिंहासन पर सुशोभित हुए।" इतने में पास के घर से कोई आता दिखाई पड़ा। वृद्ध को उसके पैरों की कुछ भी आहट न मिली। वह व्यक्ति सहसा कोठरी में आ पहुँचा। देखने से ही वह कोई बहुत बड़ा आदमी जान पड़ता था। पहरावा तो उसका साधारण ही था—धोती के ऊपर महीन उत्तरीय अंग पर पड़ा था। किंतु पैर के जोड़े जड़ाऊ थे—उनमें रत्न और मोती टँके थे। घर में आकर उसने सोते हुए बालक और लेटे हुए वृद्ध को देखा। देखते ही उसने ऊँचे स्वर से भट्ट को पुकार कर कहा "यदुभट्ट! पागलों की तरह क्या बक रहे हो?" कंठस्वर सुनते ही वृद्ध चौंककर उठ खड़ा हुआ। आनेवाले को देखते ही वृद्ध का चेहरा सूख गया। वह ठक सा रह गया। आनेवाले पुरुष ने कहा "तुमसे मैं न जाने कितनी बार कह चुका कि कुमार के सामने चंद्रगुप्त और कुमारगुप्त का नाम न लिया करो। तुम अभी शशांक से क्या कह रहे

थे ? कई बार मैंने तुम्हें समुद्रगुप्त का नाम लेते सुना ।" वृद्ध के मुँह से एक बात न निकली । वह डरकर दीवार की ओर सरक गया ।

आगंतुक पुरुष के ऊँचे स्वर से बालक की नींद टूट गई । वह उसे सामने देख घबराकर उठ खड़ा हुआ । आगंतुक ने पूछा "शशांक ! तुम इस जीर्ण कोठरी में क्या करते थे ?" बालक सिर नीचा किए खड़ा रहा, कुछ उत्तर न दे सका । आगंतुक वृद्ध की ओर फिर कर बोला "यदु ! तुम अब बहुत बुड्ढे हुए, तुम्हारी बुद्धि सठिया गई है, तुम्हें उचित अनुचित का ज्ञान नहीं रह गया है । तुम मेरे आदेश के विरुद्ध बेधड़क कुमार को बुरी शिक्षा दे रहे थे । यदि तुम्हें फिर कभी समुद्रगुप्त का नाम मुँह पर लाते सुना तो समझ रखना कि तुम्हारा सिर मुँडा कर तुम्हें नगर के बाहर कर दूँगा ।" फिर कुमार की ओर फिर कर कहा "देखो शशांक ! तुम कभी इधर अकेले मत आया करो । यदु बुड्ढा हुआ; अभी यहाँ कोई साँप निकले या बाघ आ जाय तो वह तुम्हें नहीं बचा सकता ।" बालक के कानों-तक-पहुँचते-हुए विशाल नेत्रों में जल भर आया । वह सिर नीचा किए चुपचाप कोठरी के बाहर निकला । कुछ दूर पर दूसरे घर में लल्ल खड़ा था । उसने दौड़कर कुमार को गोद में उठा लिया और बाहर ले चला । बालक वृद्ध सैनिक की गोद में मुँह छिपाए सिसकता जाता था ।

कोई दुःसंवाद पाकर सम्राट् महासेन गुप्त व्यग्रता के साथ प्रासाद के आँगन में टहल रहे थे । धीरे धीरे वे नए प्रासाद से इस पुराने प्रासाद की ओर बढ़ आए । जिस कोठरी में यदुभट्ट रहता था उसकी ओर सम्राट् क्या कोई राजपुरुष भी कभी नहीं जाता था । इसी से यदु-भट्ट निश्चित होकर कुमार को वह कथा सुना रहा था जिसका निषेध था । आगंतुक पुरुष सम्राट् महासेनगुप्त थे, इसे बताने की अब आवश्यकता नहीं । बहुत दिन हुए सम्राट् ने मध्यदेश के एक ज्योतिषी के मुँह से सुना था कि शशांक के हाथ से ही गुप्तराज्य नष्ट होगा और पाटलिपुत्र

पर नाती के वंशवालों का अधिकार होगा। तभी से वृद्ध सम्राट् ने भाटों और चारणों को गुप्तवंश के लुप्त गौरव की कथा, चंद्रगुप्त और समुद्रगुप्त का चरित, कुमार के आगे कहने का निषेध कर दिया था। कुमार के चले जाने पर सम्राट् फिर चिंता में पड़ गए। वे भट्ट की कोठरी से निकल इधर उधर टहलने लगे। सम्राट् के कोठरी से निकलते ही वृद्ध भट्ट कटे पेड़ की तरह विस्तर पर जा पड़ा।

तीसरा परिच्छेद

पाटलिपुत्र के मार्ग पर

दोपहर को गहरी वर्षा हो गई है। आकाश अभी स्वच्छ नहीं हुआ है। संध्या होते होते गरमी बढ़ चली। पाटलिपुत्र से कुछ दूर वाराणसी की ओर जाते हुए निर्जन पथ पर धीरे धीरे अंधकार छा रहा था। पर्वतों की चोटियों और पेड़ों के सिरों पर डूबते हुए सूर्य्य की रक्ताभ किरनें अब भी कहीं कहीं झलकती हुई दिखाई देती थीं किंतु पूर्व की ओर घने काले बादलों की घटा छाई हुई थी। चौड़े राजपथ पर वर्षा का जल नदी की तरह बह रहा। चार जीव धीरे धीरे उस पथ पर पाटलिपुत्र की ओर आ रहे थे। सब के आगे लंबी लाठी लिये एक बुड्ढा था, उसके पीछे बारह वर्ष की एक लड़की थी। सब के पीछे एक बुड्ढा गदहा था जिसकी पीठ पर एक छोटा सा बालक बैठा था। वृद्ध चलते चलते बेहल थककर भी चुपचाप चला जाता था। पर लड़की रह रहकर विश्राम की इच्छा प्रगट करती जाती थी।

वृद्ध बोला "थोड़ी दूर और चलने पर किसीके घर में या किसी गाँव में ठहरने का ठिकाना मिलेगा। यहाँ रास्ते में रुकने से अँधेरा हो जायगा, फिर चलना कठिन हो जायगा"। बालिका कहती थी "बाबा! अब मैं और नहीं चल सकती, मेरे पैर कटे जा रहे हैं। मैं तो अब बैठती हूँ"। बालक बोला "बहिन, तू गदहे की पीठ पर आ जा, मैं पाँव पाँव चलूँ"। बालक की बातें सुनकर बालिका और वृद्ध दोनों हँस पड़े। बालक चुपका हो रहा। कुछ दूर जाते जाते बालिका सचमुच बैठ गई। सड़क से हटकर एक ऊँची जगह देख वह ठहर गई। बुड्ढे ने कहा "बेटी! बैठ गई?" उत्तर का आसरा न देख वृद्ध भी उसके पास जा बैठा। गदहा भी बालक को पीठ पर लिए आ खड़ा हुआ। अब चारों ओर घोर अंधकार छा गया।

कुछ क्षण के उपरांत बालक बोल उठा "बाबा! बहुत से घोड़ों की टाप सुनाई देती है।"

बुड्ढा चौंककर उठ खड़ा हुआ। राजपथ के किनारे धान के खेतों के बीच आम का एक पुराना पेड़ था। उसके नीचे अंधकार चारों ओर से घना था। बुड्ढा कन्या और पुत्र को लेकर वहीं जा छिपा। घोड़ों की टाप अब पास ही सुनाई देने लगी। उस अँधेरे में सैकड़ों अश्वारोही पाटलिपुत्र की ओर घोड़े फेंकते जाते दिखाई पड़े। रह रहकर बिजली का प्रकाश पड़ने से उनकी मूर्त्तियाँ और भी भीषण दिखाई दे जाती थीं। बुड्ढा अपने पुत्र और कन्या को गोद में दबाए पेड़ से लगकर सिमटा जाता था। आधे दंड के भीतर जितने अश्वारोही थे सब श्रेणीबद्ध होकर उस आम के पेड़ के सामने से होकर निकले। अश्वारोहियों के बहुत दूर निकल जाने पर भी वृद्ध को सड़क पर आने का साहस नहीं होता था। धीरे धीरे वर्षा भी होने लगी। सारा आकाश मेघों से ढककर काला हो गया। वृद्ध पुत्र और कन्या को पेड़ के धड़ के खोखले में खिसका कर आप बैठ कर भीगता था। एक पहर रात

बीतने पर घोड़ों की टाप फिर सुनाई पड़ी। वृद्ध बहुत डरकर सड़क की ओर ताकने लगा। देखते देखते चार पाँच अश्वारोही वृक्ष के सामने आकर खड़े हो गए। उनमें से एक बोला "पानी बहुत बरस रहा है, चलो पेड़ के नीचे खड़े हो जायँ" यह सुन कर सब सड़क से उतरकर धान के खेत की ओर बढ़े। वृद्ध के दुर्भाग्य से बिजली चमकी और उसका लंबा डील अश्वारोहियों की दृष्टि के सामने पड़ा। जो व्यक्ति आगे था वह बोला "देखो तो पेड़ के नीचे शूल हाथ में लिए कौन खड़ा है" उसकी बात सुनकर सब पेड़ की ओर बढ़े। वृद्ध डर कर पेड़ के नीचे से हट कर धान के खेत में हो रहा। एक सवार ने डपट-कर उसे आगे बढ़ने से रोका। उसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि पीछे से एक भाला आकर वृद्ध की छाती विदीर्ण करता हुआ गिरा। वृद्ध एक बार चिल्लाकर धान के गीले खेत में प्राणहीन होकर गिर पड़ा। पेड़ के नीचे से बालिका बड़े ज़ोर से चिल्ला उठी। गदहा भड़क कर भागने लगा। बालक अपने बल भर उसे थामे रहा।

अश्वारोहियों ने पास जाकर देखा कि मृत पुरुष निरस्त्र और वृद्ध था। जिसे उन्होंने शूल समझा था वह उसके टेकने की लकड़ी थी। सब के सब मिलकर बरछा चलानेवाले को बुराभला कहने लगे। किंतु वह लड़की का चिल्लाना सुनकर, अपने साथियों की बातों की ओर बिना कुछ ध्यान दिए, पेड़ की ओर लपका। कौंधे की चमक में उसने पेड़ से सटी हुई बालिका को देख पाया। देखते ही वह उल्लास के मारे साथियों को पुकार कर कहने लगा "देख जा! बूढ़े को मार कर मैंने क्या पाया। इसमें किसीका साझा नहीं रहेगा"। सुनते ही सब के सब दौड़ आए और बालिका को देखकर कहने लगे "चंद्रेश्वर ने सचमुच रत्न पाया"। बालिका शोक और भय से चिल्ला रही थी। बालिका पर अधिकार जतानेवाला सवार उसे उठाकर घोड़े की पीठ पर जा बैठा। पानी के कुछ थमने पर अश्वारोहियों ने फिर अपना मार्ग लिया।

बालक को पीठ पर लादे हुए गदहा बहुत दूर तक न जा सका। आधकास के लगभग जाकर वह एक ताड़ के पेड़ के नीचे रुक गया। बालक कुछ देर तक तो व्याकुल होकर रोता रहा, पर धीरे धीरे उसका शरीर ढीला पड़ने लगा और वह गदहे की पीठ पर ही सो गया। दूसरे दिन सवेरे बालक के रोने का शब्द एक तेली के कान में पड़ा। वह एक पगडंडी से हाकर सौदा बेचने के लिये नगर की ओर जा रहा था। उसे दया आई और उसने लड़के और गदहे दोनों को अपने साथ ले लिया। दोपहर होने पर जिस समय नगर के तोरणों पर मंगल-वाद्य हो रहा था लड़के को लिए हुए तेली पाटलिपुत्र के पश्चिम तोरण से होकर घुसा।

तोरण का बाहरी फाटक खोलकर प्रतीहार दूसरे फाटक पर बैठे ऊँघ रहे थे। तेली को उन्हें पुकारने का साहस न हुआ। वह बालक के साथ कुछ दूर पर बैठा रहा। द्वारपालों ने उसकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं। दोपहर बीतने पर रथ के पहिये की घरघराहट सुनकर उनकी नींद टूटी। रथ नगर के भीतर से आकर फाटक के पास पहुँचा। भीतर से एक व्यक्ति ने डाँटकर फाटक खोलने के लिये कहा। पहरे वाले घबराकर चारपाई से उठ खड़े हुए। एक उनमें से तब भी पड़ा खर्राटा ले रहा था। उसके पास जाकर एकने एक लात जमाई। वह आँख मलकर उठ बैठा और उससे भिड़ने के लिये तैयार हो गया। एक तीसरे ने आकर चारपाई सहित उसे एक कोठरी में डाल दिया। पहरेवालों में से एक कुछ दूर पर बैठा नीम की दतवन दाँतों पर रगड़ रहा था, और बीच बीच में खखार खखार कर थूकता जाता था। उसने वहीं से पूछा—"क्यों रे कौन आया है?"। एकने उत्तर दिया "तेरा बाप"। उसने कहा "मेरे बाप को तो यहाँ से गए न जाने कितने दिन हुए" और फिर निश्चिंत होकर दतवन करने लगा। यह देखकर एकने उसका लोटा उठा कर खाई में डाल दिया। वह अपना

लोटा निकालने के लिये खाई के जल में कूदा। इतने बीच में प्रतीहारों ने अपनी अपनी चारपाइयाँ फाटक के पास से हटा दीं। नगर के भीतर से जिसने फाटक खोलने की आज्ञा दी थी वह अधीर होकर फाटक पर ज़ोर ज़ोर से लात मार रहा था। सब पहरेवालों ने मिलकर जब बल लगाया तब चारों अर्गल हटे और तोरणद्वार के दोनों भारी भारी पल्ले अलग होकर द्वार के प्राचीर से जा लगे फाटक खुलने पर प्रतीहारों और द्वारपालों ने देखा कि एक काला ठेंगना वृद्ध अत्यंत क्रुद्ध होकर उनके सामने खड़ा है। उसे देखते ही जो पगड़ी तक न बाँध पाए थे वे तो साँस छोड़कर भागे। जो प्रतीहार और द्वारपाल रह गए वे घुटने टेक कर बैठ गए और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगे। पर उस वृद्ध ने उनकी एक न सुनकर मारे कोड़ों के उनके धुर्रे उड़ा दिए। चार घोड़ों का रथ घड़घड़ाता हुआ तोरण द्वार के बाहर निकल गया।

तेली लड़के और गदहे को लेकर चलने के लिये उठा। उसे देखते ही पहरेवालों का पराक्रम लौट आया। वे उसे तंग करने लगे। अंत में बेचारे तेली ने कोई उपाय न देख अपने सौदे में से थोड़ा थोड़ा सबको दिया और अपना पीछा छुड़ाया। लड़के को साथ लिए वह नगर में घुसा। देखा तो राजपथ जनशून्य सा हो रहा है; दूकानें बंद हैं। जो दो चार आदमी आते जाते भा थे वे डरे हुए दिखाई देते थे और जहाँ कोई गली पड़ती थी सड़क छोड़कर उसमें हो रहते थे। रह रहकर विदेशी सैनिकों के दल के दल कोलाहल करते हुए निकलते थे। उन्हें देखते ही पाटलिपुत्रवाले दूर हट जाते थे और अपने घरों के किवाड़ बंद कर लेते थे। दूकानदार दूकान छोड़ छोड़ कर भाग जाते थे। नगर की यह अवस्था देख तेली के प्राण सूख गए और वह झट राजपथ छोड़ एक गली में हो रहा। उस अँधेरी गली में चलते चलते वह एक झोपड़ी के सामने पहुँचा और किवाड़ खट-

खटाए। कुछ काल तक वह खड़ा रहा पर जब उसने देखा कि किवाड़ नहीं खुलता है तब वह फिर किवाड़ खटखटाने लगा। इस प्रकार दो घड़ी के लगभग बीत गए। बालक गदहे पर बैठा थककर ऊँघने लगा।

नगर में सन्नाटा छा गया। दिन ढलने पर गली में और भी अँधेरा छा गया। तेली घबरा कर किवाड़ पीटने लगा। उसके धक्कों से किवाड़ टूटा ही चाहते थे कि भीतर से किसी स्त्रीकंठ का अस्फुट आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। रोने के साथ जो शब्द मिले थे उन्हें ठीक ठीक कहना असंभव है। उनका भावार्थ यह था "घर में डाकू आ पड़े हैं, नगर में कहीं कोई प्रतिवेशी है या नहीं? आकर मेरी रक्षा करो। राजा के भांजे के साथ थानेश्वर से जो दुष्ट सैनिक आए हैं वे मुझे अनाथ, असहाय और विधवा देखकर मुझपर अत्याचार कर रहे हैं। आकर बचाओ, नहीं मैं मरी। मेरी जाति, कुल, मानमर्यादा सब गई।" कुछ प्रतिवेशियों के कान में उस स्त्री का चिल्लाना पड़ चुका था। वे खिड़की हटाकर देखना चाहते थे कि भीतर क्या हो रहा है। दो एक अपने वचनों से अभयदान भी दे रहे थे।

एक पड़ोसी की दृष्टि द्वार पर खड़े गदहे पर पड़ी। वह चिल्ला-उठा "अरे देखते क्या हो? थानेश्वर के सवार आ पहुँचे।" सुनते ही पाटलिपुत्र के वीर निवासी अपने अपने किवाड़ बंद कर भीतर जा घुसे। स्त्री का रोना चिल्लाना बढ़ने लगा। तेली को अँधेरे में और कुछ न सूझा, उसने पैर के धक्कों से किवाड़ खोल दिए और घर के भीतर घुसा। स्त्री बड़े जोर से चिल्ला उठी, चिल्लाकर फिर मूर्च्छित हो गई या क्या कुछ समझ में न आया। तेली ने अपने बैल, गदहे और बालक को भीतर करके किवाड़ बंद कर लिए। उसके पीछे स्त्री का चिल्लाना किसी ने न सुना।

———

चौथा परिच्छेद

नूतन और पुरातन

सबेरे से ही परिचारक लोग पुराना सभामंडप साफ करने में लगे हैं। सभामंडप काले पत्थरों का बना हुआ और चौकोर था। उसकी छत एक सौ आठ खंभों पर थी। फर्श भी काले चौकोर चिकने पत्थरों की थी। सभा-प्रांगण में सब के भीतर, चारों ओर गया हुआ, हरे पत्थरों का चबूतरा या अलिंद जो सुंदर पतले पतले खंभों पर टटा था। अलिंद पर सोने चाँदी का बहुत सुंदर काम था। छत पर पत्थर की मनोहर मूर्तियाँ थीं, स्थान स्थान पर रामायण और महाभारत के चित्र बने थे। अलिंद के पीछे सभामंडप के खंभे पड़ते थे। सभामंडप के किनारे चारों ओर पत्थर का बना हुआ चौड़ा घेरा था। पाटलिपुत्र के बड़े बूढ़े कहते थे कि पुराने सम्राटों के समय में इस घेरे के भीतर दस सहस्र अश्वारोही सुसज्जित और श्रेणीबद्ध होकर खड़े होते थे। सभा-मंडप में हाथी-दाँत की बनी हुई कम से कम एक सहस्र सुंदर चौकियाँ बैठने के लिये रखी थीं जो बहुत दिनों तक यत्न और देखभाल न होने के कारण मैली हो रही थीं। इन पर राजकर्मचारी और नगर के प्रतिष्ठित जन बैठते थे। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि मुसलमानी दरबारों के समान खड़े रहने की प्रथा प्राचीन हिंदू सम्राटों की सभा में न थी। राजा के आने पर सब लोग अपने आसनों पर से उठ खड़े होते थे और फिर राजाज्ञा से बैठ जाते थे। अलिंद में चाँदी की गद्दीदार चौकियों की दो श्रेणियाँ

थीं जिनपर राजवंश के लोग तथा युवराजपादीय* और कुमारपादीय† अमात्यगण बैठते थे। इन वर्गों में जिनकी गिनती नहीं थी वे अलिंद में आसन नहीं पा सकते थे। मत्स्य देश से आए हुए दूध से श्वेत मर्मर पत्थर की ऊँची वेदी के ऊपर सम्राट् का सिंहासन रहता था। वेदी के तीन ओर सीढ़ियाँ थीं। वेदी के ऊपर सोने के चार डंडों पर झलझलाता हुआ चँदवा तनता था। चंद्रातप के नीचे राजसिंहासन सुशोभित होता था।

परिचारिक मर्मर की वेदी धोकर और उसपर पारस्य देश का गलीचा बिछाकर सोने के दो सिंहासन रख रहे थे। कुछ परिचारक चँदवे में मोती की झालरें लटकाने में लगे थे, कुछ दोनों सिंहासनों के पीछे चाँदी के उज्ज्वल छत्र लगा रहे थे। वेदी के एक किनारे बैठा एक कर्मचारी परिचारकों के काम की देखरेख कर रहा था।

कई दिन पहले जो पिंगलकेश बालक सोन और गंगा के संगम पर पुराने राजप्रासाद की खिड़की पर खड़ा जलधारा की ओर देख रहा था वह सभामंडप में आकर इधर-उधर घूम रहा था। घूमता घूमता वह वेदी के सामने आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही परिचारक थोड़ी देर के लिये काम बंद करके खड़े हो गए। बालक ने पूछा "यह नया सिंहासन किसके लिये है?" एक परिचारक बोला "थानेश्वर के सम्राट् के लिये।" बालक चौंक पड़ा। उसका सुंदर मुखड़ा क्रोध से लाल हो गया और उसने हाथीदाँत की एक चौकी उठा ली। हाथ के झटके से चौकी उखड़ गई। परिचारक डर के मारे दो हाथ पीछे हट गए।

---

*युवराजपादीय = वे अमात्य या राजकर्मचारी जिन्हें युवराज के बराबर सम्मान प्राप्त था।

†कुमारपादीय = वे अमात्य या राजपुरुष जिनका सम्मान अन्य राजकुमारों के समान था।

रोषरुद्ध कंठ से बालक ने फिर पूछा "क्या कहा ?" किसी से कुछ उत्तर न बन पड़ा। जो कर्मचारी परिचारकों के काम की देखरेख करता था वह वेदी के पास आया और बालक को अभिवादन करके सामने खड़ा हो गया। बालक ने पूछा "तुम किसकी आज्ञा से वेदी पर नया सिंहासन रख रहे हो ?" कर्मचारी उत्तर देने में इधर-उधर करने लगा, फिर बोला "मैंने सुना है—"। उसकी बात भी पूरी न हो पाई थी कि बालक एक फलांग में वेदी के ऊपर जा पहुँचा और पैर से ठुकराकर नए सिंहासन को दस हाथ दूर फेंक दिया। सिंहासन काले पत्थर की फर्श पर धड़ाम से गिरकर खंड-खंड हो गया। परिचारक डर के मारे मंडप से भाग खड़े हुए। कर्मचारी भी बालक की आकृति देख भागने ही को था इतने में थोड़ी दूर पर एक द्वार पर का हरा पर्दा हटा और एक लंबा अधेड़ योद्धा और एक दुबली पतली बुढ़िया बहुत से विदेशी सैनिकों से घिरी आ पहुँची। वृद्धा ने पूछा "यह कैसा शब्द हुआ ?" सब चुप रहे। कुमार शशांक और उसके अमात्य को छोड़ वहाँ और कोई उत्तर देनेवाला था भी नहीं। अमात्य तो उन दोनों को देख इतना सूख गया था कि उसके मुँह से एक शब्द तक न निकला। कुमार कुछ कहना ही चाहता था पर मुँह फेरकर रह गया। वृद्धा ने फिर पूछा। कर्मचारी ने उत्तर देने की चेष्टा की पर उसकी घिग्घी सी बँध गई, मुँह से स्पष्ट शब्द न निकले। बालक ने तब अवज्ञा से मुँह फेरकर कहा "परिचारकों ने पिताजी के सिंहासन के पास थानेश्वर के राजा का सिंहासन रख दिया था। मैंने उसे पैरों से ठुकराकर चूर कर दिया।" बालक के ये तेजभरे वाक्य उस पुराने सभामंडप में गूँज उठे। सुनते ही उस अधेड़ योद्धा का मुँह लाल हो गया। उसके साथ के सैनिकों की तलवारें म्यानों में खड़क उठीं। कर्मचारी तो वह झनकार सुनते ही साँस छोड़कर भागा। वृद्धा वेदी के पास बढ़ आई और बालक का हाथ थाम उसे नीचे उतार लाई। इधर अधेड़ योद्धा म्यान

से आधी तलवार निकाल चुका था। इतने में सादा श्वेतवस्त्र डाले नगे पैर एक वृद्ध सभामंडप में घबराए हुए पहुँचे। उन्हें देखते ही विदेशीय सैनिकों ने भी झुककर अभिवादन किया। हम लोग भी उन्हें पहले देख चुके हैं। वे गुप्तवंशीय सम्राट् महासेन गुप्त थे।

उन्हें देखते ही वृद्धा हँसकर आगे बढ़ी। प्रौढ़ योद्धा का सिर कुछ नीचा हो गया। वृद्ध सम्राट् एक विशेष विनयसूचक भाव में उस वृद्धा की ओर देख रहे थे जिससे यही लक्षित होता था कि वे बालक के अपराध के लिये क्षमा चाहते थे, किन्तु प्राचीन साम्राज्य का अभिमान उनका कंठ खुलने नहीं देता था। वृद्धा हँसती-हँसती बोली "भैया! शशांक की बात मत चलाना। प्रभाकर कुछ ऐसे पागल नहीं हैं जो बालक की बात मन में लाएँगे।" प्रौढ़ योद्धा सिर नीचा किए भीतर ही भीतर दाँत पीस रहा था। वृद्धा के पहनावे से जान पड़ता था कि वह पंचनद की रहनेवाली थी। अब तक पंजाब की स्त्रियाँ प्रायः वैसा ही पहनावा पहनती हैं। कपिशा और गांधार की स्त्रियों के पहनावे के समान उस पहनावे में भी स्त्रीसुलभ रमणीयता और कोमलता का अभाव था। दूर से पहनावा देखकर स्त्री पुरुष का भेद करना तब भी कठिन था। किंतु पहाड़ी देशों के लिये वैसा पहनावा उपयुक्त था।

वृद्धा के बाल सन की तरह सफेद हो गए थे। गालों पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। शरीर पर एड़ी के पास तक पहुँचता हुआ चोल या अँगरखा था, सिर पर भारी पगड़ी थी। पैरों में जड़ाऊँ जूतियाँ थीं। पीठ पर बाल खुले हुए थे। वे सम्राट् महासेनगुप्त की सगी बहिन, स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) के महाराज आदित्यवर्द्धन की विधवा पटरानी, महादेवी महासेनगुप्ता थीं। उनके साथ में जो अधेड़ पुरुष था वह आदित्यवर्द्धन का ज्येष्ठ पुत्र, स्थाण्वीश्वर के राजवंश का प्रथम सम्राट्, प्रभाकरवर्द्धन था। जिस समय आदित्यवर्द्धन वर्तमान थे उसी समय से महासेनगुप्ता स्वामी के नाम से सब राज-काज चलाती थीं। जब प्रभाकर-

वर्द्धन स्थाण्वीश्वर के सिंहासन पर बैठे तब भी महादेवी सिंहासन के पीछे परदे में बैठी-बैठी पुत्र के नाम से अपना प्रचंड शासन चलाती थीं। अस्सी वर्ष की होने पर भी थानेश्वर में उनका आतंक वैसा ही बना था। आर्य्यावर्त के सब लोग जानते थे कि स्थाण्वीश्वर के सिंहासन पर बैठे हुए, पंचनद का उद्धार करनेवाले, हूणों, आभीरों और गुर्जरों का दमन करनेवाले सम्राट् पदवीधारी प्रभाकरवर्द्धन महादेवी के हाथ की कठपुतली मात्र हैं। उन्हीं की उँगलियों पर सारा थानेश्वर और उत्तरापथ का समस्त राजचक्र नाचता था।

महादेवी हँसती-हँसती अपने भतीजे और पुत्र का हाथ पकड़े सभागृह से बाहर निकलीं। वृद्ध सम्राट् सिर नीचा किए उनके पीछे-पीछे चले। अब एक-एक करके सब परिचारक आने लगे। टूटा हुआ सिंहासन हटा दिया गया। सभामंडप सुसज्जित हुआ। वेदी के ऊपर केवल सम्राट् का एक सिंहासन रहा।

पाँचवाँ परिच्छेद

परचूनवाली

दूकान पर बैठी काली भुजंग एक प्रौढ़ा स्त्री आटे, चावल, दाल, नमक, तेल, घी आदि के साथ-साथ अपनी मंद मुसकान बेच रही थी। इतने बड़े पाटलिपुत्र नगर में जिस प्रकार चावल दाल के गाहक थे उसी प्रकार उसकी मंद मुसकान के गाहकों की भी कमी नहीं थी। दूकान के बीच में बैठा हमारा वही पूर्वपरिचित तेली बिकती हुई मुसकान की

मात्रा की ओर कड़ी दृष्टि लगाए था। उसके साथ जो बालक आया था वह दूकान के सामने राजपथ पर कई धूलधूसर काले-काले लड़कों के साथ खेल रहा था। इसी बीच में लंबे डील का एक गोरा आदमी चावल और घी लेने दूकान पर आया। घी और चावल के साथ उस रमणी ने और न जाने कितनी वस्तुएँ बेच डालीं। सब सौदा हो चुकने पर जब उस पुरुष ने चावल, दाल, घी, नमक, आदि सामग्री कपड़े के छोर में बाँधी तब उसने देखा कि सब सामान एक आदमी से न जायगा। यह देख सदयहृदया रमणी उसकी सहायता करने के लिये दूकान से उठी।

तेली यह देख घर से निकल आया और उस आदमी से कहने लगा "मैं आप का सब सामान आप पहुँचाने के लिये तैयार हूँ अथवा अपने इस लड़के को आप के साथ किये देता हूँ। मैं अपनी स्त्री को एक बिना जाने-सुने आदमी के साथ घर से बाहर नहीं जाने देना चाहता।" धीरे-धीरे बात बढ़ चली और मुठभेड़ की नौबत दिखलाई देने लगी। अंत में उस शांतिप्रिय रमणी ने बीच में पड़ कर निबटेरा कर दिया। यह स्थिर हुआ कि बालक उस पुरुष के साथ सब सामान लेकर जायगा।

बालक सिर पर भारी गठरी रखे उस आदमी के पीछे-पीछे धीरे-धीरे चला। वह आदमी लंबे-लंबे डग मारता आगे-आगे चलता जाता था और पीछे फिर-फिर कर देखता जाता था कि लड़का कितनी दूर है। बीच-बीच में लड़के को पीछे न देख उसे लौटना भी पड़ता था। वह आदमी जो मार्ग पकड़े जाता था वह अब नगर के बाहर होकर नदी तट की ओर जाता दिखाई पड़ा। उसके दोनो ओर वृक्षश्रेणी छाया डाल रही थी। एक ओर तो गंगा की चमकती हुई बालू दूर तक फैली थी, दूसरी ओर हरी-हरी घास से ढँकी भूमि थी। बालू के मैदान के बीच उत्तर की ओर दूर पर भागीरथी की क्षीण जलरेखा दिखाई देती थी।

उस पथ पर संध्या सबेरे को छोड़ और कभी कोई आता-जाता नहीं दिखाई पड़ता था। आज कोई विशेष बात थी जो उस पर लोगों की भीड़-भाड़ दिखाई देती थी। बालक कभी-कभी भीड़ में मिल जाता था और वह पुरुष बड़ी कठिनता से उसे ढूँढ़ कर निकालता था। मार्ग के दक्षिण ओर बहुत से लोग एकत्र थे जो देखने में युद्धव्यवसायी जान पड़ते थे। घास के मैदान में बहुत से शिविर (डेरे) खड़े थे जिनके सामने सैनिक इधर-उधर आते-जाते दिखाई पड़ते थे। उनमें से अधिकतर लोग खाने और रसोई बनाने में लगे थे। कुछ लोग नित्य के सब कामों से छुट्टी पाकर पेड़ों की छाया के नीचे लेटे थे। मार्ग से थोड़ा उत्तर चल कर पेड़ों के नीचे यहाँ से वहाँ तक पंक्ति में घोड़े बँधे थे। उनके सामने स्थान-स्थान पर साज और शस्त्र—भाले, बरछे; तलवारें और धनुर्वाण इत्यादि—ढेर लगाकर रखे हुए थे। सड़क के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूर पर सजे हुए विदेशी सैनिक नदी से स्नान करके आ रहे थे। वाहक लोग गदहों पर बड़े-बड़े लोहे के कलसे लाद कर अश्वारोहियों के पीने के लिए पानी ला रहे थे। छकड़ों और रथों के मारे सड़क पर चलने की जगह न थी। छकड़े अश्वारोहियों और घोड़ों के खाने-पीने की सामग्री नगर से लाद कर लाते थे और बोझ ठिकाने उतार कर फिर नगर की ओर लौटते थे। कभी-कभी छकड़ों के दोनों ओर सवार भी चलते थे और उन्हें शिविर तक ले जाकर सामग्री उतरवाकर छोड़ देते थे।

नगर से कोस भर पर एक बड़े पीपल के पेड़ की छाया के नीचे कई आदमी बैठे बातचीत कर रहे थे। उनके सामने कई एक भाले जुटा कर रखे हुए थे। एक ओर भूमि पर एक बालिका या स्त्री पड़ी थी। उसके दोनों हाथ चमड़े के बंधन से कसे थे और दोनों पैर एक रस्सी द्वारा खूँटे से बँधे थे। वह बीच बीच में सिर उठा उठा कर आने जाने वालों की ओर ताकती और फिर हताश होकर पड़ जाती थी।

जो मनुष्य वृक्ष के तले बैठे थे वे देखने में विदेशी और विशेषतः पंच-नद के जान पड़ते थे। उनमें से एक रह रह कर चमड़े के छोटे कुप्पे में से मद्य ढाल ढाल कर पीता और अपने साथियों को देता जाता था। उनमें से कोई बालिका की ओर कुछ ध्यान न देता था।

बालक चावल दाल की गठरी सिर पर लिए उसी पेड़ के नीचे आकर खड़ा हो गया, फिर बोझ उतार कर थोड़ा बैठ गया और इधर उधर ताकने लगा। उस समय बालिका टक लगाए सड़क की ओर देख रही थी। रंग विरंग के परिच्छेदों से सुसज्जित होकर बाजा बजाती हुई मगध की पदातिक सेना उस समय उस मार्ग से निकल रही थी। बालक की गठरी जहाँ की तहाँ पड़ी रही। वह धीरे धीरे बालिका की ओर बढ़ा और पास जाकर उसने पुकारा "बहिन!"। बालिका ने चकपकाकर उधर मुँह फेरा। देखते ही बालक उसके गले से लग गया। भाई और बहिन दोनों एक दूसरे के गले से लग कर सिसक सिसक कर रोने लगे। कुछ काल बीतने पर विदेशी सैनिकों की दृष्टि उन दोनों पर पड़ी। उन्होंने देखा कि एक से दो बंदी हो गए। जो व्यक्ति मद्य ढाल ढाल कर पी रहा था वह चकित होकर बालिका के पास उठ कर आया और थोड़ी देर ठगमारा सा खड़ा रहा, फिर बोला "अरे तू ने इसे कहाँ से ला जुटाया।" बालिका बिलखती बिलखती बोली "यह मेरा भाई है।" इतना सुनते ही वह कर्कश स्वर से बोला "यहाँ तेरे भाई साई का कुछ काम नहीं। उससे कह कि चला जाय।" उसकी बात सुन कर बालिका चिल्ला उठी। बालक ने भी उसके सुर में सुर मिलाया। सैनिक ने उसका हाथ पकड़ कर खींचा। वह और भी चिल्लाने लगा "बहिन, मैं तुम्हें छोड़कर न जाऊँगा।" एक एक दो दो कर के लोग इकट्ठे होने लगे। एक ने पूछा "क्या हुआ?" दूसरे ने पूछा "इन्हें क्यों मारते हो?" तीसरा आदमी चौथे से कहने लगा "देखो तो, उस बेचारी बालिका को कैसा बाँध रखा है।"

देखते देखते एक शांतिरक्षक वहाँ आ पहुँचा और पूछने लगा "क्या हुआ ?" एक साथ दस आदमी उत्तर देने लगे "मद्य पीकर ये कई विदेशी इस बालिका को मार रहे हैं, इसका भाई आकर इसे छुड़ा रहा है।" छुड़ानेवाले का डीलडौल देखकर शांतिरक्षक हँस पड़ा। पूछने पर सैनिक ने उत्तर दिया "बालिका मेरी बंदी है मैंने उसे मार्ग में पकड़ा है। यह बालक कौन है, मैं नहीं जानता। मैं किसीको मारता पीटता नहीं हूँ।" इतने में दूकान पर सौदा लेनेवाला वह आदमी लड़के को ढूँढ़ता ढूँढ़ता पेड़ के पास भीड़ इकट्ठी देख वहाँ आ पहुँचा। चारों ओर घूम घूम कर देखने पर भी जब उसे किसी बात का पता न चला तब वह धीरे-धीरे भीड़ हटा कर घुसा। घुसते ही पहले तो उसने देखा कि उसका मोल लिया हुआ सारा सामान एक किनारे पड़ा है और बालक उस बालिका की गोद में बैठा है। उसने लड़के से पूछा "अरे! तू यहाँ इस तरह आ बैठा है ?' लड़का उसे देख और भी रोने लगा और बोला "मैं बहिन को छोड़कर कहीं न जाऊँगा।"

वह चकपका उठा। चारों ओर जो लोग खड़े थे वे उससे अनेक प्रकार की बातें पूछने लगे। उसने बताया कि "मैं भी थानेश्वर की सेना में ही हूँ, रात भर प्रासाद में प्रतीहार के रूप में रक्षा पर नियुक्त था, सबेरे छुट्टी पाकर रसोई की सामग्री लेने नगर की ओर गया था। बोझ अधिक हो जाने पर बनिये ने अपने लड़के को साथ कर दिया था। इस लड़की को मैंने कभी नहीं देखा था।" जिन लोगों ने मार्ग में लड़की को पकड़ा था वे एक साथ बोल उठे कि लड़की पाटलिपुत्र की नहीं है।

देखते-देखते शिविर के शांतिरक्षक वहाँ आ पहुँचे, पर भीड़ बराबर बढ़ती ही जाती थी। उन्होंने बहुत चेष्टा की पर हुल्लड़ शांत न हुआ। नगरवासियों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। देखते-देखते दोनों पक्षों में झगड़ा बढ़ चला। गाली-गलौज से होते-होते मारपीट की नौबत

आई। मुट्ठी भर शांतिरक्षकों ने जब देखा कि झगड़ा शांत नहीं होता है तब वे किनारे हट गए। पूरा युद्ध छिड़ गया। थानेश्वर के सैनिक तो झगड़े के लिये सन्नद्ध हो कर आए ही थे, अस्त्र-शस्त्र उनके साथ थे। पाटलिपुत्र वाले लड़ाई के लिये तैयार होकर नहीं आए थे। किसी के हाथ में छकड़े का बल्ला था, कोई मोट लिए था, कोई लोटा। पर संख्या में वे विदेशियों के तिगुने थे। थानेश्वर के सैनिक पहले तो दो चार कदम पीछे हटे, पर पीछे उनके भालों और तलवारों के सामने नागरिकों का ठहरना कठिन हो गया। किसी का माथा फूटा, किसी के हाथ पैर कटे, किसी की पीठ में चोट आई, पर कोई मरा नहीं। रक्तपात देखते ही नागरिक पीछे हटने लगे, पर भागे नहीं, डेरों और पेड़ों की ओट में होकर दूर से वे लगातार पत्थर बरसाने लगे।

उसी समय गंगातट के मार्ग से पाटिलपुत्र की सेना का एक दल शिविर की ओर आता दिखाई पड़ा। किंतु उसे देख नागरिक कुछ विशेष उत्साहित न हुए और एक एक दो दो करके भागने लगे। उन्होंने समझ लिया कि उनकी स्वदेशी सेना झगड़े की बात सुन कर उनका साथ तो देगी नहीं, उलटा भला-बुरा कहेगी। इसी बीच में नदी तट के मार्ग से एक रथ अत्यंत वेग से नगर की ओर जाता था। युद्धक्षेत्र के पास पहुँचते ही एक बड़ा सा पत्थर सारथी के सिर पर आ पड़ा और वह चोट खाकर नीचे गिर पड़ा। उसके गिरने से जो धमाका हुआ उससे चौंक कर घोड़े प्राण छोड़कर नगर की ओर भाग चले। यह देख रथारूढ़ व्यक्ति झट से नीचे कूद पड़ा। उतरते ही पहले वह सारथी के पास गया। जाकर देखा तो वह जीता था, पर उसका सिर चूर हो गया था। क्रोध के मारे उसका चेहरा लाल हो गया। इतने में पाटलिपुत्र के नागरिकों का फेंका हुआ एक पत्थर उसके कान के पास से सनसनाता हुआ निकल गया और सड़क के किनारे एक शिविर पर जा पड़ा। रथवाला व्यक्ति यह देखकर चकित हो गया। वह कोप से

खड्ग खींच कर जिस ओर से पत्थर आते थे उसी ओर को लपका। जो लोग पेड़ की आड़ से पत्थर फेंक रहे थे वे सिर निकाल कर झाँकने लगे। पत्थरों की वर्षा कुछ धीमी पड़ी। नगर की ओर जाती हुई सेना अब पास पहुँच गई थी, इससे नागरिकों में से जिसे जिधर रास्ता मिला वह उधर भागने लगा। पेड़ की ओर से जो कई आदमी पत्थर चला रहे थे रथ पर के मनुष्य को अपनी ओर आते देख सरकने का डौल करने लगे। इतने में एक उनमें से बोल उठा "अरे! ये तो हमारे युवराज हैं।" एक ने सुन कर कहा "अरे, बावला हुआ है? युवराज अभी लड़के हैं, वे यहाँ क्या करने आएँगे?"

प्रथम व्यक्ति—क्यों, क्या युवराज घूमने-फिरने नहीं निकलते?

द्वितीय व्यक्ति—युवराज को इस इतने बड़े पाटलिपुत्र नगर में और कहीं घूमने को जगह नहीं है जो वे इस दोपहर की धूप में इस रेत में आएँगे?

१म व्यक्ति—अरे तू क्या जाने, युवराज के मन की मौज तो है।

२य व्यक्ति—अच्छा तू जाकर अपने युवराज को देख, मैं तो चला।

पहले व्यक्ति ने पेड़ की ओट से निकल कर "युवराज की जय हो" कह कर रथ पर के मनुष्य का अभिवादन किया। वह विस्मित होकर उसे देखता रह गया। दूसरा व्यक्ति पेड़ के पास से भाग रहा था। रथ पर के मनुष्य ने उसे खड़े रहने के लिये कहा। वह भी कंठस्वर सुनते ही बोल उठा "युवराज की जय हो।" अब तो जितने नागरिक इधर-उधर लुके-छिपे थे आ-आ कर अभिवादन करने लगे। देखते-देखते उस पेड़ के पास बहुत से लोग इकट्ठे हो गए। नागरिकों को तितर-बितर होते देख थानेश्वर के सैनिक निश्चिंत हो रहे थे। पेड़ के नीचे कुछ भीड़ जमी देख वे भी पत्थर फेंकने लगे। ईंट का एक टुकड़ा आकर रथ पर के मनुष्य के शिरस्त्राण में लगा। यह देख नागरिक फिर खलबला उठे।

इतने में मगध सेना का वह दल आ पहुँचा और भीड़-भाड़ देख अधिनायक की आज्ञा से रुक गया। रथ पर के मनुष्य ने झट आगे बढ़ कर अधिनायक से पूछा "तुम मुझे पहचानते हो ?" सेनानायक बोला "नहीं।" रथ पर के मनुष्य ने सिर पर से शिरस्त्राण हटा दिया। बंधनमुक्त, पिंगलवर्ण, कुंचित केश उसके कंधों और पीठ पर छूट पड़े। सेनानायक ने झट विनीत भाव से अभिवादन किया। मगध सेना ने जय ध्वनि की। नागरिकों ने भी एक स्वर से जयनाद किया। रथ पर से कूदने वाले सचमुच कुमार शशांक ही थे। लौहवर्म्म से अंग-प्रत्यंग आच्छादित रहने के कारण चौदह वर्ष के कुमार कोई छोटे डील के योद्धा जान पड़ते थे। कुमार ने ज्यों ही पूछा कि "क्या हुआ ?" त्यों ही एक साथ कई नागरिक बोल उठे कि विदेशी सैनिक एक बालिका को पकड़े लिए जाते थे, जब उनसे छोड़ने के लिए कहा गया तब वे नागरिकों पर टूट पड़े और उन्हें मारने लगे। जिन्होंने चोट खाई थी वे अपनी-अपनी चोटें दिखाने लगे। अस्त्रहीन प्रजा पर अस्त्र के आघात देख मगध की सेना भी भड़क उठी। सारथी का प्राणहीन शरीर जब सैनिकों ने देखा तब तो उन्हें शांत रखना अत्यंत कठिन हो गया।

कुमार की आज्ञा से सेनानायक स्थाण्वीश्वर के पड़ाव की ओर चले। पर जब थानेश्वर वाले अपने-अपने डेरों में से पत्थर फेंकने लगे तब विवश होकर वे लौट आए। अब कुमार की आज्ञा से मागधी सेना ने श्रेणीबद्ध होकर शिविरों पर आक्रमण किया। स्थाण्वीश्वर के अधिकांश सैनिक उस समय मद्य पीकर मतवाले हो रहे थे। वे तो बात की बात में पराजित हो गए। जिन्हें अपने तन की सुध थी वे भाग खड़े हुए। जो उन्मत्त थे वे भूमि पर पड़े-पड़े प्रहार सहते रहे। बहुत से बंदी बना लिए गए। कुमार के आदेश से बालिका अपने भाई सहित बंधन से छुड़ा कर लाई गई। कुमार दोनों को रथ पर बिठा कर नगर की ओर चल पड़े। सेना भी अपने ठिकाने आ पहुँची।

संध्या हो चली थी। झगड़े की बात नगर भर में फैल गई। उत्पाती दुष्ट दल बाँध-बाँध कर लोगों को भड़काने लगे। सेना दल को लौटते देर नहीं कि नागरिक शिविर लूटने में लगे। मुट्ठी भर शांतिरक्षक उन्हें किसी प्रकार न रोक सके। अंत में नगरवासियों ने शांतिरक्षकों को मार भगाया। लूट-पाट कर चुकने पर उन्होंने डेरों में आग लगा दी। दूर तक जलते हुए डेरों की आकाश तक उठती हुई लपट देख कर थानेश्वर के सेनानायकों ने जाना कि शिविर में कुशल नहीं। नगर में एक सहस्र से कुछ अधिक शरीर रक्षक अश्वारोही थे। उन्हें लेकर सेनानायक पड़ाव पर पहुँचे। उस समय अग्नि जलाने के लिये और कुछ न पाकर बुझ चुकी थी। उन्होंने शिविरों के आस-पास जाकर देखा कि उन्मत्त और बंदी सैनिकों की भीषण हत्या करके नागरिकों ने डेरों में आग लगा कर सब कुछ भस्म कर डाला है।

छठाँ परिच्छेद

दुर्गस्वामिनी का कंगन

रोहिताश्वगढ़ आर्य्यावर्त्त के इतिहास में बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। यह गढ़ दक्षिण मगध और करुष * की दक्षिणी सीमा पर स्थित था और दक्षिण के जंगली प्रदेश का एक मात्र प्रवेशद्वार था। जब तक का इतिहास मिलता है तब से लेकर इधर तक इस गढ़ का अधीश्वर जंगली जातियों का शासक और अधिपति समझा जाता था।

* करुष देश = आजकल का आरे या शाहाबाद का जिला।

मुसलमानों के आने पर रोहिताश्व-दुर्ग रोहतासगढ़ कहलाने लगा। पठान और मोगल राजाओं के समय में रोहतास का क़िलेदार सूबा बिहार की दक्खिनी सीमा का रक्षक माना जाता था। शेरशाह, मान-सिंह, इसलाम खाँ, शाइस्ता खाँ इत्यादि इस दुर्ग में बहुत दिनों तक रहे हैं। सब इस पुराने दुर्ग में अपना कोई न कोई चिह्न छोड़ गए हैं। अत्यंत प्राचीन काल में, जिसका कोई लेखा इतिहास में नहीं है, इस दुर्ग की नींव पड़ी थी। पर्वत का जो अंश नदी के गर्भ तक चला गया था उसी के ऊपर यह दुर्जय दुर्ग उठाया गया था। दूर से उसके टीले को देखने से यही जान पड़ता था कि वह सोन नद के बीचोबीच उठा हुआ है।

जिस समय की बात हम लिख रहे हैं वह आज से तेरह सौ वर्ष पहले का है। हज़ार वर्ष से ऊपर हुए कि सोन अपनी धारा क्रमशः बदलने लगा। अब सोन नद न तो पाटलिपुत्र के नीचे से होकर बहता है न रोहिताश्वगढ़ के। हज़ार वर्ष पहले जहाँ सोन की धारा बहती थी वहाँ अब हरे भरे खेत और अमराइयों से घिरे हुए गाँव दिखाई पड़ते हैं। विंध्यपर्वत का अंचल अब नदी के तट से बहुत दूर पर है।

प्राचीन रोहिताश्वगढ़ पर्वत की चोटी पर था। गढ़ भीतरी और बाहरी दो भागों में बँटा था। बाहरी या नीचे का भाग उस लंबे चौड़े टीले को पत्थर की चौड़ी दीवार से घेर कर बनाया गया था। दूसरे कोट के भीतर का भाग अपरिमित धन लगाकर ऊँची नीची पहाड़ी भूमि को चौरस करके बना था। इसकी लंबाई चौड़ाई यद्यपि सौ हाथ से अधिक न होगी पर यह अत्यंत दुर्गम और दुर्जेय रहा है। रोहिताश्व के इतिहास में यह अंतर्भाग दो बार से अधिक शत्रुओं के हाथ में नहीं पड़ा। इसी रोहिताश्वगढ़ के उत्तरी तोरण (फाटक) के नीचे एक मोटा ताज़ा बुड्ढा बैठा दातुन कर रहा था।

वृद्ध बहुत देर से दातुन कर रहा था। उसकी प्रातःक्रिया पूरी भी न हो पाई थी कि पूर्व के द्वार की ओर पैरों की आहट सुनाई दी। देखते-देखते एक अत्यंत सुंदर बालिका, जिसके घुँघराले बाल इधर-उधर लहरा रहे थे, दौड़ती-दौड़ती बाहर आई और वृद्ध को देख उसे पकड़ने के लिये लपकी पर चिकने पत्थरों पर फिसल कर गिर पड़ी। वृद्ध और एक परिचारक ने उसे दौड़ कर उठाया। उसे बहुत चोट नहीं लगी थी। बालिका उठ कर हाँफती हाँफती बोली, "बाबा! नन्नी कहती है कि घर में आटा नहीं है, हम लोग खायँगे क्या?" वृद्ध बालिका के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला "कुछ चिंता नहीं, घर में गेहूँ होगा, रग्घू अभी पीस कर आटा तैयार किए देता है।" बालिका बोली "नन्नी रोती है, कहती है कि घर में एक दाना गेहूँ भी नहीं है।" उसकी बात सुन कर वृद्ध की आकृति गंभीर हो गई। उन्होंने कहा "अच्छा, मैं अभी शिकार लिए आता हूँ। रग्घू! मेरा धनुष तो ला।" परिचारक दुर्ग के भीतर गया। बालिका अपने दादा को ज़ोर से पकड़कर सिसकते सुर में बोली "बाबा! चिड़िया और हिरन का मांस मुझसे नहीं खाया जाता, न जाने कैसी गंध आती है।" वृद्ध ठक खड़े रहे। भृत्य धनुष और बाण लेकर आया-पर वृद्ध का ध्यान उसकी ओर न गया। बालिका अपने बाबा की चेष्टा देखती खड़ी रही। कुछ देर पीछे वृद्ध का ध्यान टूटा, एक बूँद आँसू टपक कर उनकी सफेद-सफेद मूछों पर पड़ा। वृद्ध ने परिचारक से कहा "तू धनुष बाण रख कर मेरे साथ भीतर आ।" वे बालिका को लिए भीतर की ओर चले। धीरे-धीरे दुर्ग के आँगन को पार करते हुए, जिसमें कभी सफ़ाई न होने के कारण घास और पौधों का जंगल सा लग रहा था, वृद्ध दूसरे कोट के नीचे की एक छोटी कोठरी में घुसे। बगल की एक कोठरी में बुढ़िया दासी नन्नी गेहूँ न देख कर ज़ोर-जोर से रो रही थी। वृद्ध को देखते ही वह सहमकर चुप हो गई। कोठरी के एक कोने में लकड़ी के एक बहुत पुराने पाटे

पर उससे भी पुरानी लोहे की एक पेटी जकड़बंद करके रखी हुई थी। वृद्ध ने बड़ी कठिनता से भृत्य की सहायता से उसे खोला और उसके भीतर से फूलों की सूखी मालाओं से लपेटी हुई पुराने कपड़े की एक पोटली बाहर निकाली। पोटला खोलने पर उसमें से हीरों से जड़ा हुआ एक पुराना कंगन निकला। वृद्ध ने उसे भृत्य के हाथ में देकर कहा "तुम इसे लेकर बस्ती में जाओ, और धनसुख सोनार के हाथ बेच आओ। जो कुछ दाम मिले उसमें से कुछ का आटा और गेहूँ भी लेते आना।" कंगन देते समय वृद्ध का हाथ काँपता था। पुराने परिचारक ने यह बात देखी और उसकी दोनों आँखों में आँसू भर आए। किंतु आज्ञा पा कर वह चुपचाप चला गया। वृद्ध कोठरी में बैठ गया। उसके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा वेग से छूट कर तुषारखंड सी श्वेत लंबी मूछों पर होती झरने के समान बह रही थी। बालिका कोठरी के द्वार पर खड़ा चुपचाप अपने पितामह की यह दशा देख रही थी।

जिस समय की बात हम लिख रहे हैं उस समय गुप्तसाम्राज्य की बढ़ती के दिन पूरे हो चुके थे। मगध, अंग, और राढ़ि देश को छोड़ और सारे प्रदेश गुप्तवंश के हाथ से निकल चुके थे। तीरभुक्ति और बंगदेश भी एक प्रकार से स्वतंत्र हो चुके थे। प्रादेशिक शासनकर्त्ता नाम मात्र के लिये अधीन बने थे, वे राजधानी में कभी कर नहीं भेजते थे। इतना अवश्य था कि उन्होंने प्रकाश्य रूप में अपनी स्वाधीनता की घोषणा नहीं की थी। गुप्त साम्राज्य के समय में जिन लोगों ने अधिकार और मान मर्य्यादा प्राप्त की थी वे अधिकांश मगध और गौड़ के रहनेवाले थे। गुप्तवंश के अभ्युदय-काल में नए जीते हुए देशों में पुरस्कारस्वरूप उन्हें बहुत सी भूमि मिली हुई थी। अपनी भूमि की रक्षा के लिये बहुतों को देश छोड़ कर विदेश में रहना पड़ता था। पर कुछ लोगों को मगध के बाहर जाने की छुट्टी नहीं मिलती

थी; कुलपरंपरा से उनके यहाँ राजसेवा चली आती थी इससे सम्राट् के पास ही उन्हें रहना पड़ता था। जब गुप्तसाम्राज्य नष्ट हुआ तब उनके वंशजों की दशा अत्यंत हीन हो गई। विदेश में जो अधिकार उन्हें प्राप्त थे वे उनके हाथ से धीरे धीरे निकल गए। गौड़ और बंगदेश में जिनकी कुछ भूमि थी कुछ दिनों तक वे सुख से रहे। पीछे महासेनगुप्त के पिता दामोदरगुप्त के समय में उनके अधिकार भी नष्ट हो गए। पाटलिपुत्र और मगध में चारों ओर ऐसे लोग दिखाई देने लगे जिनके पास उच्चवंश के अभिमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया था। प्राचीन अभिजातवंश और अमात्यवंश की दुर्दशा के साथ साथ गुप्त-साम्राज्य की दशा भी दिन दिन हीन होती जाती थी।

रोहिताश्व के गढ़पति गुप्तसाम्राज्य की बढ़ती के दिनों में अत्यंत प्रतापशाली थे। दक्षिणप्रांत की रक्षा करने के कारण सम्राटों से उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त था। जिस समय देश पर देश अधिकृत होकर गुप्तसाम्राज्य में मिलते जाते थे रोहिताश्व के गढ़पतियों को मालव और बग देश में बहुत सी भूमि मिली थी। जब साम्राज्य का ध्वंस आरंभ हुआ तब मालव की भूमि रोहिताश्ववालों के अधिकार से निकल गई। पर जब तक बंगदेश में उनकी भूसंपत्ति बनी रही तब तक उन्हें किसी बात का अभाव नहीं था। सम्राट् दामोदरगुप्त के समय में बंगदेश के शासक ने राजस्व भेजना बंद कर दिया। पर उसके पीछे भी बहुत दिनों तक रोहिताश्व के गढ़पति अपनी भूमि का कर पाते रहे। धीरे धीरे वह भी बंद हो गया। दुर्ग के आस पास की पथरीली भूमि पर ही उनका अधिकार रह गया। उसकी उपज का षष्ठांश ही वे पाते थे और उसी से कष्टपूर्वक अपने दिन काटते थे। जो वृद्ध प्रातःकाल परिखा (खाई) के किनारे बैठे दातुन कर रहे थे वे रोहिताश्वगढ़ के वर्त्तमान अधीश्वर यशोधवलदेव थे। यशोधवलदेव अति प्राचीन और

प्रतिष्ठित वंश के थे। महानायक की पदवी पुरुषपरंपरा से उनके यहाँ चली आती थी और गुप्तसाम्राज्य में उन्हें राजकुमारों के तुल्य सम्मान प्राप्त था। यशोधवलदेव की अवस्था सत्तर से ऊपर होगी। दामोदरगुप्त के समय में उन्होंने अनेक युद्धों में कीर्त्ति प्राप्त की थी। महासेनगुप्त के समय में भी उन्होंने मौखरीवंश के राजाओं को पराजित कर के दक्षिण मगध में विद्रोहाग्नि शांत की थी। उनके एक मात्र पुत्र का नाम कीर्तिधवल था। पुत्र भी पिता के समान ही यशस्वी और पराक्रमी था। अभाव में जीवन व्यतीत करना उससे न देखा गया। उसने बिना पिता से पूछे बंगदेश में जाकर अपने पूर्व पुरुषों की भूमि पर अधिकार करना चाहा। पर नदी से घिरे समतट प्रदेश में वह मारा गया।

स्वामी का मृत्यु संवाद पाकर कीर्तिधवल की पत्नी ने तो अग्निप्रवेश किया। तब से भग्नहृदय वृद्ध यशोधवलदेव मातृ-पितृ-हीना पौत्री को लिए पूर्वजों के पुराने दुर्ग में किसी प्रकार अपने जीवन के दिन पूरे कर रहे हैं। पुत्र के मरे पीछे उनकी दशा दिन-दिन और दीन होती गई। आस-पास की प्रजा नियमित रूप से कर भी नहीं देती थी। वेतन न पाकर दुर्ग-रक्षक एक-एक करके काम छोड़ कर चले गए। होते-होते बूढ़े परिचारक रग्घू और नन्नी टहलनी को छोड़ गढ़ में और कोई न रह गया। उस समय भी गढ़पति के अधिकार में आस-पास की जो भूमि रह गई थी उसका कर यदि नियमित रूप से मिला जाता तो उन्हें अन्न-कष्ट न होता। पर पास में आदमी न होने से उपज का षष्ठांश अन्न गढ़ में न पहुँचता था। जब कोई माँगने ही न जाता तब प्रजा को आप से आप कर पहुँचाने की क्या पड़ी थी। अंत में युवराज भट्टारक पादीय महानायक यशोधवलदेव को अन्नाभाव से विवश होकर अपनी स्वर्गीया पत्नी का चिह्नस्वरूप अलंकार बेचना पड़ा।

बालिका थोड़ी देर खड़ी-खड़ी अपने बाबा की दशा देखती रही, उसकी दोनों आँखों में भी जल भर आया। उधर से नन्नी आकर उसे गोद में उठा ले गई। देखते-देखते दोपहर हो गई। रग्घू पसीने से लथपथ एक बड़ा बोरा पीठ पर लादे आ पहुँचा। उसे देख वृद्ध आपे में आए। वे आँख उठा कर रग्घू के मुँह की ओर ताका ही चाहते थे कि उसने टेंट से दस स्वर्ण मुद्राएँ निकाल कर रख दीं और कहा "घन-सुख सोनार ने आपको प्रणाम कहा है और कहा है कि "कंगन का पूरा मूल्य मैं इस समय नहीं दे सका, संध्या होते-होते और मुद्राएँ लेकर मैं सेवा में आऊँगा।" नन्नी और रग्घू ने देखा कि उस दिन वृद्ध गढ़पति कुछ आहार न कर सके।

संध्या होने के कुछ पहले ही एक क्षीणकाय वृद्ध धीरे-धीरे पैर रखता गढ़ के भीतर गया। वह चकित होकर इधर-उधर ताकता जाता था। वह देखता था कि तोरण पर न तो कोई पहरे वाला है, न इधर-उधर परिचारक दिखाई देते हैं। फाटक भी टूटा-फूटा है, उसमें जड़े हुए लोहे निकल कर इधर-उधर पड़े हैं। गढ़ के भीतर पैर रखना कठिन है, प्रांगण में घास-पात का जंगल उगा है। दीवारों के भीतर से बरगद और पीपल के पेड़ निकल कर बड़े-बड़े हो गए हैं। गढ़पति के रहने का भवन भी गिरी-पड़ी दशा में है। भवन की सजावट की वस्तुएँ झाड़पोंछ के बिना मैली हो रही हैं, उनपर धूल जम रही है। दुर्ग के भीतर की अवस्था देखने से जान पड़ता है कि यहाँ अब मनुष्य का वास नहीं है। दूसरे दुर्ग के नीचे एक छोटी कोठरी के सामने एक बहुमूल्य पारसी कालीन पर वृद्ध गढ़पति बैठे हैं। सोनार ने उन्हें देखते ही भूमिपर पड़कर साष्टांग प्रणाम किया। वृद्ध दुर्गस्वामी ने उसे बैठने को कहा, पर वह बैठा नहीं। उसने एक थैली में से बहुत सी स्वर्ण-मुद्राएँ निकाल कर वृद्ध के सामने रख दीं और कहा "कंगन कितने मूल्य का होगा यह अभी मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। एक सहस्र

स्वर्णमुद्रा जो मेरे पास इस समय है, मैं लाया हूँ, शेष थोड़े दिनों में पाटलिपुत्र से आ जाता है।"

वृद्ध—कंगन का मूल्य क्या इतना अधिक होगा ?

धनसुख—मेरी जहाँ तक परख है कंगन का मूल्य दस सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम न होगा।

वृद्ध—इतना अधिक मूल्य तुम दे सकते हो ?

धन—अपने बेटे को पाटलिपुत्र भेजा है, उसके आने पर मैं दे सकता हूँ।

वृद्ध निश्चिंत हुए, किंतु धनसुख उसी प्रकार सामने खड़ा रहा, गया नहीं। थोड़ी देर में गढ़पति ने फिर पूछा "धनसुख ! जापिल गाँव में हमारा एक सेनापति महेंद्रसिंह रहता था, क्या वह अभी है ?"

धन—प्रभो ! महेंद्रसिंह का तो बहुत दिन हुआ स्वर्गवास हो गया, उनके पुत्र वीरेंद्रसिंह हैं जो अब खेती में लग गए हैं। फिर भी जापिल ग्राम में अभी आपके पुराने सेनानायक हरिदत्त, अक्षपटलिक विधुसेन और पर्वतखंड के सिंहदत्तजी जीवित हैं।

वृद्ध के नेत्र दमक उठे। उन्होंने कहा "बहुत अच्छा हुआ जो तुम आ गए। मेरा पाटलिपुत्र जाने का विचार हो रहा है। तुम इन्हें मेरे पास भेज दोगे ?" बूढ़ा धनसुख घुटने टेक हाथ जोड़कर बोला "प्रभो ! मेरा अहोभाग्य कि आज मुझे आपका दर्शन मिला। इधर दस वर्ष से किसी ने आपका दर्शन नहीं पाया है। जो वंगदेश के युद्ध से लौट आए थे वे लज्जा से आपके सामने मुंह नहीं दिखा सकते। पर निश्चय जानिए, आपके दर्शन के लिए सब तरस रहे हैं। वे कल सबेरे ही दुर्ग में आपके दर्शन को आएँगे।" वृद्ध के नेत्रों में जल झलक पड़ा। उन्होंने कहा "जो लोग आना चाहें आएँ, उन्हें देखकर मैं बहुत सुखी

हूँगा। पर उनसे यह कह देना कि मुझमें सामर्थ्य नहीं, मैं अब किसी योग्य नहीं रह गया हूँ। आने पर उन्हें मुट्ठी भर अन्न भी दे सकूँगा कि नहीं, नहीं कह सकता। मेरे पास अब न लोकबल है न अर्थबल। तुम तो मेरी दशा देख ही रहे हो। ऐसा न होता तो क्या मैं दुर्ग-स्वामिनी का कंगन कभी अपने हाथों से बेचता।"

गढ़पति की बातें सुन कर धनसुख चुपचाप आँसू गिरा रहा था। उसके मुँह से एक बात न फूटी। वह फिर साष्टांग प्रणाम करके चला गया।

सातवाँ परिच्छेद

महादेवी का विचार

पाटलिपुत्र के प्राचीन राजप्रासाद के भीतर एक छोटी कोठरी में संध्या बीतने पर दो व्यक्ति बैठे हैं। उस छोटी कोठरी में नीलपट पड़े हुए हैं, भूमि कोमल बहुमूल्य पारसी कालीन से ढँकी है। हाथीदाँत के एक छोटे से सिंहासन पर महादेवी महासेनगुप्ता विराज रही हैं। उनके सामने सोने के सिंहासन पर राजसी पीत परिधान धारण किए, विविध आभूषणों से अलंकृत सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन बैठे हैं। घर के एक कोने में एक टिमटिमाता हुआ गंधदीप स्वच्छ नील पट की ओट से कोठरी के कुछ भाग पर मृदुल प्रकाश डाल रहा था। अँधेरे में बैठी हुई दोनों मूर्तियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई देती थीं। माता और पुत्र के बीच

धीरे-धीरे बातचीत हो रही थी। महादेवी कहती थीं "प्रभाकर! तुम्हारा इस प्रकार आपे के बाहर होना उचित नहीं है। अब तुम नवयुवक नहीं हो। मगध तुम्हारे मामा का राज्य है, यह भवन तुम्हारे मामा का है। तुम इस पाटलिपुत्र नगर में अतिथि होकर आए हो। तुम्हारा मातामहवंश बहुत प्राचीन है, आर्यावर्त में अत्यंत प्रतिष्ठित है। इस समय भी उत्तरापथ में तुम्हारे पितृ कुल की अपेक्षा मातृ कुल को लोग अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। दिनों के फेर से मेरा पितृ कुल इस समय दुर्दशा में है और तुम्हारा पितृ कुल बढ़ती पर है; इस लिए सम्राट् पदवीधारी स्थाण्वीश्वर के राजा को क्या यही उचित है कि वह अपने मामा के यहाँ अतिथि होकर आए और उसका अपमान करे?"

महादेवी यह बात बहुत धीरे-धीरे कह रही थीं। उनका स्वर इतना धीमा था कि उस कोठरी के बाहर से उसे कोई नहीं सुन सकता था।

प्रभाकरवर्द्धन उत्तेजित होकर कहने लगे "महादेवी! आप आदि से अंत तक मेरी बात······"

उन्हें रोक कर महासेनगुप्ता बोलीं "प्रभाकर! मैं तुम्हारी माता हूँ। जो कुछ तुम कहा चाहते हो मैं सब समझती हूँ। पाटलिपुत्र के उद्दंड नागरिक एकदम निर्दोष हैं यह मैं नहीं कहती। पर उन्होंने थानेश्वर के सैनिकों का अत्याचार देख कर ही उत्तेजित होकर हमारे शिविर पर आक्रमण किया है।"

बात कटती देख स्थाण्वीश्वर के सम्राट् के मुँह के कोने पर कुछ ललाई दिखाई दी। उन्होंने बड़े कष्ट से अपने भाव को छिपा कर कहा "आपकी जो इच्छा हो, करें।"

महा०—मैं तुम्हारे सामने ही कल की घटना से संबंध रखने वाले लोगों को बुलाकर विचार करती हूँ, तुम कुछ न बोलना। यदि कुछ

कहना हो तो पट की ओट में बुलाकर कहना। तुम्हारे कर्मचारियों ने तुमसे क्या क्या कहा है?"

प्रभा०—"एक सैनिक ने मार्ग में एक सुंदर दासी मोल ली थी। उसे देखकर नागरिक कहने लगे कि वह नगर के एक बनिये की लड़की है। उसी दासी के पीछे सैनिकों और नागरिकों में झगड़ा होने लगा। इसी बीच कुमार शशांक वहाँ पहुँचे और मगधसेना का एक दल लेकर थानेश्वर के निरस्त्र सैनिकों पर टूट पड़े और उन्होंने उन्हें मारकर शिविर में आग लगा दी। नगर के दूसरे पार्श्व से जब तक हमारी सेना पहुँचे-पहुँचे तब तक सारा काम हो गया।"

महा—तुम्हारे कर्मचारियों ने तुमसे जो कुछ कहा है सब झूठ है। किसकी बात सच है यह अभी तुम्हारे सामने दिखाती हूँ।

ताली बजाते ही पट हटाकर एक वृद्ध परिचारक घर में आया। महादेवी ने उससे कहा—"महाप्रतीहार विनयसेन को तो भेजो।" परिचारक दो बार प्रणाम करके बाहर चला गया और थोड़ी देर में फिर आकर खड़ा हुआ। उसके साथ एक उज्वलवर्मधारी पुरुष ने आकर द्वार पर से प्रणाम किया। वे ही महाप्रतीहार विनयसेन थे। महादेवी ने उनसे पूछा "पाटलिपुत्र के मार्ग में जिस सैनिक ने दासी मोल ली थी उसका नाम क्या है?"

विनय०—चंद्रेश्वर। वह जालंधर की अश्वारोही सेना का है।

महा०—उसे यहाँ ले आओ।

महाप्रतीहार दो बार अभिवादन करके निकले। फिर परदा उठा और महाप्रतीहार चंद्रेश्वर को लिए आ पहुँचे। महादेवी ने हँसते-हँसते पूछा "तुम्हारा नाम क्या है?"

---

* महाप्रतीहार = नगररक्षक, पुररक्षकों का नायक। कोतवाल।

सैनिक—चंद्रेश्वर।

महा०—निवास कहाँ है?

सैनिक—जालंधर नगर में।

महा०—तुम थानेश्वर की सेना में हो?

सैनिक ने अभिवादन किया। महादेवी ने फिर पूछा "वाराणसी से पाटलिपुत्र आते हुए तुमने कोई दासी मोल ली थी?"

सैनिक—हाँ पाटलिपुत्रवाले उसे मुझसे छीन ले गए।

महा०—तुमने उसे किससे मोल लिया था?

सैनिक—मार्ग में एक बनिये से।

महा०—कितना मूल्य दिया था?

सैनिक—दस दीनार*।

महा०—अच्छा जाओ। विनयसेन! उस लड़की को तो ले आओ।

दोनों अभिवादन करके बाहर गए। एक परिचारक पट हटा कर आया और अभिवादन करके बोला "द्वार पर सम्राट् महासेनगुप्त खड़े हैं।" इतना सुन कर भी प्रभाकरवर्द्धन ज्यों के त्यों आसन पर बैठे रहे। महादेवी ने यह देख क्रुद्ध होकर कहा "पुत्र! तुम्हारी बुद्धि एकबारगी लुप्त हो गई? द्वार पर तुम्हारे मामा खड़े हैं, जाकर उन्हें आगे से ले आओ।" प्रभाकरवर्द्धन का चित्त ठिकाने आया। वे घबरा कर सिंहासन से उठ पड़े और द्वार पर अपने मामा को लेने गए। इसी बीच में परिचारकों ने एक और सिंहासन लाकर रख दिया। घर में आकर दोनों बैठ गए।

---

* दीनार—गुप्तकाल में यह सोने का सिक्का चलता था। किसी समय फ़ारस से लेकर रोम तक इस नाम की स्वर्णमुद्रा प्रचलित थी। प्राचीनकाल में उस नाम की एक ताम्रमुद्रा भी कश्मीर आदि में चलती थी—अनुवादक

महा०—भैया ! आप यहाँ चाहे जिस लिए आये हों, थोड़ा बैठ जाइए। मैं एक विषय का विचार कर रही हूँ, आप भी सुनिए।

महाप्रतीहार विनयसेन उस बालिका को लेकर घर में आए। विनयसेन के आदेशानुसार बालिका ने तीनों को प्रणाम किया।

महा०—तुम्हारा नाम क्या है ?

बालिका—गंगा।

महा०—तुम किस जाति की हो ?

बालिका—क्षत्रिय।

महा०—तुम्हारे पिता का नाम क्या है ?

बालिका के नेत्र गीले हो गए। उसने उत्तर दिया "यज्ञवर्म्मा।"

महादेवी ने उसकी आँखों में आँसू देख उसे ढाढ़स बँधा कर कहा "बेटी डरो मत। अब तुम से कोई कुछ नहीं बोलेगा। तुम रहने वाली कहाँ की हो ?"

बालिका के कोमल कपोलों पर टप टप आँसू गिरने लगे, उसका गला भर आया। वह बोली "चरणाद्रिदुर्ग।"

अब तक सम्राट् महासेनगुप्त पत्थर की मूर्ति बने चुपचाप सिंहासन पर बैठे थे। जो कुछ बातचीत हुई उसका बहुत सा अंश उनके कानों में नहीं पड़ा था। पर 'यज्ञवर्म्मा' और 'चरणाद्रिदुर्ग' सुनते ही वे चौंक पड़े। वे बालिका से पूछने लगे "क्या कहा, चरणाद्रिगढ़ ? तुम्हारे पिता का नाम यज्ञवर्म्मा है ? कौन यज्ञवर्म्मा ? मौखरिनायक शार्दूलवर्म्मा के पुत्र ?" बालिका ने रोते-रोते कहा "हाँ।" सम्राट् और कुछ कहा ही चाहते थे कि बीच में महादेवी ने महाप्रतीहार को प्रधान महल्लिका को बुलाने की आज्ञा दी। विनयसेन तीन बार अभिवादन करके बाहर गए और पल भर में महल्लिका को साथ लिए लौट आए। महादेवी ने उससे कहा "बालिका को ले जाओ, इसे चुप कराके फिर ले आना।"

महादेवी ने सम्राट् की ओर फिर कर पूछा "आप यज्ञवर्म्मा के संबंध में क्या कह रहे थे ?" सम्राट् ने लंबी साँस भर कर कहा "देवि ! वह बहुत दिनों की बात है। तब तक साम्राज्य का बहुत कुछ गौरव बना हुआ था। तब तक मेरी भुजाओं में बल था। उस समय यज्ञवर्म्मा के नाम से सारा उत्तरापथ काँपता था। बहुत प्राचीन काल से मौखरी वंश की एक शाखा के अधिकार में चरणाद्रि का दुर्ग चला आता था। गुप्तसाम्राज्य की ओर से उस वंश के लोग उस दुर्ग की रक्षा पर नियुक्त थे। भट्टों और चारणों के मुँह से सुना है कि महाराजाधिराज समुद्रगुप्त ने उन लोगों को उस दुर्ग की रक्षा का भार दिया था। प्रथम कुमारगुप्त और स्कंदगुप्त के समय में जब वर्वर हूण देश में टिड्डीदल की तरह टूट पड़े थे, साम्राज्य की उस घोर दुर्दशा के समय में मौखरिगढ़पतियों ने किस प्रकार दुर्ग रक्षा की थी उसे चारण लोग अब तक गली-गली गाते फिरते हैं। बहिन ! वाल्यकाल की बात का क्या तुम्हें कुछ भी स्मरण नहीं है ? वृद्ध यदु अभी जीता है। विवाह के पहले गंगा की बालू में बैठे हम दोनों भाई-बहिन बूढ़े यदुभट्ट का गान सुनते-सुनते अपने आप को भूल जाते थे, यह सब क्या तुम्हें भूल गया ?"

बोलते-बोलते सम्राट् उठ खड़े हुए और कहने लगे "मौखरि नरवर्म्मा ने किस प्रकार दुर्ग रक्षा की थी, क्या भूल गया ? यदुभट्ट की बातें अब तक मेरे कानों में गूँज रही हैं; उसका वह कंठस्वर अब तक मुझे सुनाई दे रहा है।—

जिस समय अन्न और जल के बिना दुर्ग के भीतर की सेना व्याकुल हो उठी तब भी वीर नरवर्म्मा ने साहस न छोड़ा। छोटे बच्चे ने प्यास के मारे तलफ-तलफ कर सामने ही प्राण त्याग किया पर नरवर्म्मा विचलित न हुए। वीरगण ! उस मौखरि वीर ने क्या कहा था सुनो। इस चरणाद्रिगढ़ में मौखरिवंश महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का प्रतिष्ठित किया

हुआ है, समुद्रगुप्त के वंशधर को छोड़ और कोई इसके भीतर पैर नहीं रख सकता। जब तक एक भी मौखरि के शरीर में प्राण रहेगा तब तक सम्राट् को छोड़ और कोई अपनी सेना सहित दुर्ग में नहीं घुस सकता वीरो! मौखरि वीर ने जो किया था वह आर्यावर्त देश में कोई नई बात नहीं है। सैकड़ों दुर्गों में, सैकड़ों युद्धों में विदेशी सेनाओं ने वैसी सैकड़ों बातें देखी हैं, और देख कर चकित रह गए हैं? मौखरी कुलांगनाओं के रक्त से दुर्ग का आँगन लाल हो गया है। सिर कटे बच्चों के कोमल धड़ नोच कर फेंके हुए फूलों के समान पत्थर की कड़ी धरती पर पड़े हैं। मौखरि वीर कहाँ हैं? क्या अपने पुत्र, माता, और भगिनी के नाम पड़े-पड़े रो रहे हैं? नहीं, वह देखो! दुर्ग के प्राकार पर गरुड़ ध्वज ऊपर उठ रहा है। मौखरि वीर केसरिया बाना पहने उल्लास से गरज रहे हैं। कंठ में रक्त जपाकुसुम की माला धारण किए, रक्तचंदन का लेप किए वीर नरवर्म्मा स्वयं गरुड़ध्वज हाथ में लिए सेना को बढ़ा रहे हैं। उनके गंभीर जयनाद को सुनकर हजारों हाथ नीचे खड़े हूण दहल रहे हैं। भीषण हुंकार सुनकर पशु पक्षी पहाड़ छोड़कर भागे जा रहे हैं। इस जीवन की चिंता के साथ ही साथ उस वीर के चित्त से पुत्र-कलत्र की चिंता भी दूर हो गई है। जहाँ तक मनुष्य का वश चल सकता है नरवर्म्मा ने किया, जो बात मनुष्य के वश के बाहर है उसके संबंध में कोई क्या कर सकता है? धीरे-धीरे हूण सेना गढ़ के कोट पर चढ़ गई, किंतु जब तक एक भी मौखरि जीता रहा हूण गढ़ के भीतर न घुस सके। जब नरवर्म्मा और उनके साथी दुर्ग के प्राकार पर महानिद्रा में मग्न हो गए तब हूणों ने दुर्ग पर अधिकार किया।

देवि! शार्दूलवर्म्मा को भूल गई क्या? उस विशाल शरीरवाले योद्धा का कुछ ध्यान आपको है जो हाथ में परशु लिए पिताजी के

सिंहासन के पास खड़ा रहता था ? यज्ञवर्म्मा का स्मरण मुझे है, पूरा स्मरण है। उनके हाथ में यदि खड्ग न होता तो ब्रह्मपुत्र के किनारे सुस्थितवर्म्मा के हाथ से मैं मारा गया होता। उन्हीं यज्ञवर्म्मा की कन्या आज•••।"

कटे हुए कदली के समान सम्राट् मूर्च्छित होकर धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े, यदि प्रभाकर झट से थाम न लेते तो उन्हें बहुत चोट आती। महाप्रतीहार के बुलाने पर प्रासाद के परिचारक आकर उपचार में लग गए। थोड़ी देर में उन्हें सुध हुई और उन्होंने किसी प्रकार मुँह पर थोड़ी हँसी लाकर अपनी बहिन से कहा "देवि! मैं आपके विचार में अब बाधा न दूँगा। बुढ़ापे ने अब मुझे भी आ घेरा है, बाल सफेद हो गये हैं, देह में अब शक्ति नहीं रह गई है, साथ ही मानसिक बल भी जाता रहा है। मेरा अपराध क्षमा करना।"

महा०—भैया! आपका जी अच्छा नहीं है, घर के भीतर जाकर थोड़ा विश्राम कीजिए। मैं अकेले विचार कर लूँगी।

सम्राट्—देवि! अनेक युद्धों में साम्राज्य के लिए मौखरि लोगों ने अपना रक्त बहाया है। यज्ञवर्म्मा ने अनेक युद्धों में मेरी प्राणरक्षा की है। कई रातें हम दोनों ने अस्त्रों की शय्या पर एक साथ काटी हैं। महाप्रतापी मौखरि महानायक की कन्या किस प्रकार एक सामान्य सैनिक के हाथ में पड़ी, मैं सुनना चाहता हूँ।"

महादेवी ने कोई उत्तर न देकर अपने भाई के मुँह की ओर देखा और महाप्रतीहार से कहा "पृथूदक की पदातिक सेना के नायक रत्न-सेन को बुला लाओ और उसके साथ बालिका के भाई को भी लेते आना।"

रत्नसेन और बालक को लेकर महाप्रतीहार के लौटने पर महादेवी ने रत्नसेन से पूछा "तुम्हारा नाम रत्नसेन है?"

रत्न०—हाँ।

महा०—तुम क्या काम करते हो?

रत्न—मैं पृथूदक की पदातिक सेना का नायक हूँ।

महा०—तुम कल सवेरे किसी दूकान पर सीधा मोल लेने गए थे?

रत्न०—हाँ! मेरे अधीनस्थ सेनाशतक का निरीक्षण हो जाने पर गौल्मिक की आज्ञा लेकर मैं इसी बालक के पिता की दूकान पर चावल दाल लेने गया था।

महा०—दूकानवाला इस लड़के का पिता है यह तुमने कैसे जाना?

रत्न०—मैंने जो सामग्री ली थी उसका बोझ अधिक हो जाने पर दूकानदार ने कहा था कि मेरा लड़का तुम्हारे साथ जाकर इसे पहुँचा आएगा।

महा०—तुमने और पहले भी इन दोनों को कभी देखा था।

रत्न०—न।

महा०—अच्छा, अब पीछे जाकर खड़े रहो। विनयसेन! दूकान-दार यहाँ है?

विनय०—वह तो सौदा लादने अंग देश गया हुआ है, उसकी रखेली यहाँ है।

महा०—अच्छा उसीको लिवा लाओ।

विनयसेन के चले जाने पर महादेवी ने बालक से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

बालक—अनंतवर्म्मा।

महा०—मौखरिवंशीय यज्ञवर्म्मा तुम्हारे पिता हैं?

बालक ने सिर हिलाकर-कहा "हाँ!"

महा०—तुम लोग क्या चरणाद्रिगढ़ में रहते थे?

बालक—हाँ ! पर इधर मेरे चचेरे भाई के पुत्र अवंतीवर्म्मा ने हम लोगों को निकाल दिया था।

महासेनगुप्ता कुछ काल तक चुप रहीं, फिर पूछने लगीं—"गढ़ की सेना क्या तुम्हारे पिता के विरुद्ध हो गई थी ?"

बालक—नहीं, पिताजी कहते थे कि यदि भीतर-भीतर थानेश्वर के राजा उसकी सहायता न करते तो मेरा चचेरा भाई हम लोगों को कभी नहीं निकाल सकता था। पिता ने सहायता के लिए पाटलिपुत्र दूत भेजा था, किंतु सम्राट् ने कुछ सहायता न की।

प्रभाकरवर्द्धन के मुख का रंग कुछ और हो गया, लज्जा से महासेनगुप्त ने भी सिर नीचा कर लिया। महादेवी ने फिर पूछा "दुर्ग से हटाए जाने पर तुम लोगों ने क्या किया ?"

बालक—पिता मुझे और बहिन को लिए सहायता माँगने के लिए सम्राट् के पास आ रहे थे, मार्ग में—

बालक का गला भर आया, उसकी नीली-नीली आँखों में जल झलकने लगा। यह देख महादेवी ने उसे खींच कर गोद में बिठा लिया। बालक सिसक-सिसक कर रोने लगा। इतने में विनयसेन हम लोगों की पूर्व परिचित सहवाइन (परचून वाली) को लिए आ पहुँचे। घर में आने के पहले ही से वह बिल-बिला रही थी; कोठरी में पहुँचते ही उसने पूरे सुर में रोना आरंभ किया। जब पीछे से एक प्रतीहार ने चाँटा दिया तब जाकर उसका रोना कुछ थमा। वह कहने लगी "मैंने कोई अपराध नहीं किया है, मुझे बिना अपराध पकड़ लाए हैं।" जब विनयसेन ने देखा कि उसके शोक का वेग बराबर बढ़ता जाता है तब उन्होंने उसे चुप रहने के लिए कहा। महादेवी ने पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ?"

स्त्री—मेरा नाम मल्लिका है, मेरी माँ का नाम—

विनय०—जितनी बात पूछी जाती है उतनी ही का उत्तर दे।

वह क्या करती चुप हो रही। प्रभाकरवर्द्धन ने उससे पूछा—"यह लड़का तुम्हारा बेटा है?" उस स्त्री को अपनी प्रगल्भता दिखाने का अवसर मिला। वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने और कहने लगी "अरे, बाबा रे बाबा! मेरे सात, चौदह पुरखों में कभी किसी को बेटा नहीं हुआ, सब लड़कियाँ ही हुईं। मुँह जला न जाने कहाँ से जी का जंजाल एक छोकरा उठा लाया?"

प्रतीहार के डाँटने पर वह चुप हुई। महादेवी उसकी बातें सुन-सुन कर हँस रही थीं। उसके चुप होने पर वे फिर पूछने लगीं "जिसे मुँह जला कह रही हो वह तुम्हारा पति है?" स्त्री बोली "नारायण! नारायण! मेरे पति को मरे तो न जाने कितने दिन हुए। इसके साथ तो बहुत दिनों की जान-पहचान है। गाँव से सौदा-पत्तर लाकर मेरे यहाँ बेचा करता है और जब नगर में आता है तब मेरे ही घर टिकता है।" महादेवी ने कहा "बस, सब समझ गई, अब तुम जाओ।" स्त्री ने जी का धन पाया, बिना और कुछ कहे-सुने वह एक साँस में वहाँ से भागी। तब महादेवी ने उस बालक को गोद में बिठा कर पूछा "तुम लोग क्या चरणाद्रि से पाटलिपुत्र पैदल ही आते थे?"

बालक—हाँ, अवंतीवर्म्मा ने हम लोगों का जो कुछ था सब ले लिया। पिताजी के एक बूढ़े सेवक ने एक गदहा कहीं से लाकर दिया था। उसी पर चढ़ कर मैं अवंतीवर्म्मा के डर से छिप कर आ रहा था। बहिन और पिताजी पैदल ही आते थे।"

महा०—फिर क्या हुआ?

बालक—एक दिन मार्ग में पानी बरसने लगा। किसी गाँव में पहुँचने के पहले ही दिन डूब गया और चारों ओर अँधेरा छा गया।

पिताजी हम लोगों को लेकर एक आम के पेड़ के नीचे ठहर गए। उस मार्ग से बहुत से अश्वारोही जा रहे थे। उनमें से कई एक को पेड़ की ओर आते देख ज्यों ही पिताजी पेड़ के नीचे से हट कर जाने लगे कि एक ने भाले से उन्हें मार गिराया।"

महादेवी विनयसेन की ओर देख कर बोलीं "नायक रत्नसेन से कह दो कि जायँ।" नायक तीन बार अभिवादन करके चले गए। बालक का जी जब कुछ ठिकाने आया तब महादेवी ने फिर पूछा "हाँ, तब उसके पीछे क्या हुआ?"

बालक—अश्वारोही बहिन को लेकर चले गए। गदहा मुझे पीठ पर लिए भाग खड़ा हुआ। सबेरे एक बनिये ने मुझे देखा और इस नगर में ले आया। जो सैनिक यहाँ से अभी गया है उसने उसी बनिये के यहाँ से चावल लिया था और मैं बोझ पहुँचाने उसके साथ पड़ाव की ओर गया था। वहाँ अपनी बहिन को देख मैं लिपट गया। अंत में एक देवता मुझको यहाँ लाए।"

सम्राट् महासेनगुप्त सिंहासन पर से उठ खड़े हुए और बोले "देवि! यज्ञवर्म्मा के पुत्र का पालन करना मेरा धर्म है। बच्चा! अब तुम्हें कोई डर नहीं। अब से मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

बालक—पिताजी कहते थे कि यदि मैं मर जाऊँ तो, अनंत, तुम सम्राट् महासेनगुप्त के यहाँ आश्रय लेना, और किसी के पास न जाना। आप कौन हैं मैं नहीं जानता। मैं तो सम्राट् के पास जाऊँगा।"

वृद्ध सम्राट् के शीर्ण गंडस्थल पर अश्रुधारा बहने लगी। उनका गला भर आया। काँपते हुए स्वर से बोल उठे "हा! मैं अपने प्राण-रक्षक को भूल गया, पर यज्ञवर्म्मा मुझे न भूले। पुत्र! मेरा ही नाम महासेनगुप्त है।" बालक सम्राट् के पैरों पर लोट पड़ा। सम्राट्

उसे गोद में उठा कर बाहर चले गए। उनके चले जाने पर महादेवी महासेनगुप्ता ने कहा "प्रभाकर! मेरा विचार पूरा हो गया। कहो, कुछ कहा चाहते हो।" लज्जा से सिर झुका कर सम्राट् ने कहा "माता! मेरी ही भूल थी, क्षमा कीजिए। मैं अभी जाकर चंद्रेश्वर के दंड की व्यवस्था करता हूँ।"

आठवाँ परिच्छेद

रोहिताश्व के गढ़पति

रोहिताश्वगढ़ के भग्न प्राचीर पर बहुत से कौवे बैठ कर काँव काँव कर रहे हैं पर अभी गढ़वासियों की नींद नहीं टूटी है। कौवों के रोर से रग्घू की नींद खुली। उसने उठ कर देखा कि बूढ़ी नन्नी अभी पड़ी सो रही है। वह उसे खींच कर कहने लगा "जान पड़ता है कि कौवों के रोर से प्रभु जाग गए हैं। पहर भर दिन चढ़ा।" बिना दाँत की बुढ़िया आँख मलते-मलते उठ बैठी और हँस कर बोली "तू ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता जाता है, देखती हूँ कि तेरी रसिकता बढ़ती जाती है। तू तो उठ बैठा है। जाकर कौवों को क्यों नहीं उड़ा देता?" रग्घू के भी ओठों के एक किनारे पर हँसी दिखाई पड़ी और वह बोला "अच्छा तू सोई रह, मैं कौवों को जाकर उड़ाए आता हूँ।" बूढ़ा उठ कर कोठरी के बाहर चला ही था कि एक बोरे से टकरा कर गिर पड़ा। बुढ़िया हाँ हाँ करके चिल्ला उठी। वह भूमि पर से उठे-उठे कि बोरा टेढ़ा हो

पड़ा। कोने में बहुत से मृतबान नीचे-ऊपर सजा कर रखे थे, बोरे के धक्के से वे बूढ़े के सिर पर आ गिरे। बुढ़िया फिर हाय-हाय करके चिल्ला उठी।

रग्घू को कुछ चोट लगी। बुढ़ापे की चोट बहुत जान पड़ती है। वह टूटे-फूटे मृतबानों के बीच खड़ा-खड़ा अपनी पीठ और माथे पर हाथ फेरने लगा। बुढ़िया ने पूछा "बहुत चोट तो नहीं लगी?" बुड्ढे ने पहले तो कहा 'नहीं।' अपना हित और प्रेम जताने के लिये बुढ़िया ने फिर वही बात पूछी। बुड्ढे ने इस बार झुँझला कर कहा "तू अपना प्रेम रहने दे, जान पड़ता है मेरा सिर चकनाचूर हो गया है। तू अब हो गई बुड्ढी, तुझे कुछ सुझाई तो देता नहीं। किस ठिकाने क्या रखती है, कुछ ठीक नहीं।" बुड्ढी चकपका कर बोली "मैं इस घर में नए बरतन लाकर क्यों रखने लगी? बरतन-भाँड़े तो सब मैं भंडार के घर में रखती हूँ। मेरी समझ में भी नहीं आ रहा है कि इस घर में इतने बोरे और हाँड़ियाँ कहाँ से आईं।" बुड्ढा और भी खिझ-लाकर बोला, "तो भूत तेरे रूप पर लुभा कर रात को यह सब रख गए हैं। बकवाद छोड़ कर तू थोड़ा पानी ला। पीठ पर रक्त की धारा बह रही है। अरे बाप, रे बाप! सारा कपड़ा रक्त से भींग गया।"

बुढ़िया ने पास जाकर देखा कि बुड्ढे के सिर पर से मधु के समान गाढ़ी-गाढ़ी वस्तु पीठ पर बह रही है और उसके कपड़े तर हो रहे हैं। ऊपर आँख उठा कर उसने देखा कि सब हाड़ियाँ नहीं गिरी हैं, तीन चार अभी ज्यों की त्यों रखी हैं। उनमें से कुछ फूट गई हैं और उनमें से रस की धारा बह कर अब तक बुड्ढे के सिर पर पड़ रही है। बुढ़िया ने देखा कि फूटी हाड़ियों में से बहुत से मोदक और लड्डू निकल कर घर में चारों ओर बिखरे पड़े हैं। किसी-किसी मृतबान से मिठाई का चूर मिला रस (शीरा) गिर कर भूमि पर फैल गया है

और वहाँ कीचड़ सा हो गया है। बुढ़िया यह देखते ही अपनी हँसी न थाम सकी, अपने पोपले मुँह के अट्टहास से वह पुरानी छत हिलाने लगी। बूढ़ा चिढ़ कर उसे गालियाँ देने लगा। हँसी कुछ थमने पर नन्नी बोली 'तेरी देह और माथे में लगा क्या है, देख तो। तूने तो समझा था कि तेरा सिर फूट कर खंड-खंड हो गया है।" रग्घू ने घबरा कर पूछा "क्या लगा है?"

बुढ़िया—लड्डू, मोदक और टिकिया।

रग्घू—हाँ रे! यह सब कहाँ से आया? हे कालूवीर! मैंने तुम्हारा नाम लेकर अभी ठट्ठा किया था, अपराध क्षमा करना, मैं कल तड़के ही पेड़ के नीचे तुम्हारी चौरी पर बलिदान दूँगा। देख बुड्ढी! यह सब भूतों की लीला है। दस वर्ष से कभी कोई पकवान और मिठाई लेकर गढ़ में नहीं आया है। आज कौन आकर मिठाई का ढेर लगा गया है?

बुढ़िया सन्नाटे में आकर बोली "उनकी लीला कौन जाने?"

इसी बीच में द्वार पर किसी मनुष्य की परछाईं पड़ी और धनसुख सोनार ने आकर पूछा "रग्घू! तुम उठे? अरे यह क्या किया? सब हाड़ियाँ फोड़ डालीं? जापिलग्राम के मोदियों ने गढ़पति के लिए इतनी मिठाइयाँ भेजी थीं।" रग्घू थोड़ी सी हँसी लिये हुए बोला "तो यह सब भूतों का काम नहीं है। चलो थोड़ा...।" इतना कहते-कहते जमीन पर से एक लड्डू उठा कर उसने मुँह में डाला और बोला "अरे नन्नी! ऐसा बढ़ियाँ लड्डू तो इधर बहुत दिनों से नहीं खाया था, नन्नी थोड़ा तू भी खाकर देख।" इस प्रकार उसने एक-एक करके जमीन पर पड़ी हुई सारी मिठाई पेट में डाल ली। उसके शरीर पर भी इधर-उधर जो चूर लगे थे उन्हें भी ठिकाने लगाया। बुढ़िया उसकी यह लीला देख मुँह पर कपड़ा दिए हँस रही थी। धनसुख चुपचाप द्वार पर खड़ा था।

रग्घू जब सब चट कर चुका तब नन्नी से कहने लगा "ऊपर जो हाड़ियाँ रखी हैं देख तो उनमें क्या-क्या है ?" बुढ़िया ने हँस कर कहा 'अब उधर डीठ मत लगा, वह सब प्रभु के लिये आया है, अब तू और खायगा तो तेरा पेट फट जायगा, चल उठ।" धनसुख ने किसी प्रकार अपनी हँसी रोक कर कहा "रग्घू! गढ़ के आँगन में बहुत से लोग गढ़पति से मिलने के लिये बैठे हैं, जाकर उन्हें संवाद दे आओ।" बुड्ढा धीरे-धीरे उठा और अपना शरीर धो-पोंछ कर एक बहुत पुरानी पगड़ी सिर पर बाँध दुर्ग स्वामी के भवन की ओर चला। उसके चले जाने पर बुढ़िया धनसुख से पूछने लगी "धनसुख! यह इतना सामान और मिठाई कहाँ से आई है ?" धनसुख ने कहा "रोहिताश्व गढ़ की प्रजा यह सब पहुँचा गई है, अभी बहुत सा सामना बाहर पड़ा है। मुझे भंडार का घर न मिला इससे कुछ वस्तुएँ तुम्हारी कोठरी में रख गया, और सब अभी बाहर हैं।"

नन्नी—थोड़ा ठहरो, मैं इस कोठरी को साफ कर दूँ।

बुढ़िया झाड़ू लेकर हाड़ियों के चूर बटोर-बटोर कर फेंकने लगी। धनसुख कोठरी के बाहर गया। बुढ़िया ने कोठरी के बाहर निकल कर देखा कि दुर्ग का लंबा-चौड़ा प्रांगण लोगों से खचाखच भरा है, सहस्र से अधिक मनुष्य बैठे हैं। उनके सामने अन्न और खाने-पीने की सामग्री का अटाला लगा हुआ है। आटे, घी, तेल, चावल, चीनी आदि से भर सैकड़ों बोरे और बरतन यहाँ से वहाँ तक रखे हुए हैं। बुढ़िया को जो पहचानते नहीं थे वे उसे दुर्ग स्वामिनी समझ प्रणाम करने के लिए बढ़ने लगे, पर जो जानते थे उन्होंने उन्हें रोक लिया। नन्नी ने देखा कि इतनी सामग्री ले जाकर भंडार घर में रखना उसकी शक्ति के बाहर है। वह चुपचाप घर में लौट गई।

दुर्ग स्वामी उठ कर पलंग पर बैठे हैं, रग्घू उनके सब वस्त्र परिधान लिए सामने खड़ा है। इसी बीच अपने बिखरे हुए केशों को लहराती

हुई बालिका लतिका कोठरी में बिजली की तरह आ पहुँची और कहने लगी "बाबा! उठते नहीं, देखो तुम्हारे आसरे कितने लोग बाहर आकर बैठे हैं!" वृद्ध ने हँस कर कहा "जाता हूँ, बेटी।" रग्घू स्वामी के हाथ में कपड़े देकर बाहर चला गया।

दुर्ग के प्रांगण के एक किनारे मत्स्यदेश के श्वेतमर्मर की एक बारहदरी थी, जो बहुत पुरानी हो जाने के कारण और बहुत दिनों से मरम्मत न होने से जर्जर हो रही थी। उसकी छत एक कोने पर गिर गई थी और वहाँ एक पीपल का पेड़ निकलकर अपने पत्ते हिला रहा था। बारहदरी के नीचे शालग्रामी पत्थर की एक बारहकोनी चौकी बनी थी जो कदाचित् तब की होगी जब रोहिताश्वगढ़ बना था। गढ़पति इसी अलिंद में इसी चौकी पर बैठकर प्रजा के आवेदन सुनते और विचार किया करते थे। धवलवंशीय महानायकों ने सुंदर बेलबूटों के रंगीन पत्थरों से बारहदरी के खंभे सजाए थे। दुर्गस्वामी जिस समय विचार करने बैठते थे गढ़ की सेना चारों ओर श्रेणीबद्ध होकर खड़ी होती थी। अधीन सेनानायक और छोटे भूस्वामी महानायक के सामने बैठते थे, और लोग नंगे पैर खड़े रहते थे। काली चौकी पर सोने का सिंहासन रखा जाता था और उस पर वाराणसी का बना हुआ सुनहरे काम का मणिमुक्ताखचित झूल डाला जाता था। रोहिताश्व के महानायक उसी पर बैठा करते थे। गढ़पतियों की भाग्यलक्ष्मी के साथ साथ समृद्धि के सब चिह्न भी लुप्त हो गए थे, केवल एक यही सिंहासन बच रहा था। अन्नकष्ट होने पर भी महानायक लोकलज्जा और वंशगौरव के अभिमान से इस बहुमूल्य स्वर्ण सिंहासन को न बेच सके थे। वह बड़े यत्न से अब तक रखा हुआ था। पुत्र की मृत्यु के पहले यशोधवल समय समय पर प्रजा को दर्शन देते थे और कीर्त्तिधवल नित्य आवश्यक कार्य्यों के निर्वाह के लिये बारहदरी में बैठते थे। उनके मरे पीछे फिर

कभी कोई बारहदरी में नहीं बैठा। इस बीच में एक ओर की छत टूट गई और वहाँ एक पीपल का पेड़ उग आया।

रग्घू गढ़पति के भवन से निकलकर बारहदरी की ओर आया और उसने धनसुख को बुलाकर कई युवकों को साथ ले लिया। उनकी सहायता से उसने बारहदरी में पड़े हुए कंकड़ पत्थर बाहर फेंके। फिर धनसुख के साथ लगकर उस स्वर्णसिंहासन को पत्थर के संपुट से बाहर निकाला। दोनों ने मिलकर सिंहासन को काली चौकी पर रखा। सिंहासन की कारीगरी अनोखी थी। उसे देखने के लिये चारों ओर से लोग झुक पड़े। बहुत बूढ़ों को छोड़ और किसीने रोहिताश्व गढ़पतियों के इस सिंहासन को नहीं देखा था। चार सिंहों की पीठ पर एक बड़ा भारी प्रस्फुटित स्वर्णपद्म स्थापित था जिसके चौरस सिरे पर रत्नों और मोतियों से जड़ा पटवस्त्र पड़ा था। वस्त्र पुराना और जीर्ण हो गया था, स्थान स्थान पर सोने का काम मैला पड़ गया था, फिर भी सिंहासन अत्यंत मनोहर था। जिस समय सब लोग अलिंद में सिंहासन देखने के लिये झुके हुए थे रग्घू पीछे से चिल्ला कर बोला—

"दुर्गस्वामी महानायक युवराजभट्टारकपादीय श्री यशोधवलदेव का आगमन हो रहा है"।

सुनते ही सब लोग पीछे हट गए और कई सैनिक वेशधारी वृद्ध आगे बढ़कर जनता के सामने स्थिर भाव से खड़े हो गए। शुभ्र उत्तरीय वस्त्र धारण किए, लंबे लंबे श्वेत केशों पर शुभ्र उष्णीष बाँधे, खड्ग हाथ में लिए यशोधवलदेव आकर सिंहासन पर बैठ गए। रग्घू कहीं से एक फटापुराना लाल कपड़ा लाकर उसे सिर में बाँध अलिंद के सामने आकर खड़ा हो गया। सब के पहले एक दंतहीन शुक्लकेश वृद्ध अलिंद के सामने आया और उसने कोश से तलवार खींच उसकी नोक अपनी पगड़ी से लगाई। रग्घू ने पुकारा "सेनानायक हरिदत्त"। वृद्ध गढ़पति

के पैरों तले तलवार रख उसने कपड़े के खूँट से एक स्वर्णमुद्रा निकाली और तलवार के ऊपर रख दी। दुर्गस्वामी ने तलवार उठाकर फिर वृद्ध के हाथ में दे दी। वृद्ध एकबार फिर अभिवादन करके पीछे हट गया। उसी समय भीड़ में से एक और लंबे डील के अस्त्रधारी वृद्ध ने आकर गढ़पति का अभिवादन किया। रग्घू ने पुकार कर कहा "सेनापति सिंहदत्त"। उसने भी तलवार और स्वर्णमुद्रा गढ़पति के सामने रखी और गढ़पति ने उसी प्रकार तलवार उठाकर हाथ में दी। सिंहदत्त के पीछे हटने पर भीड़ में से एक अत्यंत वृद्ध दो युवकों का सहारा लिए आता दिखाई पड़ा। उसे देखते ही गढ़पति सिंहासन से उठ पड़े और बोले "कौन, विधुसेन ?"। दुर्गस्वामी का कंठस्वर सुनते ही वृद्ध ज़ोर से रो पड़ा और उनके पैरों तले लोट गया। यशोधवलदेव ने उसे पकड़कर उठाया। उनकी आँखों में भी आँसू आ गए थे, और गला भर आया था। उन्होंने कहा—"विधुसेन ! कीर्त्तिधवल तो चल ही बसे। तुमने भी आना जाना छोड़ दिया"। वृद्ध ने रोते रोते कहा—"प्रभो ! मैं किसे लेकर आता ? कौन मुँह आपको दिखाता ? अपना सर्वस्व तो मैं मेघनाद (मेगना नदी) के उस पार छोड़ आया। केवल कुवँर कीर्तिधवल को ही मैं वहाँ नहीं छोड़ आया, अपने दो पुत्रों को भी छोड़ आया। मेरे पहाड़ी प्रदेश में न जाने कितने अपने पुत्र, अपने पिता और अपने भाई को छोड़ आए। इन दोनों बालकों को छोड़ मेरा अब इस संसार में और कोई नहीं है। जयसेन का मृत्यु-संवाद पाकर मेरी पुत्रवधू ने अपने दो बच्चों को मेरी गोद में डाल अग्नि में प्रवेश किया। तब से मैं युद्ध व्यवसाय और राज्य के सब काम काज छोड़ इन दोनों को पाल रहा हूँ"। इतना कहते कहते वृद्ध अक्षपटलिक* चिल्ला चिल्लाकर रोने लगा। दुर्गस्वामी ने किसी प्रकार

* अक्षपटलिक = राजस्व विभाग का सचिव, अर्थसचिव।

उसे शांत करके कहा "विधुसेन! यदि एक बार भी तुम आ गए होते तो मुझे पेट पालने के लिये दुर्गस्वामिनी का कंगन न बेचना पड़ता"। यह बात सुनकर विधुसेन फिर दुर्गस्वामी के पैरों पर लोट पड़ा और रोते रोते बोला "प्रभो! यह सब मैंने धनसुख के मुँह से सुना। मैं यह नहीं जानता था कि मेरे न रहने से मेरे स्वामी की अवस्था इतनी बुरी हो जायगी।" वृद्ध फिर रोने लगा। दुर्ग स्वामी ने उसे शांत करके बारहदरी में बिठाया। कुछ काल पीछे वह अपने दोनों पौत्रों को दुर्ग स्वामी के पास लाया। उन्होंने भी रीति के अनुसार तलवार और स्वर्णमुद्रा गढ़पति के पैरों के नीचे रख कर अभिवादन किया।

उसके पीछे एक-एक करके सौ से ऊपर वृद्ध सैनिक अपने पुत्र पौत्रों को लेकर गढ़पति का अभिवादन करने के लिये आए। उन सब ने भी यथारीति खड्ग तथा स्वर्ण, रजत या ताम्रमुद्रा सामने रख कर अभिवादन किया। गढ़पति ने भी उनकी तलवारें उन्हें लौटा दीं। सैनिकों के पीछे साधारण भूस्वामियों, किसानों, बनिये महाजनों आदि ने अपने-अपने वित्त के अनुसार सोने-चाँदी या ताँबे के सिक्के सामने रख कर प्रणाम किया। देखते-देखते सिंहासन के सामने रुपयों और दीनारों का ढेर लग गया।

सब के पीछे एक बलिष्ठ युवा योद्धा को साथ लेकर धनसुख अलिंद की ओर बढ़ा। युवक जब रीति के अनुसार अभिवादन कर चुका तब धनसुख प्रणाम करके बोला "प्रभो! यह युवक आपके पुराने सेवक महेंद्र सिंह का पुत्र है, इसका नाम है बीरेंद्रसिंह।

दुर्गस्वामी—पुत्र! तुम्हारे पिता ने अनेक युद्धों में मेरा साथ दिया था। तुम्हारे पिता की तलवार आज मैं तुम्हारे हाथ में देता हूँ। मुझे पूरा भरोसा है कि तुम इसकी मर्यादा रख सकोगे।

युवक ने तलवार हाथ में लेकर भूमि टेक कर प्रणाम किया। वृद्ध अक्षपटलिक अब तक अलिद में चुपचाप बैठे थे। सबके अभिवादन कर चुकने पर वे उठ कर बोले "प्रभो! वंग देश के युद्ध के पीछे प्रजा ने नियमित रूप से अपना कर नहीं भेजा था। वीरेंद्रसिंह, धनसुख और इस सेवक ने गाँव-गाँव आदमी भेज कर मंडलों को अपना-अपना कर चुकाने के लिये विवश किया। वे सब यहाँ बाहर खड़े हैं। आज्ञा हो तो सामने लाऊँ।" आज्ञा पाकर विधुसेन एक-एक करके मंडलों और ग्रामवासियों को बुलाने लगे और वे अपना-अपना कर लाकर सिंहासन के सामने रखने लगे। धनसुख सोने-चाँदी और ताँबे के सिक्कों को अलग-अलग करके गिनने लगा। इसी में दोपहर बीत गया। धनसुख सब गिन चुकने पर बोला "एक हजार, दो सौ अठारह स्वर्ण मुद्रा, ढाई सौ रुपये और सौ से ऊपर ताँबे के सिक्के आए हैं।" इतना सब हो चुकने पर सिंहासन के सामने धनसुख घुटने टेक कर बैठ गया। धीरे-धीरे कपड़े के भीतर से उसने दुर्ग स्वामिनी का कंगन निकाला और उसे सिंहासन के सामने रख कर हाथ जोड़ बोला "प्रभो! इतने बड़े अमूल्य कंगन का गाहक पाना मेरे लिये असंभव है। इसका मूल्य पचास सहस्र स्वर्णमुद्रा से भी अधिक होगा।"

दुर्गस्वामी ने उठकर धनसुख को गले लगाया और वे कहने लगे "धनसुख! मैं तुम्हारी सब युक्ति समझता हूँ। इस बार तो तुम्हारे अनुग्रह से दुर्ग स्वामिनी का कंगन बिकने से बच गया पर मैं देखता हूँ कि अब इसकी रक्षा मेरे लिये कठिन ही है। रोहिताश्वगढ़ के कोषाध्यक्ष का पद बहुत दिनों से खाली पड़ा है। अब दुर्गस्वामिनी के इस कंगन की और इस धन की रक्षा तुम करो। जो रुपया तुमने मुझे दिया था वह इसी में से काट लेना। दुर्गस्वामिनी ने कहा था कि पोते या पोती के ब्याह के समय इसे मेरा चिह्न कह कर देना। जब कभी कीर्तिधवल की कन्या का विवाह हो तब इस चिह्न को उसे देना।" दुर्गस्वामी का

गला भर आया और वे थोड़ी देर चुप रह कर फिर विधुसेन से बोले "विधुसेन ! इन आए हुए लोगों के खाने-पीने का क्या उपाय होगा ? इस जंगल में तो पैसा देने पर भी कुछ नहीं मिल सकता।"

धनसुख—प्रभो ! अक्षपटलिक और वीरेंद्र सिंह ने पहले ही सब प्रबंध कर रखा है।

सब लोग भोजन आदि करके निश्चित हुए। यशोधवलदेव ने विधु-सेन, सिंहदत्त, हरिदत्त, वीरेंद्रसिह और धनसुख को अपने शयनागार में बुलाया। सबके बैठ जाने पर दुर्गस्वामी ने कहा "जिस दिन मुझे कीर्तिधवल के स्वर्गवास का संवाद मिला उस दिन से कल तक पागल की सी दशा में मेरे दिन बीते। कल मेरी आँखें खुलीं; गढ़ के चारों ओर जो मेरी भूसंपत्ति है उसका लोभ ऐसा नहीं हो सकता कि कोई ऊँचे घराने का युवक मेरी पुत्री के साथ विवाह करके इस जंगली और पहाड़ी देश में आकर रहे। जिस प्रकार से हो वंग देश की संपत्ति का उद्धार किए बिना न बनेगा। मैंने विचारा है कि मैं पाटलिपुत्र जाकर सम्राट् से मिलूँ। तुम सब लोग मिल कर इसका प्रबंध कर दो।" अंत में यह बात ठहरी कि विधुसेन तो रह कर दुर्ग की रक्षा करें, धनसुख धन संपत्ति सँभालें और वीरेंद्र सिंह गढ़पति के साथ पाटलिपुत्र जायँ।

संध्या होते-होते जब अस्ताचलगामी सूर्य की सुनहरी किरनें गढ़ के मुँडेरों और कलशों पर रक्त आभा डाल रही थीं, ग्रामवासी एक-एक करके दुर्गस्वामी से बिदा होकर अपने-अपने घर लौट रहे थे। रग्घू नन्नी से कहने लगा "न जाने कहाँ से यह राक्षसों का जमावड़ा आकर इतना सब अन्न चट कर गया। अरे, इतनी जिस भेजी थी तो फिर आप आ-आ कर क्या डटे ? अपने घर जाकर खाते-पीते।"

———

नवाँ परिच्छेद

भविष्यद्वाणी

बैसाख का महीना है। एक पहर दिन चढ़ते चढ़ते धूप इतनी कड़ी हो गई है कि कहीं निकलने का जी नहीं करता। भागीरथी का चौड़ा पाट बालू ही बालू से भरा दिखाई पड़ता है। सूर्य्य की किरनों के पड़ने से बालू के महीन महीन कण इधर उधर दमक रहे हैं। बालू के मैदान का एक किनारा धरे स्वच्छसलिला, हिमगिरिनंदिनी गंगा की पतली धारा बह रही है। धारा के दोनों ओर थोड़ी थोड़ी दूर तक गीली बालू का रंग कुछ गहराई या श्यामता लिए है। सफेद झक बालू के मैदान के बीच यह गहरे रंग की रेखा अंजन की लकीर सी दिखाई देती है। इस कड़ी धूप में धारा के पास की गीली बालू पर बैठे दो बालक खेल रहे हैं। एक बालिका भी पास बैठी है। दोनों बालकों में जो बड़ा है वह भीगी धोती पहने जल में पाँव डुबाए बैठा बैठा गीली बालू का घर बना रहा है। उससे कुछ दूर पर दूसरा लड़का भी बालू का घर बनाने में लगा है। बालिका दोनों के बीच में बैठी देख रही है। बड़ा लड़का बड़ी फुरती से कोट और खांई बनाकर उसके भीतर मंदिर उठा रहा है। हाथ में गीली बालू ले लेकर वह मंदिर का चूड़ (कँगूरा) बना रहा है। उँगलियों से उठा उठाकर वह गीली बालू मंदिर की चोटी पर रखता जाता है जिससे मंदिर की चोटी बहुत ऊँची हो जाती है पर बोझ अधिक हो हो जाने से गिर पड़ती है। बालिका एकटक यही देख रही है। कभी बड़े लड़के के मंदिर की चोटी ऊँची हो जाती कभी छोटे के मंदिर की।

जब जिसका मंदिर अधिक ऊँचा उठता तब वह बालिका को पुकार कर उसे दिखाता। धूप की प्रचंडता बराबर बढ़ती जाती है इसका उनमें से किसी को ध्यान नहीं है, वे अपने खेल में लगे हैं।

धारा के किनारे किनारे मैले और फटे पुराने कपड़े पहने एक वृद्ध उनकी ओर आ रहा है, इसे उन्होंने न देखा। जब वह पास आकर खड़ा हुआ तब उसकी परछाईं देख बालिका चौंक पड़ी और डरकर बड़े लड़के के पास चली गई। बुड्ढे के पैरों की ठोकर से मंदिर और गढ़ चूर हो गया। छोटा लड़का यह देख ठट्ठा मारकर हँस पड़ा। वृद्ध ने कहा "कुमार! खेद न करना, तुम्हें इस जीवन में खेद करने का अवसर ही न मिलेगा। काल की चपेट से तुम्हारी आशा के न जाने कितने भवन गिर गिर कर चूर होंगे"। तीनों विस्मित होकर वृद्ध के मुँह की ओर ताकते रह गए।

बुड्ढा अपने फटे कपड़े का एक कोना बालू पर बिछाकर बैठ गया। बहुत देर पीछे बड़े लड़के ने पूछा "तुमने मुझे पहचाना कैसे?" बुड्ढे ने हँसकर उत्तर दिया "कुमार शशांक! तुम्हें जो न पहचानता हो ऐसा कौन है? तुम्हारे पिंगलकेश ही तुम्हारी पहचान हैं। इन्हीं केशों के कारण उत्तरापथ में तुम्हें सब पहचानेंगे। युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारे शत्रु तुम्हारे इन केशों को ताड़ेंगे। तुम्हें पहचान लेना कोई कठिन बात नहीं है"। वृद्ध पागलों के समान हँस पड़ा। तीनों और भी चकित हुए, बालिका कुमार के और भी पास सरक गई। वृद्ध एक बारगी उठकर खड़ा हो गया, उसने कपड़े के भीतर से एक बंसी निकाली, पर न जाने क्या समझ उसे फिर छिपा कर बोला "कुमार! तुमसे मैं बहुत सी बातें कहनेवाला हूँ, पर यहाँ न कहूँगा। मेरे साथ आओ"। मंत्र-मुग्ध के समान तीनों उसके पीछे हो लिए। आग सी तपती गंगा की रेत पार करके वृद्ध प्राचीन राज-

प्रासाद के नीचे घाट की एक टूटी सीढ़ी पर आकर बैठ गया। बालिका और दोनों बालक नीचे की सीढ़ी पर एक पंक्ति में बैठे। बुड्ढा कपड़े के भीतर से बंसी निकाल बजाने लगा। बैसाख की उस सनसनाती दुपहरी में बंसी का करुणस्वर भागीरथी का पाट लाँघता हुआ उस पार तक गूँज उठा, तपता हुआ संसार मानों क्षण भर के लिए शीतल हो गया। बालक बालिका चुपचाप बंसी की टेर सुन रहे थे। बंसी का सुर एक बारगी बंद हो गया, ऐसा जान पड़ा मानो संसार की फिर वही अवस्था हो गई। वृद्ध उठकर कहने लगा "कुमार! तीन सौ वर्ष हुए गुप्तवंश में तुम्हारे ही समान एक और पिंगलकेश राजपुत्र हुआ था। अदृष्ट तुम्हारे ही समान उसके पीछे भी लगा था। तुम्हारे ही समान वह भी उदार, दयावान् और पराक्रमी था। तुम जिस प्रकार वंश के लुप्त गौरव के उद्धार के यत्न में अपना जीवन विसर्जित करोगे उसी प्रकार उसने भी किया था। उसका नाम था स्कंदगुप्त। अब इस समय उत्तरापथ में बहुत से लोग उसका नाम तक नहीं जानते। यह कोई अचंभे की बात नहीं है। पाटलिपुत्र के कृतघ्न नागरिक तक उसका नाम भूल गए हैं, पर किसी समय उसी स्कंदगुप्त ने पाटलिपुत्र के लिए अपना सब कुछ निछावर कर दिया था।

"कुमार शशांक! समुद्रगुप्त का नाम तुमने सुना है? समुद्रगुप्त की समुद्र से लेकर समुद्र तक के दिग्विजय की कथा तुमने सुनी है? कुमारगुप्त का वृत्तांत जानते हो? स्कंदगुप्त कुमारगुप्त के ही पुत्र थे। तुम्हारे पिता के छोटे से राज्य में जिस प्रकार तुम्हारे भूरे बाल देखकर लोग पहचान जाते हैं कि तुम युवराज हो उसी प्रकार स्कंदगुप्त के पिता के साम्राज्य में उनके पिंगलकेश देखते ही समुद्र से लेकर समुद्र तक, हिमालय से कुमारी तक; सब उन्हें पहचान लेते थे।

"तुम्हारे चारों ओर जैसा विपद् का घना जाल है उससे कहीं अधिक घना जाल उनके चारों ओर फैला था। उन्होंने

उस जाल को हटाने का बहुत यत्न किया था, एक दिन तुम भी करोगे। अदृष्ट साथ साथ लगा है यह उन्हें नहीं सूझता था। मोह जिस समय तुम्हें घेरेगा तुम्हें भी न सूझेगा। उनके भाई-बंधु, सेवक, संबंधी विश्वासघाती हो गए थे, विश्वासघात से उनके जीवन की शांति नष्ट हो गई थी, तुहारे जीवन की भी यही दशा होगी। उनका सारा जीवन युद्ध करते बीता। उनका जी टूट गया था पर उन्हें साँस लेने तक का अवसर न मिला, वे बराबर लड़ते ही रहे। कुमार शशांक! तुम राजा होगे, पर तुम्हारे मार्ग में बराबर कंटक मिलेंगे, तुम कभी सुखी न रहोगे। भ्राता, वाग्दत्ता पत्नी, अमात्य और प्रजा सबको खोकर तुम भी स्कंदगुप्त के समान युद्ध में गिरोगे, पर स्वदेश में नहीं, विदेश में। स्कंदगुप्त ने स्वदेश में विदेशियों के साथ लड़कर अपना जीवन विसर्जित किया था, पर तुम्हें विदेश में स्वदेशीयों के साथ, अपने जातिभाइयों के साथ, लड़ना पड़ेगा।

"कुमार! खिन्न न होना। तुम्हारा सिंहराशि में जन्म है, तुम सिंह के समान पराक्रमी होगे। अदृष्ट के अधीन होकर सिर कभी न झुकाना। भाग्य के साथ जीवनभर चलनेवाले संग्राम के लिए सन्नद्ध हो। इस बूढ़े की बात सुनकर स्त्रियों के समान दहल मत जाना, पूर्णरूप से अपना पुरुषार्थ दिखाने को अग्रसर हो। शशांक! संसार में किसी का विश्वास न करना। सबके सब स्वार्थ के लिए आए हैं, परार्थ के लिए कोई नहीं आया है। स्त्री वा पुत्र तुम्हारे न होंगे। कैसे न होंगे, यह न पूछना। अपने काले भाई का विश्वास न करना, गोरे कुबड़े कामरूप के राजकुमार का विश्वास न करना। यदि करोगे तो अदृष्ट की चक्की के नीचे बराबर पिसते रहोगे, कभी विश्राम न पाओगे।

"संसार में जिसके आगे किसी का वश नहीं चल सकता उसके आगे तुम्हारा वश भी न चल सकेगा। जो सबके लिए असाध्य है वह

तुम्हारे लिए भी असाध्य होगा। तुम्हारा भाई तुम्हारा सिंहासन ले लेगा। तुम्हारी बालपन की संगिनी तुम्हें वाग्दान देकर भी धोखे में पड़कर दूसरे को हाथ पकड़ाएगी। तुम्हारे विश्वस्त सेवक थोड़े से धन के लोभ में आकर विश्वासघात करेंगे। तुम्हारे देश के लोग ही तुम्हें देश से भगा देंगे। विदेश में विदेशी लोग तुम्हें आग्रह के साथ बुलाएँगे। जो तुम्हारे दुःख-सुख के सच्चे साथी होंगे। तुम भाग्य के फेर से उन्हें न पहचानोगे। वे तुम्हारी उपेक्षा और लांछन सहकर भी अंत तक तुम्हारा साथ देंगे।"

बालिका डर के मारे रोने लगी। दूसरा बालक भी सकपका गया था, उसका मुँह सूख गया था। किंतु शशांक कुछ भी न डरे। कुमार ने वृद्ध से पूछा "तुम क्या क्या कह गए, मैं नहीं समझा। तुम हो कौन?" प्रश्न सुनकर वृद्ध ठठाकर हँस पड़ा और पागल की तरह नाचने लगा। बालिका चिल्ला कर रो पड़ी। माधवगुप्त भी रोने लगा। शशांक भय से दो कदम पीछे हट गए। वृद्ध ने हँसते-हँसते कहा "मैं कौन हूँ यह लल्ल से पूछना, वृद्ध यशोधवल से पूछना और अपने पिता से पूछना, कहना कि शक्रसेन यह सब कह गया है। मैंने जो कुछ कहा है उसे तुम समझ ही कैसे सकते हो? जो होनेवाला है वह तो हो ही गा। जब तुम समझोगे तब मैं फिर आऊँगा।" वृद्ध फिर नाचने लगा। देखते देखते उसने कपड़े के नीचे से एक चमकता अस्त्र निकाला। शशांक उसे देख दो कदम और पीछे हट गए। वृद्ध बोला "तुम हमारे शत्रु हो, तुम हमारे धर्म के शत्रु हो। जी चाहता है कि तुम्हारा कलेजा निकालकर तुम्हारा रक्त चूस लूँ। पर ऐसा करता क्यों नहीं जानते हो? जो कालचक्र तुम्हें नचा रहा है वही मुझे भी नचा रहा है।"

इतने में एक छोटी सी नाव आकर उस घाट के सामने लगी। उसपर से दो वृद्ध, एक युवक और एक बालिका उतरी। शशांक और

उसके साथियों ने उनको नहीं देखा, पर उस वृद्ध ने देख लिया। उन्हें निकट पहुँचते देख वृद्ध बोल उठा "कुमार ! अब मैं भागूँ। बहुत से लोग आ रहे हैं। जब तुम मर्मव्यथा से व्याकुल होगे तब मैं फिर दिखाई पड़ूँगा, समझे।" इतना कहते-कहते वृद्ध ने पीपल की एक डाल तोड़ ली और उसके ऊपर सवारी करके देखते-देखते दृष्टि के ओझल हो गया। शशांक, माधवगुप्त और चित्रा तीनों भय और विस्मय से कठपुतली बने खड़े रह गए।

नाव पर से उतरे हुए लोग घाट के पास आकर खड़े हुए। उनमें से एक वृद्ध साथ के युवक से बोला "जान पड़ता है कि राजघाट यही है। इधर बीस वर्ष से मैं पाटिलपुत्र नहीं आया। वीरेंद्र ! कोई मिले तो उससे मार्ग पूछ लो।"

वीरेंद्र—प्रभो ! घाट पर तो कोई नहीं दिखाई पड़ता है।

वृद्ध—अभी ऊपर की सीढ़ी पर कोई खड़ा था न।

वीरेंद्रसिंह ने ऊपर चढ़कर बालक-बालिका को देखा और उनसे पूछा "यह प्रासाद के नीचे का घाट है ?" शशांक उदास मन एकटक उसी ओर ताक रहे थे जिधर वह वृद्ध जाकर लुप्त हो गया था। वीरेंद्र-सिंह की बात पर उन्होंने दृष्टि फेरी। जो बात पूछी गई थी वह उनके कान में अब तक नहीं पड़ी थी। उन्होंने पूछा "क्या कहा ?" वीरेंद्र ने झुँझलाकर कहा "बहरे हो क्या ? मैं पूछता हूँ कि क्या यह प्रासाद का घाट है।" शशांक ने प्रश्न का कोई उत्तर न देकर पूछा "तुम कौन हो ? कहाँ से आते हो ?" वीरेंद्र और भी कुढ़ गया और बोला "बाबा ! तुम्हारी सब बातों का मैं उत्तर दूँ, इतना समय मुझे नहीं है। प्रासाद का घाट किधर है यही मुझे बता दो।"

"प्रासाद का घाट तो यही है, पर इस मार्ग से साधारण लोग नहीं जा सकते।"

"बाबा ! इस मार्ग से जाता कौन है ?" यह कहकर वह वृद्ध के पास लौट गया और बोला "प्रभो ! प्रासाद का घाट तो यही है, पर घाट पर कई लड़के खड़े हैं। उनमें से एक की बातचीत तो राजपुत्र की सी है। वह कहता है कि इस मार्ग से जनसाधारण के जाने का निषेध है।". वृद्ध यशोधवलदेव ने हँस कर कहा "वीरेंद्र, लड़का ठीक कहता है।"

वीरेंद्र—तब क्या नाव पर फिर लौट चलेंगे ?

यशो०—न, इसी मार्ग से जायँगे। विशेष-विशेष अमात्यों और राजवंश के लोगों को छोड़ कर कोई गंगा के इस घाट की ओर नहीं आने पाता। बात यह है कि अंतःपुर की स्त्रियाँ प्रायः यहाँ गंगा स्नान करने आती हैं। इसी लिए उस लड़के ने तुमसे इस मार्ग से न जाने को कहा था। अच्छा अब तुम आगे-आगे चलो, मेरे लिए यहाँ कोई रोक-टोक नहीं है।

सब लोग सीढ़ियाँ चढ़ कर घाट के ऊपर आए। यशोधवल ने देखा कि एक बालक उनका मार्ग रोकने के लिए बीच में आकर खड़ा है, दूसरा बालक और बालिका बैठे हैं। बालक ने पूछा "आप कौन हैं ?"

यशो०—मैं रोहिताश्व का गढ़पति हूँ। मेरा नाम है यशोधवल।

शशांक—आप कहाँ जायँगे ?

यशो०—सम्राट् से मिलने के लिए प्रासाद के भीतर जाना चाहता हूँ।

शशांक—आप क्या नहीं जानते कि इस मार्ग से होकर साधारण लोग नहीं जा सकते। आप उधर से घूम कर दक्खिन फाटक से होकर जायँ। उसी मार्ग से आप प्रासाद में जा सकते हैं।

वीरेंद्र—अच्छा, यदि हम लोग इसी मार्ग से जायँ तो क्या तुम हम लोगों को रोक लोगे ?

कुमार ने हँसकर कहा "कहाँ तक जायँगे, गंगा द्वार पर द्वार रक्षक आप लोगों को सीधे लौटा देंगे, फिर इसी घाट पर आना होगा और नाव पर लौट जाना पड़ेगा, क्योंकि यहाँ से नगर की ओर जाने का नदी छोड़ और कोई मार्ग नहीं है।"

यशो०—सुनो! मैं मगध साम्राज्य की साधारण प्रजा में नहीं हूँ, सेना दल में मेरी पदवी महानायक* की है। राजद्वार में मुझे युवराज भट्टारकपादीय का मान प्राप्त है। अंतःपुर को छोड़ प्रासाद में और कहीं मेरे लिए रोक-टोक नहीं है।

शशांक—आप—महानायक—युवराजभट्टारक ?

यशो०—अचंभा क्यों मानते हो ?

शशांक—मैंने आज तक कभी किसी महानायक या युवराज भट्टारक को इस रूप में प्रासाद में जाते नहीं देखा है। वे जिस समय आते हैं सैकड़ों पदातिक और सवार उनके आगे-पीछे रहते हैं। वे जिस मार्ग से होकर निकलते हैं डर के मारे लोग भाग जाते हैं। साम्राज्य के किसी युवराज भट्टारक को मैंने कभी पैदल चलते नहीं देखा है।

यशो०—तुम कौन हो ?

शशांक—मैं सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मेरा नाम है शशांक।

इतना सुनते ही वृद्ध गढ़पति की तलवार कोष से निकल पड़ी और उसकी नोक उसकी श्वेत उष्णीश पर जा लगी। उस समय सैनिक वर्ग में अभिवादन की यही रीति थी। अभिवादन के पीछे वृद्ध ने कहा "युवराज! मैं इधर बहुत दिनों से पाटलिपुत्र नहीं आया इसी से आपको पहचान न सका। मेरे इस अपराध को आप ध्यान में न लायँगे। जिस समय मैं राजसभा में आता-जाता था उस समय आप

---

*महानायक—उच्चपदस्थ सामंत, राजा या गढ़पति।

लोगों का जन्म नहीं हुआ था। उस समय हम लोग आपके चाचा के पुत्र देवगुप्त को ही साम्राज्य का भावी अधीश्वर जानते थे। युवराज! साम्राज्य के और-और महानायकों के पास जो है वह मेरे पास नहीं है इसी लिए तो मैं सम्राट् के पास जाता हूँ।"

शशांक चुपचाप वृद्ध के लंबे डीलडौल और उसके शरीर पर पड़े हुए घावों के असंख्य चिह्नों की ओर देख रहे थे। वृद्ध की बात पूरी होने पर उन्होंने कहा "अच्छा! आप हमारे साथ आएँ।"

———

दसवाँ परिच्छेद

तरला का दूतीपन

उस समय पाटलिपुत्र नगर के किनारे-किनारे बहुत सी बस्ती हो गई थी। प्राचीन नगर के प्राचीर के भीतर स्थान की कमी होती जाती थी। स्थानाभाव के कारण नगर के दरिद्र श्रमजीवी बाहर बसते थे। बहुत दिनों से नगर प्राचीर के पूर्व और दक्षिण ओर कई टोले बस गए थे। नागरिक उस भाग को उपनगर कहा करते थे। नगर के उत्तर और पश्चिम भागीरथी और सोन की धारा बहती थी। बहुत से लोग इन नदियों के पार भी बसते थे और नित्य सबेरे काम करने नगर में आते और संध्या को लौट जाते थे। दक्खिन के टोले में एक पुराने मंदिर के सामने कई बौद्ध भिक्खु घास के ऊपर बैठे बातचीत कर रहे थे। मंदिर के पीछे कुछ दूर तक ऊँचा टीला सा चला गया था जिस पर नए-पुराने

पेड़ों का जंगल लगा था, और कहीं-कहीं पत्थर के पुराने खंभे दिखाई पड़ते थे। पहले कभी वहाँ पत्थर का बहुत बड़ा बौद्ध मंदिर था। उसके गिर जाने पर बौद्ध भिक्खुओं ने सामने एक छोटा सा मंदिर उठा कर उसमें प्रतिमा स्थापित कर दी थी। घास पर बैठे जो भिक्खु बातचीत कर रहे थे वे सब के सब तरुण अवस्था के थे। उन्हें देखने से जान पड़ता था कि उन्हें गृहस्थ आश्रम छोड़े बहुत दिन नहीं ए हैं। गृहत्यागी भिक्खुओं में जैसी गंभीरता होनी चाहिए वैसी उनमें अभी नहीं आई थी।

उनके बीच एक अधेड़ भिक्खु भी बैठा था। अवस्था में उनके जोड़ का न होने पर भी वह उनके साथ मिलकर हंसीठट्ठा करता था। इस भिक्षुमंडली से थोड़ी दूर पर एक तरुण भिक्खु बैठा था। वह मन ही मन न जाने क्या सोच रहा था जिससे उसके साथियों का हँसीठट्ठा उसके कानों तक नहीं पहुँचता था। भिक्खु लोग उसकी ओर दिखा दिखाकर न जाने क्या क्या कहते और ठट्ठा मार मार कर हँसते थे। किंतु जिसपर यह सब बौछार हो रही थी उसका ध्यान कहीं दूसरी ही ओर था। वह मानो कुछ सुनता ही न था।

इसी बीच एक युवती मंदिर के सामने आ खड़ी हुई। उसे देखते ही भिक्षुओं की हँसी रुक गई। एक ने उस अधेड़ का हाथ दबाकर कहा "आचार्य्य! जान पड़ता है कि यह युवती तुम्हारी ही खोज में आई है"। भिक्खु उसे रोककर बोला "तू पागल हुआ है। आचार्य्य अब स्थविर हो गए हैं। युवती स्त्री बूढ़े को खोजकर क्या करेगी?" पहले भिक्खु की बात तो बूढ़े को बहुत अच्छी लगी, उसका चेहरा खिल उठा पर दूसरे की बात सुनकर उसका मुँह लटक गया, वह मन ही मन जल उठा और बोला "तू मुझे बूढ़ा कहता है, एक स्त्री के सामने? मैं अभी तेरे प्राण लेता हूँ।"

पहला भिक्खु—आचार्य्य ! बात तो इसने बड़ी बुरी कही। पर उस दिन संघस्थविर भी मुझसे कहते थे कि आचार्य्य देशानंद अब वृद्ध हुए, वे तरुण भिक्खुओं को शिक्षा देने के योग्य हैं। स्थविर—

वृद्ध भिक्षु—स्थविर तेरा बाप, तेरा दादा। तुम सबने क्या मुझे पागल समझ रखा है ? अभी मैं उठकर बताता हूँ।

वृद्ध दोनों भिक्खुओं की ओर झपटा। सब के सब उसे पकड़कर बिठाने लगे, पर वह किसी की नहीं सुनता था। अंत में बड़ी बड़ी मुश्किलों से वह शांत हुआ। युवक भिक्खुओं ने यह बात मान ली कि उन्हीं का वयस् अधिक है आचार्य्य देशानंद तरुण हैं। उनके बाल जो थोड़े बहुत पके हैं वह अधिक अध्ययन से। जिस स्त्री को देखकर भिक्खु मंडली के बीच यह सब झगड़ा खड़ा हुआ था कपड़े लत्ते से वह अच्छी जाति की और किसी धनाढ्य नागरिक की परिचारिका जान पड़ती थी। गड़बड़ देखकर अब तक वह दूर खड़ी थी। भिक्खुओं को शांत देख वह आगे बढ़कर कुछ पूछा ही चाहती थी कि आचार्य्य सामने आकर बोले "तुम क्या मुझे ढूँढ़ने आई हो ?" रमणी ने कहा "नहीं, यहाँ कहीं जिनानंद भिक्खु रहते हैं ?" उसकी बात सुनकर वृद्ध हताश होकर बैठ गया। रमणी फिर पूछने लगी "यहाँ जिनानंद भिक्खु रहते हैं ?" आचार्य्य को निरुत्तर देख एक भिक्खु ने उत्तर दिया "हाँ, रहते हैं"।

रमणी—महाराज ! थोड़ा उन्हें मेरे पास भेज देंगे।

भिक्खु—क्यों ?

रमणी—काम है।

भिक्खु—क्या काम है, बताओ।

रमणी—बताने की आज्ञा मुझे नहीं है।

भिक्खु—हमारे संघाराम* में कोई तरुण भिक्खु किसी युवती से एकांत में नहीं मिल सकता।

रमणी—मैं एकांत में मिलना नहीं चाहती।

भिक्खु—तो फिर गुप्त बात कहोगी कैसे?

रमणी—मैं पत्र लाई हूँ।

भिक्खु—लाओ, दो।

रमणी—क्षमा कीजियेगा। जिनानंद को छोड़ मैं पत्र और किसी को नहीं दे सकती।

भिक्खु—जिनानंद भिक्खु को पहचानोगी कैसे?

रमणी—मेरे पास संकेतचिह्न है।

इतने में पीछे से एक भिक्खु पुकार कर बोला "अरे, ओ जिनानंद! कुछ देखते सुनते भी हो? क्या एकबारगी समाधि लगा रखी है?"

और भिक्खुओं से दूर जो भिक्खु बैठा बैठा कुछ सोच रहा था उसने सिर उठाकर देखा। दूसरा भिक्खु फिर बोला "यह रमणी तुमसे मिलने आई है। तुम क्या सारी बातें नहीं सुनते थे। इसे देखकर अभी क्या क्या रंग उड़े थे।" जिनानंद कुछ न बोला। रमणी को देखते ही वह घबराया हुआ उसके पास गया और बोला "तरले! तुम कब आई? क्या समाचार है?" रमणी कुछ देर तक उसका मुँह ताकती रही, फिर प्रणाम करके बोली "भैया जी! नए भेस के कारण मैं पहचान नहीं सकी थी। समाचार बहुत कुछ है, पर ये बाबा लोग भलेमानस नहीं जान पड़ते। चलिए उधर ओट में चलें"। रमणी मंदिर के पीछे पेड़ों के झुरमुट की ओर बढ़ी। तरुण भिक्खु भी पीछे पीछे गया।

वृद्ध अब तक तो चुपचाप बैठा रहा। पर जिनानंद और तरला के पेड़ों के झुरमुट में जाते ही उठा और उनकी ओर बढ़ा। उसकी

---

* संघाराम = वह उद्यान या स्थान जहाँ बौद्धों का संघ रहता हो।

यह लीला देख कई तरल भिक्खु हँस पड़े। वृद्ध ने उन्हें घूरकर कहा "तुम सब अभी बच्चे हो, स्त्री-चरित्र क्या जानो। मैं इस कुमार्गी भिक्खु को ठिकाने पर लाने के लिये जाता हूँ।" भिक्खु हँसते हँसते लोट पड़े। वृद्ध ने देखकर भी न देखा। वह बाघ की तरह दबेपाँव पेड़ों के बीच दबकता हुआ उन दोनों के पीछे पीछे चला जाता था।

वृद्ध के अदृश्य हो जाने पर एक भिक्खु बोला "यह जिनानंद कौन है, तुम लोग कुछ कह सकते हो।"

दूसरा भिक्खु—रूपरंग तो राजपुत्रों का सा है। वह किसी धनी का पुत्र है इसमें तो कोई संदेह नहीं।

पहला भिक्खु—जिनानंद का कोई गूढ़ रहस्य है, जो किसी प्रकार खुलता नहीं है।

दू० भिक्खु—यह कैसे कहते हो?

प० भिक्खु—संघस्थविर* ने तुमसे कुछ कहा नहीं था?

दू० भिक्खु—न।

प० भिक्खु—तुम थे नहीं, कहीं गए थे। जिनानंद जिस दिन आया है उस दिन संघस्थविर ने सब को बुलाकर कहा है कि उसपर बराबर दृष्टि रखना, वह आँख की ओट न होने पाए। रात को भी उसकी कोठरी के बाहर दो भिक्खु सोते हैं। न जाने कितने नए भिक्खु आए पर ऐसी व्यवस्था किसी के लिए नहीं की गई थी।

दू० भिक्खु—जान पड़ता है कि कोई भारी शिकार है। संघ के जैसे बुरे दिन आज हैं उन्हें देखते नए शिकार की इतनी चौकसी होनी ही चाहिए।

---

* संघस्थविर = बौद्ध मठाध्यक्ष या संप्रदाय का नायक।

प० भिक्खु—यह तो समझता हूँ, पर जिनानंद का भेद नहीं खुलता। इसके पहले उसके पास और भी पत्र आ चुके हैं।

फूलों की शय्या पर एक भिक्खु लेटा हुआ था। वह घबराकर उठ बैठा और बोला "अरे सावधान रहना! दूर पर वज्राचार्य्य† दिखाई पड़ा है"। उसकी बात सुनते ही सब उठकर खड़े हो गए। देखते देखते पेड़ की डाल कंधे पर रखे, मैले और फटे पुराने कपड़े पहने एक वृद्ध मंदिर के सामने आया। उसे देख भिक्खुओं ने साष्टांग प्रणाम किया। गंगा के किनारे पाठक एक बार उसे देख चुके हैं। वही, जिसने युवराज के संबंध में भविष्यद्वाणी की थी। वृद्ध ने पूछा "देशानद कहाँ हैं?"

भिक्षुगण—वन के भीतर गए हैं।

वृद्ध—संघस्थविर कहाँ हैं?

भिक्षुगण—मंदिर के भीतर।

वृद्ध देखते देखते वहाँ से चल दिया और दृष्टि के बाहर हो गया।

जंगल के भीतर एक टूटे खंभे की आड़ में तरला और जिनानंद खड़े धीरे धीरे बातचीत कर रहे हैं।

तरला—भैया जी! अब क्या इसी प्रकार दिन काटोगे?

जिना०—क्या करूँ? कुछ वश नहीं। इन्होंने मुझे बाँध तो नहीं रखा है, पर बाँध रखना इससे कहीं अच्छा था। सदा मेरे पीछे लोग लगे रहते हैं, वे मुझे बराबर दृष्टि के सामने रखते हैं। इससे भाग निकलने का भी कोई उपाय नहीं है।

तरला—तब क्या अब घर न लौटेंगे?

जिना०—लौटना यदि मेरी इच्छा पर होता—तो मैं क्या अब तक यहाँ पड़ा रहता?

---

† सिद्ध भिक्षु=ये सदा हाथ में वज्र लिए रहते थे।

तरला—तुम्हें संन्यासी बनाकर इन सबों ने क्या पाया है मेरी समझ में नहीं आता। तुम अपने बाप के इकलौते बेटे थे, न जाने किस कलेजे से उन्होंने जीवन भर के लिए तुम्हें छोड़ दिया।

जिना०—तरले! उन्होंने क्या लाभ समझकर मुझे भिक्खु बनाया है, यह क्या तुम नहीं जानतीं? पिता के मरने पर उनकी अतुल संपत्ति का उत्तराधिकारी मैं ही हूँ। यदि मैं घर में रहता तो यूथिका के साथ विवाह करके गृहस्थ होता। पर जिस दिन मैंने संघ में प्रवेश किया, मैं भिक्खु हुआ, उसी दिन से मेरा सब अधिकार जाता रहा, उसी दिन से मानो यह संसार मैंने छोड़ दिया। अब पिता के मरने पर संपत्ति पर मेरा कोई अधिकार न रहेगा, ये संन्यासी ही वह सब संपत्ति पाएँगे। इसी लिए ये सब मुझे यहाँ ले आए हैं और मेरे ऊपर इतनी कड़ी दृष्टि रखते हैं।

तरला—भैया! हो तो तुम वही वसुमित्र ही!

जिना०—अब वह नाम मुँह पर न लाओ, तरला! समझ लो कि सेठ वसुमित्र मर गया, अब तो मेरा नाम जिनानंद है।

तरला—भैया जी, ऐसी बात न कहो। यदि इस दासी के तन में प्राण रहेगा तो वसुमित्र यहाँ से निकलेंगे, फिर गृहस्थी में जाएँगे और यूथिका से विवाह करके.........।

जिना०—कहाँ की बात तरला! यह सब दुराशा मात्र है, दुराशा या दुःस्वप्न भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार का स्वप्न देखना भी मेरे लिए इस समय पाप है।

तरला—भैया जी! मक्खीचूस समझकर तुम्हारे पिता का नगर में सबेरे कोई नाम नहीं लेता। न जाने कितने गृहस्थों को तुम्हारे पिता ने राह का भिखारी कर दिया। पहले जब मैं तुम्हारे पिता की निठुराई की बातें सुनती तो मन ही मन कहती कि चारुमित्र मनुष्य नहीं हैं,

पशु हैं। पर अब देखती हूँ कि चारुमित्र पशु नहीं, पत्थर हैं। पशु के हृदय में भी अपनी संतान का स्नेह होता है।

जिना०—मेरे पिता एकबारगी हृदयहीन नहीं हैं। उन्हें धन की हाय हाय रहती है सही, पर उनके चित्त में कोमलता है। तरला! उन्होंने बौद्धसंघ की उन्नति की अभिलाषा से मुझे उत्सर्ग कर दिया है। मेरे धन से बौद्धसंघ की उन्नति हो, यह उनका उद्देश्य है। राजा खुल्लमखुल्ला तो बौद्ध-विद्वेषी नहीं हैं, पर बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं हैं। उनके मरने पर कहीं मैं अपना उत्तराधिकार जताकर बौद्धसंघ के साथ कोई झगड़ा न करूँ, इसी डर से पिता ने मुझसे संसार ही छुड़ा दिया, मुझे मृतक कर दिया। अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपना एक मात्र पुत्र तक, उन्होंने धर्म की उन्नति के लिए उत्सर्ग करके अक्षय पुण्य संचित किया है।

तरला—भैया जी मुझसे अब और न कहलाओ। तुम्हारा पिता समझकर मैं उनको कुछ नहीं कह सकती।

कुछ दूर पर सूखे पत्तों पर किसीके पैर की आहट सुनाई पड़ी। जिनानंद डरकर कहने लगा "अब चलता हूँ। कोई आ रहा है।"

तरला—कुछ डर नहीं, मैं जाकर देखती हूँ।

एक पेड़ के पीछे खड़ी होकर तरला ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, फिर आकर बोली "कोई डर नहीं, वही मुँहजला बुड्ढा है, यहाँ तक पीछे लगा आया है। अब मैं यहाँ और न ठहरूँगी। तुम्हें यहाँ सड़ना नहीं होगा, मैं तुम्हें यहाँ से छुड़ा ले जाऊँगी।" इतना कहकर तरला डग बढ़ाती हुई चली गई। जिनानंद लंबी साँस लेकर लौटा और उसने देखा कि कुछ दूर पर देशानंद तरला के पीछे-पीछे चला जा रहा है।

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

यशोधवल की बात

बौद्धमंदिर के भीतर घोर अंधकार है। घृत का एक दीपक टिमटिमा रहा है, किंतु उसके प्रकाश में देवप्रतिमा का आकार भर थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ रहा है। सामने पुष्प, गंध और नैवेद्य सजाकर रखा है। देखने में जान पड़ता है कि मंदिर में कोई नहीं है। मंदिर के एक कोने में एक लंबे आकार का पुरुष बैठा है। वह न कुछ बोलता है, न हिलता डोलता है; जान पड़ता है कि ध्यानमग्न है। इतने में द्वार पर से किसीने पुकारा "स्थविर महाराज मंदिर में हैं या नहीं?"

भीतर से उत्तर मिला "कौन?"

"शक्रसेन।"

"भीतर चले आओ।"

वही हमारा परिचित वृद्ध कंधे पर पेड़ की डाल रखे मंदिर में घुसा। लंबे डीलवाले पुरुष ने पूछा "वज्राचार्य्य! यह पेड़ की डाल कहाँ पाई?"

"यह मेरा घोड़ा है, इसी के बल से यशोधवल के हाथ से बचकर मैं आ रहा हूँ। नहीं तो अब तक तुम यही सुनते कि वज्राचार्य्य का परिनिर्वाण हो गया।"

"तब क्या तुम कुछ कर न सके?"

"करना धरना तो मैं जानता नहीं, हाँ शशांक अब तक जीवित है।"

"तब तुम गए थे क्या करने ?"

"बंधुगुप्त ! मैं क्या करने गया था, इसे जान बूझकर न पूछो। मैं शशांक को मारने गया था, पर मार न सका।"

"क्या दाँव नहीं मिला ?"

"दाँव मिला था। शशांक, माधवगुप्त और चित्रा तीनों गंगा के किनारे खेल रहे थे। उनके साथ कोई रक्षक भी नहीं था।"

"तब फिर ?"

"तब फिर क्या ? मार नहीं सका, और क्या ? बंधुगुप्त ! मेरा हाथ न उठ सका। तुमने जो वज्र मुझे दिया था, वह अब तक वस्त्र के भीतर छिपा है। मैं उसे बाहर न निकाल सका। स्थविर ! नरहत्या करने से तुम्हारा हृदय पत्थर का हो गया है, तुम्हारे अंतःकरण की कोमल वृत्तियाँ सब लुप्त हो गई हैं। मैं क्यों लौट आया, यह तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारा उपदेश सुनकर मैं शशांक को मारने का दृढ़ निश्चय करके यहाँ से चला था। जिस समय दूर से मैंने उनको असहाय अवस्था में गंगा के बालू पर बैठे देखा था, तब तक भी मैं विचलित नहीं हुआ था। पर जब मैं उनके पास गया तब ऐसा जान पड़ा मानो वज्र की मुट्ठी से किसी ने मेरा हाथ थाम लिया है। तुम्हारे उपदेश के अनुसार शशांक को मैंने उसके जीवन का भीषण भविष्य तो सुना दिया, पर उसकी हत्या न कर सका। स्थविर ! भाग्यचक्र में सब बँधे हैं, ललाट में जो लिखा है वह कभी टलने का नहीं। तुम्हारे ऐसे सैकड़ों संघस्थविर, मेरे ऐसे हजारों वज्राचार्य मिलकर भी उस चक्र की गति तिल भर फेर नहीं सकते। स्थविर गंगा की रेत में उस बालक का मुख देखकर मैंने समझ लिया कि शक्रसेन या बंधुगुप्त से उसका एक बाल भी बाँका नहीं हो सकता।"

"तुम भीरु हो, तुम कायर हो, तुम पुरुष नहीं हो। तुम बालक का मनोहर मुखड़ा देखकर मोहित हो गए। मार* की आसुरी माया ने तुम्हें घेर लिया: इसीसे तुम उस बालक की हत्या न कर सके। वज्राचार्य्य! तुम मागध संघ के मुखिया हो। उत्तरापथ का आर्य्यसंघ भी तुम जिधर उँगली उठाओ उधर चल सकता है। वज्राचार्य्य तुम भी भाग्यचक्र की ओट लेकर बैठ रहना चाहते हो? शक्रसेन! भोले भाले बच्चों और बूढ़ी स्त्रियों को छोड़ इस युग में भाग्यचक्र को और मानता कौन है? छि! छि! तुमसे एक सड़ा सा काम न हो सका! आर्य्यसंघ की उन्नति के लिए तुम एक सामान्य बालक की हत्या तक न कर सके! वज्राचार्य्य! तुम्हें अपना कलंकी मुँह छिपाने के लिए कहीं स्थान न मिलेगा। युग युगांतर तक, जब तक बौद्ध धर्म इस संसार में रहेगा, तुम्हारी अपकीर्त्ति बनी रहेगी। वृद्ध! तुम वहीं समा क्यों न गए? कौन सा मुँह लेकर लौट आए।"

"स्थविर! तुम भी वृद्ध हुए, बालक नहीं हो। संघ की सेवा करते तुम्हारे बाल पक गए। तुम्हें मैं अधिक क्या समझाऊँ? थोड़ा आँख खोलकर देखो, जीव मात्र भाग्यचक्र में बँधे हैं। यदि भोलेभाले बच्चों को छोड़ और कोई भाग्यचक्र नहीं मानता, तो तुम इतनी देर तक गणना करके क्यों मरते रहे? अब तक तुम शशांक की जन्मपत्री फैलाए क्या बैठे हो? बंधुगुप्त! हम दोनों ने एक ही दिन प्रव्रज्या† ग्रहण की, साथ रहकर आजन्म संघ का सेवा की, सुख दुःख, संपद विपद में बराबर एक दूसरे के पास रहे, तुम क्या मेरा स्वभाव तक भूल गए!

---

* मार=संसार को मोह में फँसानेवाला, जिसने बुद्ध भगवान् को सुखभोग के अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाए थे।

† बौद्ध भिक्खुओं की दीक्षा, संन्यास।

बच्चों के गिड़गिड़ाने और स्त्रियों के आँसू बहाने पर मुझे कभी विचलित होते देखा है ? तुम मुझे व्यर्थ धिक्कारते हो। मुझे पूरा निश्चय है कि शशांक मेरे हाथ से नहीं मारा जा सकता। स्थविर ! वह अब बच्चा नहीं है, युवावस्था के किनारे आ रहा है। मुझे उसके मुख पर राजसी गंभीरता दिखाई दी। डर उसे छू नहीं गया है। वह सब प्रकार से मगध का राजा होने योग्य है। तुम वृथा चेष्टा करते हो। अंग, बंग, कलिंग, गौड़ और मगध में ऐसा कोई नहीं है जो उसकी गति रोक सके।"

इतना कह कर वृद्ध बैठ गया। स्थविर के मुँह से कोई शब्द न निकला। बहुत देर पीछे स्थविर ने धीरे से पूछा "तो क्या गणना मिथ्या है?"

"गणना को मिथ्या कैसे कहूँ ! गणना में तुमसे कहीं भूल हुई होगी।"

"अच्छा ठहरो, मैं फिर से गणना करके देखता हूँ"—यह कह संघस्थविर ने दीपक की बत्ती उसकाई और ताड़ पत्र, लेखनी और मसि लेकर वह गणना करने लगा।

आधे दंड के उपरांत किसी ने आकर बाहर से मंदिर के द्वार की संकल खटखटाई। वज्राचार्य ने पूछा "कौन है?" द्वार पर से वह व्यक्ति बोला "मैं हूँ, बुद्धमित्र।" कपोतिक संघाराम* से एक बहुत ही आवश्यक संवाद लेकर दूत आया है, वह भीतर जाय ?

वज्राचार्य—कह दो, थोड़ा ठहरे।

बंधुगुप्त सिर उठा कर बोला "गणना कभी मिथ्या होने वाली नहीं। आज दोपहर तक शशांक का मृत्यु योग था, किंतु नक्षत्र के प्रतिकूल होने पर भी सूर्य की दृष्टि अच्छी थी।"

---

*कपोतिक संघाराम—पाटलिपुत्र नगर का एक प्राचीन बौद्ध मठ जो सम्राट अशोक का बनवाया हुआ था।

वज्राचार्य—हाँ, एक बात कहना तो मैं भूल ही गया। मेरे वहाँ पहुँचने पर एक नई बाधा खड़ी हुई अर्थात् यशोधवलदेव—

बंधु०—क्या कहा ?

वज्रा०—युवराज भट्टारकपादीय महानायक यशोधवलदेव। बंधुगुप्त ? तुम उनके पुत्र की हत्या करने वाले हो। क्या इतने ही दिनों में रोहिताश्व के गढ़पति को भूल गए ?

बंधुगुप्त अब तक बैठा था, यह बात सुनते ही वह घबरा कर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा "शक्रसेन ! हँसी न करना, ठीक-ठीक कहो। क्या सचमुच यशोधवलदेव नगर में आए हैं ? यदि ऐसा हुआ तो भारी विपत्ति समझो। केवल मेरे ही ऊपर नहीं सारे संघ पर विपत्ति आई समझो। ठीक-ठीक बताओ, क्या सचमुच यशोधवल ही को तुमने देखा ?"

वज्राचार्य—यह क्या कहते हो, क्या दस वर्ष में ही मैं यशोधवल को भूल जाऊँगा ? घबराओ न, देखो कपोतिक संघाराम से कोई दूत आया है। बुद्धमित्र ! दूत को भीतर ले आओ।

एक तरुण भिक्खु एक वृद्ध भिक्खु को साथ लिए मंदिर के भीतर आया। दोनों ने प्रणाम किया। वज्राचार्य ने पूछा "कहो, क्या संवाद है ?" वृद्ध बोला "महास्थविर को विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि रोहिताश्व के गढ़पति महानायक यशोधवलदेव आज बीस वर्ष पर फिर नगर में आए हैं। इसी लिए उन्होंने मंत्रणा सभा करने का विचार किया है।"

वज्राचार्य—यशोधवल के आने का पता मुझे लग चुका है। कल प्रातःकाल पुराने दुर्ग के मुँडेरे पर मंत्रणा सभा होगी। सूर्य की किरनों के दुर्ग के कलशों पर पड़ने के पहले सभा का सब कार्य समाप्त हो जाना चाहिए।

वज्राचार्य का आदेश सुन कर दोनों भिक्खुओं ने प्रणाम किया और वे मंदिर के बाहर गए।

बंधु०—तो सचमुच यशोधवलदेव आ गया है। शक्रसेन! अब इस बार किसी की रक्षा नहीं। सोया हुआ सिंह जागा है। उसे इसका पता अवश्य लग गया है कि उसके पुत्र का मारनेवाला मैं ही हूँ। यह न समझना कि वह केवल मेरी ही हत्या करके शांत हो जायगा। वह सारे बौद्ध संघ को उखाड़ फेंकने की चेष्टा करेगा।

वज्राचार्य—सचमुच भारी विपत्ति है।

बंधु०—तुम मेरी बात समझ रहे हो न? जान पड़ता है, यशोधवल के ही हाथ से मेरी मृत्यु है। अच्छा ठहरो, गणना करके भी देख लूँ।

वृद्ध ने फिर दीपक जलाया और ताड़पत्र पर अंक लिखकर गणना करने लगा। अकस्मात् उसके मुँह का रंग फीका पड़ गया। ताड़पत्र और लेखनी दूर फेंक वह उठ खड़ा हुआ और ऊँचे स्वर में बोल उठा "सच समझो, वज्राचार्य, यशोधवल मुझे अवश्य मारेगा। गणना का फल तो कभी मिथ्या होने का नहीं। अब किसी प्रकार मुझे बचाओ। यशोधवल की प्रतिहिंसा बड़ी भीषण होगी।"

वज्राचार्य हँस कर बोला "स्थविर! इतने अधीर क्यों होते हो? यशोधवल तुम्हारे प्राण लेने अभी तो आता नहीं है। तुम तो भाग्यचक्र पर विश्वास नहीं करते न?"

बंधु०—सखा शक्रसेन! क्षमा करो। न समझ कर ही मैंने दो चार कड़ी बातें तुम्हें कही थीं। यशोधवल का बड़ा डर है। उसके निरस्त्र शृंखलबद्ध पुत्र को मैंने बकरे की तरह काटा है। अवश्य उसे इसका पता लग गया है। वह मुझे छोड़ नहीं सकता।

वज्रा०—अब भी तुम मृत्यु से इतना डरते हो?

बंधु—तुम तो हो पागल, तुम्हें मैं क्या समझाऊँ ? मैं अभी मरना नहीं चाहता। अभी मुझे बहुत कुछ करना है।

वज्रा०—चित्त स्थिर करो, घबराने से क्या होगा। यदि मृत्यु आनेवाली ही होगी तो व्याकुल होकर सिर पटकने से क्या बच जाओगे ? बंधुगुप्त ! तुम आर्य्यसंघ के नेता हो। ऐसी अधीरता तुम्हें शोभा नहीं देती।

बंधु—वज्राचार्य्य ! जैसे हो वैसे अब मेरे प्राण बचाओ। मुझे कहीं छिपने का स्थान बताओ। ऐसा जान पड़ता है कि मंदिर के एक एक खंभे के पीछे अँधेरे में एक एक यशोधवलदेव पुत्र की हत्या का बदला लेने के लिए तलवार खींचे खड़े हैं।

वज्रा०—अच्छा चलो, तुम्हें गुप्तगृह में छिपा आऊँ।

बंधु—चलो।

वज्राचार्य्य ने बंधुगुप्त का आसन लपेटकर उठा लिया। आसन उठाते ही उसके नीचे काठ की एक चौड़ी पटरी दिखाई दी जिसे हटाते ही एक गुप्त-द्वार प्रकट हुआ। वज्राचार्य्य ने दीपक हाथ में ले लिया और सीढ़ियों से होकर वह नीचे उतरने लगा। बंधुगुप्त भी डरता डरता साथ साथ चला। वह पीछे फिर फिरकर ताकता जाता था। मंदिर में अँधेरा छा गया।

———

बारहवाँ परिच्छेद

नायक समागम

संध्या का अंधेरा अब गहरा हो चला है। बाहरी टोले की एक पतली गली से एक युवती जल्दी जल्दी नगर की ओर लपकी चली जा रही है। मार्ग में बहुत कम लोग आते जाते दिखाई देते हैं। जो दो एक आदमी मिल भी जाते हैं उन्हें पीछे छोड़ती वह बराबर बढ़ती चली जा रही है। अँधेरा अब और गहरा हो गया; सामने का मार्ग सुझाई नहीं पड़ता। युवती विवश होकर धीरे धीरे चलने लगी। अकस्मात् पीछे किसी के पैर की आहट सुनाई पड़ी। वह खड़ी हो गई, आहट भी बंद हो गई। युवती इधर उधर देखकर फिर चलने लगी। कुछ देर में उसे जान पड़ा जैसे कोई उसके पीछे पीछे आ रहा है। वह फिर खड़ी हो गई, पैर का शब्द फिर थम गया। युवती इधर उधर ताककर एक अट्टालिका के कोने में छिप गई। वहाँ से उसने देखा कि सिर से पैर तक कपड़े से ढकी एक मनुष्य-मूर्त्ति दबे पाँव धीरे धीरे गली में चली जा रही है। अँधेरे में वह उसका मुँह न देख सकी। जब वह ममुष्य आगे निकल गया तब युवती निकलकर उसके पीछे पीछे चली।

वस्त्र से ढका हुआ जो मनुष्य चला जाता था वह कुछ दूर जाकर आप ही आप बोल उठा, "न, इधर नहीं गई। चलें, लौट चलें"। युवती ने सुन लिया और फिर एक घर की आड़ में अँधेरे में छिप गई। वह मनुष्य धीरे धीरे लौटने लगा। जब वह अँधेरे में दूर निकल

गया तब वह युवती फिर निकलकर जल्दी जल्दी चलने लगी। आधा दंड भी नहीं बीता था कि पीछे फिर वही पैरों की आहट सुनाई पड़ने लगी। अब तो वह कुछ डरी और मार्ग के किनारे के झाड़ों और पेड़ों में जा छिपी। थोड़ी देर में वह कपड़ों से ढँका हुआ मनुष्य फिर दिखाई पड़ा। वह कुछ दूर जाकर फिर लौट पड़ा और ठीक उसी स्थान से होकर चला जहाँ युवती छिपी थी। पास पहुँचते ही उसके मुँह से निकला "न, इस बार वह निकल गई। तरला, तू ने गहरा झाँसा दिया।" जब वह कुछ दूर निकल गया तब युवती झाड़ों से निकल बीच रास्ते में आ खड़ी हुई और पुकारने लगी "अरे बाबा जी, ओ आचारी बाबा! उधर कहाँ जाते हो?" कपड़े से ढका हुआ वह मनुष्य चौंककर खड़ा हो गया। युवती हँसकर बोली "बाबा जी! कोई डर नहीं, मैं हूँ तरला।" वह वस्त्र का आवरण हटा तरला के पास आया और उसने उसके मुँह को अच्छी तरह देखा। फिर मुसकराकर बोला "क्या सचमुच तरला ही है? हे लोकनाथ! कृपा करो।"

तरला—बाबा जी! इतनी रात को किसके पीछे निकले थे?

देशा०—बहुत ठंढ है—थोड़ी—आग लेने निकला था।

तरला—कहते क्या हो, बाबा जी! अरे इतनी गरमी में तुम्हें जाड़ा लग रहा है? क्या वात ने ज़ोर किया है?

देशानंद चुप। तरला ने फिर पूछा "यदि किसी के पीछे नहीं निकले थे तो कपड़े के भीतर सिर क्यों ढाक रखा था?"

देशा०—कोई पहचान लेता तो?

तरला—तो क्या किसी स्त्री से मिलने अभिसार को चले थे?

देशा०—न, न, हम लोग संसारत्यागी भिक्खु हैं। हम लोग क्या अभिसार करते हैं?

तरला—बाबा! चलो उजाले में चलें।

देशा०—क्यों तरला ? यह स्थान तो अच्छा है।

तरला—कोई हम दोनों को यहाँ एक साथ देखेगा तो चारों ओर निंदा करेगा।

देशा०—यह तो ठीक है।

तरला—अच्छा तो मैं चली हूँ, तुम यहीं रहो।

देशा०—तुम अभी लौटोगी न ?

तरला—सो कैसे ? मैं तो जाती हूँ नगर की ओर फिर इधर क्या करने आऊँगी ?

देशा०—अरे नहीं, तरला। तुम जाओ मत, थोड़ा ठहरो। मैं तुम्हें आँख भर देख तो लूँ। तुम्हारे ही लिए मैं दो कोस दौड़ा आया हूँ !

तरला—तुम तो कहते थे मैं आग लेने निकला था।

देशा०—वह तो एक बात का बतकड़ था। बात कुछ और ही है।

तरला—क्या बात है, बताओ।

देशा०—हृदय की पीड़ा।

तरला—किसके लिए ?

देशा०—तुम्हारे लिए।

तरला—देखती हूँ, इस बुढ़ाई में भी तुम्हारे हृदय में रस उमड़ा पड़ता है।

देशा०—छि ! तरला ! यह क्या कहती हो ? मै तो समझता था कि तुममें कुछ रसिकता होगी। पर......

तरला—चिढ़ क्यों गए ? क्या हुआ ?

देशा०—तुम्हारी बात सरासर अरसिकता की हुई।

तरला—कौन सी बात ?

देशा०—अब मैं अपने मुँह से क्या कहूँ ?

तरला—यही जो मैंने तुम्हें बूढ़ा कहा ?

देशा०—अच्छा ! अब तुम नगर की ओर जाओ। प्रेम सेम का कुछ काम नहीं, मैं भी लौट जाता हूँ।

तरला—बाबा जी, रूठ क्यों गए ? तुम्हारे ऐसे बहुदर्शी आचार्य्य के लिए थोड़ी थोड़ी बातों पर चिढ़ जाना ठीक नहीं।

देशा०—तरला ! अब तुम्हें सचमुच रस का बोध हुआ। युवावस्था में जो प्रेम होता है वह प्रेम नहीं है, आभास मात्र है। जब तक वयस् कुछ अधिक नहीं होता तब तक मनुष्य प्रेम की मर्यादा नहीं समझ सकता। जैसे.........

तरला—जैसे दूध पककर खोया होता है, जो दूध से अधिक मीठा होता है।

देशा०—बहुत ठीक कहा। मेरे मन की बात तुमने खींच निकाली। तुम्हारी इन्हीं सब बातों पर न मैं लट्टू हूँ—मर रहा हूँ।

तरला ने देखा कि आचार्य की व्याधि धीरे धीरे बढ़ रही है। उसके प्रेम के बढ़ते हुए स्रोत को रोकना चाहिए। वह आचार्य्य से बोली "छि ! छि ! बाबा जी, आप करते क्या हैं ? मैं एक सामान्य स्त्री हूँ, दासी हूँ। मुझसे आपको ऐसी बात कहनी चाहिए ? आप परमपूज्य आचार्य्य हैं। आपने भगवान् बुद्ध की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग किया है। आपके मुँह से ऐसी बात नहीं सोहती।"

देशा०—तरला ! मैं मर रहा हूँ। चाहे मैं कोई हूँ, मेरा जीवन अब तुम्हारे हाथ है, चाहे रखो चाहे मारो। यदि तुम कृपादृष्टि न करोगी तो प्राण दे दूँगा।

तरला मन ही मन हँसी, समझी कि रोग के सब लक्षण धीरे धीरे प्रकट हो गए। उसे चुप देख देशानंद ने उसके दोनों पैर पकड़ लिए

और बोला "कहो तरला ! मेरे माथे पर हाथ रखकर, शपथ खाकर कहो" । तरला अधीर होकर कहने लगी "हैं हैं बाबा जी, यह क्या करते हो ? छोड़ो छोड़ो इस चलती सड़क के बीच—" । उसने अपने दोनों पैर छुड़ा लिए । देशानंद भी धूल झाड़ता उठ खड़ा हुआ और बोला—"तो शपथ करो" ।

तरला—क्या शपथ करूँ ?

देशा०—यही कि मुझसे मुँह न मोड़ोगी ।

तरला—बाबा जी, बात बड़ी भारी है । चटपट कुछ कह देना कठिन है । इस भरे यौवन में, इस मधुर वसंत में, किसी एक पुरुष से कैसे मैं कोई प्रतिज्ञा कर सकती हूँ ?

देशानंद मन ही मन सोचने लगे, कि स्त्रीजाति का व्यवहार ही ऐसा है । किंतु इस समय कुछ कहता हूँ तो सारा बना बनाया खेल बिगड़ जायगा । अच्छा कुछ दिन सोच विचार लेने दो । जायगी कहाँ ? अब तो हाथ से निकल नहीं सकती । जिनानंद के पास तो झख मारकर इसे आना ही होगा । उधर तरला सोच रही थी कि असहाय के सहाय भगवान् होते हैं । वसुमित्र को मैं बड़ी लंबी चौड़ी आशा बँधा आई हूँ । उससे कह आई हूँ कि जैसे होगा वैसे छुड़ाऊँगी । पर किस उपाय से छुड़ाऊँगी, यह जब सोचती हूँ तब वार पार नहीं सूझता । पार लगानेवाले भगवान् ने यह अच्छा अवलंब खड़ा कर दिया है । इस बुड्ढे बंदर की सहायता से मैं वसुमित्र को छुड़ा सकूँगी । इसे यदि मैं नचाती रहूँगी तो मेरा कार्य्य सिद्ध हो जायगा । इसकी सहायता से मैं सहज में संघाराम के भीतर जा सकती हूँ और वहाँ इसे ललचाकर वसुमित्र को छुड़ाने की युक्ति रच सकती हूँ । उसे चुप देख देशानंद बोला "क्या सोचती हो, बोलो" ।

तरला—तुम किस ध्यान में हो ?

देशा०—तुम्हारे ।

तरला—तो मैं भी तुम्हारे ही ध्यान में हूँ।

देशानंद ने तरला का हाथ पकड़ लिया और बोला "सच कहो, तरला! एक बार फिर कहो। सच सच कहो"।

तरला—बाबाजी! क्या करते हो, हाथ छोड़ो, हाथ छोड़ो, कहीं कोई आ न जाय।

देशानंद ने उदास होकर हाथ छोड़ दिया और कहा "अच्छा तो मुझे कब उत्तर मिलेगा?"

तरला—कल।

देशा०—निश्चय?

तरला—निश्चय।

देशा०—तो चलो तुम्हें घर पहुँचा आऊँ।

तरला—अच्छा, आगे आगे चलो।

वृद्ध आगे आगे चला। धीरे धीरे नगर का प्रकाश सामने दिखाई पड़ा। नगर में जाकर तरला निश्चिंत हुई। घर के पास पहुँचकर तरला ने सोचा कि अब बुड्ढे को लौटाना चाहिए। यदि वह मेरे सेठ का घर देख लेगा तो मेरे कार्य्य में बाधा पड़ सकती है। कुछ दूर आगे निकल कर वह वृद्ध से बोली "अब तुम मत आओ, लौट जाओ। मेरा पति कहीं तुम्हारे ऐसे युवा पुरुष के साथ मुझे देख पाएगा तो अनर्थ कर डालेगा।" तरला उसे युवा पुरुष समझती है, बुड्ढा तो इसी बात पर लहालोट हो गया, उसे अपने शरीर तक की सुध न रही। तरला उसका ध्यान दूसरी ओर देख चलती बनी। बहुत ढूँढ़ने पर भी बुड्ढे ने उसे कहीं न पाया।

तेरहवाँ परिच्छेद

राजद्वार

सम्राट् महासेनगुप्त तीसरे पहर सभामंडप में बैठे हैं। सम्राट् के सामने नागरिक लोग अपना-अपना दुःख निवेदन कर रहे हैं। विशाल सभामंडप के चारों ओर अपने-अपने आसनों पर प्रधान प्रधान राज-पुरुष और अमात्य बैठे हैं। प्रधान-प्रधान नागरिक और भूस्वामी उनके पीछे बैठे हैं। सबके पीछे नगर के साधारण नागरिक दल के दल खड़े हैं।

सम्राट् का मुख प्रसन्न नहीं है। वे चिंता में मग्न जान पड़ते हैं। स्थाण्वीश्वर राज के आगमन के पीछे उनके मुँह पर और भी अधिक चिंता छाई रहती थी। सिंहासन के दहने, वेदी के नीचे गुप्त साम्राज्य के प्रधान अमात्य हृषीकेश शर्म्मा कुशासन पर बैठे हैं। उनके पीछे प्रधान विचारपति महाधर्म्माध्यक्ष* नारायणशर्म्मा सुखासन पर विराजमान हैं। उनके पीछे महादंडनायक† रविगुप्त, प्रधान सेनापति महाबलाध्यक्ष‡ हरिगुप्त, नौसेना के अध्यक्ष महानायक रामगुप्त इत्यादि प्रधान राजपुरुष बैठे हैं। ये सब लोग अब वृद्ध हो गए हैं, राजसेवा में ही इनके बाल पके हैं। ये सम्राट् के वंश के ही हैं। सिंहासन की दूसरी ओर नवीन

---

* महाधर्माध्यक्ष = प्रधान विचारपति (Chief Justice)

† महादंडनायक = प्रधान दंडविधानकर्त्ता। (Chief Magistrate)

‡ महाबलाध्यक्ष = प्रधान सेनापति।

राजपुरुष बैठे हैं। अलिंद में अभिजात संप्रदाय के लिए जो सुखासन हैं वे खाली हैं। उत्सव आदि के दिनों में ही उस वर्ग के लोग राज-सभा में दिखाई पड़ते हैं।

सभामंडप के चारों द्वारों पर सेनानायक पहरों पर थे। उत्तर द्वार के प्रतीहार ने विस्मित होकर देखा कि युवराज शशांक के कंधे का सहारा लिए एक वृद्ध योद्धा नदीतट से सभामंडप की ओर आ रहा है। उसका दहना हाथ पकड़े आठ नौ बरस की एक लड़की और पीछे-पीछे एक युवा योद्धा आ रहा है। प्रतीहार के विस्मय का कारण था। बात यह थी कि नगर के साधारण लोग नदी के मार्ग से प्रासाद के भीतर नहीं आ सकते थे। उच्चपदस्थ कर्मचारियों और राजवंश के लोगों को छोड़ और कोई गंगाद्वार में नहीं प्रवेश करने पाता था। गंगाद्वार से होकर आने का जिन्हें अधिकार प्राप्त था, वे कभी अकेले और पैदल नहीं आते थे। वे बड़े समारोह के साथ हाथी, घोड़े या पालकी पर बैठ कर और इधर-उधर शरीर रक्षक सेना के साथ आते थे। पर उनमें से भी कभी कोई वात्सल्य भाव से भी युवराज के ऊपर हाथ नहीं रख सकता था।

वृद्ध सैनिक जो बातें कहते आ रहे थे युवराज उन्हें बड़े ध्यान से सुनते आ रहे थे। प्रतीहार और उनके नायक बड़े आश्चर्य से उनकी ओर देख रहे हैं, इसका उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं था। वृद्ध कह रहे थे "कामरूप से लौटने पर इस पथ से होकर मैं प्रासाद में गया था। अब मेरा वह दिन नहीं है। सुस्थितवर्म्मा* को सीकड़ में बाँध कर मैं लाया था। उन्हें देख कर उल्लास से उछल कर नागरिक जय-ध्वनि करते थे। तुम्हारे पिता युद्ध में घायल हुए थे। वे पालकी पर आते थे। युवराज!

---

*सुस्थितवर्म्मा—कामरूप के राजा। महासेनगुप्त ने उन्हें ब्रह्मपुत्र के किनारे पराजित किया था। वे भास्करवर्म्मा के पिता थे।

यह तुम्हारे जन्म से पहले की बात है। उस समय साम्राज्य की ऐसी दशा नहीं हुई थी। उस समय मैं सचमुच महानायक था; एक मुट्ठी अन्न के लिए रोहिताश्व के गाँव-गाँव नहीं घूमता था।" कहते-कहते वृद्ध का गला भर आया, शशांक के नीले नेत्रों में भी आँसू भर आए।

अब वे लोग सभामंडप के तोरण पर आ पहुँचे। प्रतीहार रक्षकों के नायक ने युवराज का अभिवादन किया और फिर बड़ी नम्रता से वृद्ध का परिचय पूछा। वृद्ध ने कहा "मेरा नाम यशोधवल है। मैं युवराज भट्टारकपादीय महानायक हूँ।" सुनते ही प्रतीहार रक्षकों का नायक भय और विस्मय से दो कदम पीछे हट गया। मार्ग में विषधर सर्प को देख पथिक जैसे घबरा कर पीछे भागता है वही दशा उस समय उसकी हुई। उसकी यह दशा देख वृद्ध महानायक हँस पड़े। इतने में प्रतीहाररक्षी सेनादल में से एक वृद्ध सैनिक बढ़ कर आगे आया, आनेवाले को अच्छी तरह देखा, फिर म्यान से तलवार खींच उसे सिर से लगाकर बोला "महानायक की जय हो! मैंने मालवा और कामरूप में महानायक की अधीनता में युद्ध किया है।" उसकी जय-ध्वनि सुन कर उत्तर तोरण पर की सारी सेना ऊँचे स्वर से जय-ध्वनि कर उठी। वृद्ध ने आगे बढ़ कर सैनिक को हृदय से लगा लिया। फिर गहरी जय-ध्वनि हुई। युवराज और वृद्ध ने तोरण से होकर सभामंडप में प्रवेश किया। प्रतीहाररक्षी सेना का नायक भौंचक खड़ा रहा। सभा-मंडप में तोरण के सामने दो दंडधर खड़े थे। उन्होंनें युवराज को दे॰ प्रणाम किया और उनके साथी का परिचय पूछा। [illegible] में से एक ने सभामंडप के बीच में खड़े होकर पुकार कर कहा "परमेश्वर परम वैष्णव युवराज भट्टारक* महाकुमार

---

* 'परमेश्वर परम वैष्णव' आदि उपाधि राजा और ज्येष्ठ राजपुत्र की होती थी। युवराज भट्टारक और महाकुमार ज्येष्ठ राजपुत्र के नाम के पहले लगता था। सम्राट् के नाम के साथ 'परमभट्टारक महाराजाधिराज' आता था।

शशांक नरेंद्रगुप्तदेव उत्तर तोरण पर खड़े हैं और उनके साथ रोहिताश्व के महानायक युवराजभट्टारकपादीय यशोधवलदेव सम्राट् से मिलने की प्रार्थना कर रहे हैं।"

सम्राट् महासेनगुप्त आधे लेटे हुए नागरिक का आवेदन सुन रहे थे। सिंहासन की वेदी के नीचे एक करणिक† सम्राट् का आदेश लिख रहा था। यशोधवलदेव का नाम कान में पड़ते ही चौंककर उठ बैठे। यह देख डर के मारे करणिक के हाथ से लेखनी और ताड़पत्र छूट पड़ा, मसिपात्र भी उलट गया। महाधर्म्माध्यक्ष नारायणशर्म्मा ने उसकी ओर त्योरी चढ़ाई। बेचारा करणिक सन्न हो गया। सम्राट् ने ऊँचे स्वर से पूछा "क्या कहा ?"

"परमेश्वर परम वैष्णव—"

"यह तो सुना, उनके साथ कौन आता है ?"

"रोहिताश्वगढ़ के महानायक युवराजभट्टारकपादीय यशोधवलदेव।"

"यशोधवलदेव !"

दंडधर ने सिर हिलाकर 'हाँ' किया। महामंत्री ने नारायण शर्मा से पूछा "महाधर्माध्यक्ष जी, कौन आया है ? महाराज इतने आतुर क्यों हुए ?" नारायणशर्मा गरदन ऊँची किए बातचीत सुन रहे थे। उन्होंने महामंत्री की बात न सुनी। सम्राट् उस समय कह रहे थे "यह कभी हो नहीं सकता। रोहिताश्व के यशोधवलदेव अब कहाँ हैं ? रामगुप्त जाकर देखो तो। जान पड़ता है किसी धूर्त ने रोहिताश्वगढ़ पर अधिकार कर लिया।" रामगुप्त आसन से उठ उत्तर तोरण की ओर चले। दंडधर उनके पीछे पीछे चला। वे थोड़ी दूर भी नहीं गए थे कि युवराज के कंधे पर हाथ रखे वृद्ध महानायक धीरे धीरे आते दिखाई

---

† करणिक = लेखक, मुंशी।

पड़े। राम गुप्त उन्हें देख खड़े हो गए। क्षण भर में वे पास आ गये और साम्राज्य के नौवलाध्यक्ष* महानायक रामगुप्त दीन हीन वृद्ध के चरणों पर लोट गए। सभा में एकत्र नागरिकों ने कुछ न समझकर जयध्वनि की। दंडधर उन्हें रोक न सके। सम्राट् व्यस्त होकर उठ खड़े हुए, यह देख सभा के सब लोग खड़े हो गये। नए सभासदों और राजपुरुषों ने चकित होकर देखा कि एक लंबे डीलडौल का वृद्ध युवराक शशांक के कंधे का सहारा लिए चला आ रहा है और नौवलाध्यक्ष महानायक रामगुप्त अनुचर के समान उसके पीछे पीछे आ रहे हैं!

इधर हृषीकेश शर्मा बात ठीक ठीक समझ में न आने से बहुत चिड़चिड़ा रहे थे। इतने में वृद्ध को उन्होंने सामने देखा और वे लड़खड़ाते हुए वेदी के सामने आ खड़े हुए और कहने लगे "कौन कहता था कि यशोधवलदेव मर गये?" वृद्ध उन्हें प्रणाम कर ही रहे थे कि उन्होंने झपटकर उन्हें गले से लगा लिया। नागरिकों ने फिर जयध्वनि की। सब ने चकित होकर देखा कि वृद्ध सम्राट् महासेनगुप्त गडमगाते हुए पैर रख रखकर वेदी के नीचे उतर रहे हैं। पिता को देख युवराज ने दूर ही से प्रणाम किया, किंतु सम्राट् ने न देखा। छत्र और चँवरवाले सम्राट् के पीछे-पीछे उतर रहे थे, पर महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त ने उन्हें सकेत से रोक दिया। सम्राट् को देखकर हृषीकेश और रामगुप्त एक किनारे हट गए। वृद्ध यशोधवलदेव अभिवादन के लिए कोश से तलवार खींच ही रहे थे कि सम्राट् ने दोनों हाथ फैलाकर उन्हें हृदय से लगा लिया। यह देख राजकर्मचारी, सभासद और नागरिक सबके सब उन्मत्त के समान बार-बार जयध्वनि करने लगे। काँपते हुए स्वर में सम्राट् ने कहा "सचमुच तुम यशोधवल ही हो?" वृद्ध चुपचाप आँसू

---

* नौवलाध्यक्ष = नावों पर की सेना का नायक।

बहा रहे थे। हृषीकेश शर्मा और रामगुप्त की आँखों से भी आँसुओं की धारा बह रही थी। हरिगुप्त चुपचाप जाकर सम्राट् के पीछे खड़े थे। युवराज शशांक भी कुछ दूर पर खड़े एकटक यह नया सम्मिलन देख रहे थे।

सम्राट् महासेन यशोधवल को लिए वेदी की ओर बढ़े। युवराज, हृषीकेश शर्मा, रामगुप्त, हरिगुप्त और नारायण शर्मा प्रभृति प्रधान राजपुरुष उनके पीछे-पीछे चले। सम्राट् ने जब वेदी की सीढ़ी पर पैर रखा तब वृद्ध यशोधवल नीचे ही खड़े रह गए और बोले "महाराजाधिराज अब आसन ग्रहण करें और मैं अपना कर्त्तव्य करूँ।" सम्राट ने बहुत चाहा पर वे वेदी के ऊपर नहीं गए। सम्राट् के सिंहासन पर सुशोभित हो जाने पर वृद्ध ने हाथ थामकर युवराज को वेदी पर चढ़ाया। युवराज भी अपने सिंहासन पर बैठ गए। तब वृद्ध ने वेदी के सामने खड़े होकर कोश से तलवार खींची और अपने मस्तक से लगा कर सम्राट् के चरणों के नीचे रख दी। जयध्वनि से फिर सभामंडप गूँज उठा। सम्राट् ने तलवार उठाकर अपने मस्तक से लगाई और वृद्ध के हाथ में फिर दे दी। वृद्ध तलवार लेकर युवराज की ओर देख बोले "महाकुमार! मैं सबसे पिछली बार जब सम्राट् की सेवा में उपस्थित हुआ था तब भी यह सिंहासन खाली था। यशोधवल ने बहुत दिनों से साम्राज्य के महाकुमार का अभिवादन नहीं किया है। बाल्यकाल में जब आपके पिताजी महाकुमार थे तब एक बार इस सिंहासन के सामने अभिवादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आज वृद्धावस्था में फिर प्राप्त हुआ है।" इतना कहकर वृद्ध ने तलवार मस्तक से लगाकर युवराज शशांक के पैरों तले रख दी। युवराज ने तलवार उठा ली और वेदी के नीचे उतरकर वृद्ध को प्रणाम किया। चारों ओर सबके मुँह से 'जय जय' की ध्वनि निकल पड़ी। चिंता से विह्वल सम्राट् का मुखमंडल भी खिल उठा और वे भी 'धन्य धन्य' बोल उठे। वृद्ध यशो-

धवल ने युवराज को गोद में लेकर बार-बार उनका मस्तक चूमा और उन्हें ले जाकर उनके सिंहासन पर बिठाया।

सिंहासन के सामने खड़े होकर वृद्ध यशोधवलदेव बोले "महाराजाधिराज! आज बहुत दिनों पर मैं सम्राट् की सेवा में क्यों आया हूँ, यही निवेदन करता हूँ। मेघनाद (मेघना नदी) के उस पार साम्राज्य की सेवा में कीर्तिधवल ने अपने प्राण निछावर किये। अब उसकी कन्या का पालन मैं नहीं कर सकता। उसके भरण-पोषण की सामर्थ्य अब मुझ में नहीं है। जिस हाथ में साम्राज्य का गरुड़ध्वज लेकर विजय यात्राओं का नायक होकर निकलता था, जिस हाथ में सदा खड्ग लिए साम्राज्य की सेवा में सन्नद्ध रहता था, अब उसी हाथ को रोहिताश्ववालों के आगे एक मुट्ठी अन्न के लिए फैलाते मुझ से नहीं बनता। अब इस अवस्था में नई बात का अभ्यास कठिन है। कीर्तिधवल ने सम्राट् की सेवा में ही अपना जीवन उत्सर्ग किया है। सम्राट् यदि उसकी कन्या के अन्न-वस्त्र का ठिकाना कर दें तो यह बूढ़ा यशोधवल निश्चिंत हो जाय। साम्राज्य में अभी अस्त्र शस्त्र की पूछ है, वृद्ध की भुजाओं में अभी बल है, खड्ग धारण करने की क्षमता है, इससे वह अपना पेट भर लेगा, उसे अन्न का अभाव न होगा। वृद्ध मृग मांस से भी अपना शरीर रख सकता है। पर महाराज! इस कोमल बालिका से पशु मांस नहीं खाया जाता। इसके लिए गेहूँ भीख माँगा, अन्नाभाव से दुर्गस्वामिनी का कंगन बेचा। कई पुराने सेवक मेरी यह दशा सुन भीख माँग-माँग कर कुछ धन इकट्ठा कर लाए। उसी धन से मैंने कंगन छुड़ाया और किसी प्रकार पाटलिपुत्र आया। महाराजाधिराज! लतिका प्रासाद में दासी होकर पड़ी रहेगी, उसे मुट्ठी भर अन्न मिल जाया करेगा, उससे हिरन का मांस नहीं खाया जाता। यशोधवल से अब इस बुढ़ापे में भीख नहीं माँगी जाती। मालव गया, वंग गया, पुत्रहीन यशोधवल के पास अब ऐसा कोई नहीं है जो पहाड़ी गाँवों में जाकर

षष्ठांश ले आए या दुर्द्धर्ष पहाड़ी जातियों को रोके। महाराज ! धवलवंश लुप्त हो गया, यशोधवल सचमुच मर गया, रोहिताश्वगढ़ इस समय खाली पड़ा है। मैं अब यशोधवल नहीं हूँ, यशोधवल का प्रेत हूँ; एक मुट्ठी अन्न के लिए तरस रहा हूँ। मैं अब दुर्ग-स्वामी होने योग्य नहीं रहा।"

दूर पर वीरेंद्र सिंह यशोधवलदेव की पौत्री को लिए खड़ा था। यशोधवल ने उसे पास आने का संकेत किया। उसके आने पर वृद्ध ने कहा "लतिका ! महाराजाधिराज को प्रणाम करो।" बालिका ने प्रणाम किया। वीरेंद्र सिंह ने भी सैनिक प्रथा के अनुसार अभिवादन किया। वृद्ध यशोधवल फिर कहने लगे—

"महाराजाधिराज ! यह लड़की कीर्तिधवल की कन्या है। इसका पिता वंग युद्ध में मारा गया, माता भी छोड़ कर चल बसी। अब मैं इसे पेट भर अन्न तक नहीं दे सकता। सम्राट् अब इसका भार अपने ऊपर लें। सनातन से मृत सैनिकों के पुत्रकलत्र का पालन राजकोष से होता आया है। इसी आसरे पर इस मातृ-पितृ विहीन बालिका के लिए मुट्ठी भर अन्न की भिक्षा माँगने आया हूँ।"

अश्रुधारा से सम्राट् का शीर्ण गंडस्थल भींग रहा था। यशोधवल की बात पूरी होने के पहले ही वे सिंहासन छोड़ उठ खड़े हुए और बोले "यशोधवल—बाल्य-सखा—" उनका गला भर आया, आगे और कोई शब्द न निकला। वे काठ की तरह सिंहासन पर बैठ गए। सभा मंडप में सन्नाटा छा गया था। सब के सब चुपचाप खड़े थे। नारायण शर्मा ने वेदी के सामने जाकर कहा "महाराज ! अब आज और कोई काम असंभव है। आज्ञा हो तो विचार-प्रार्थी नागरिक अपने-अपने घर जायँ।" सम्राट् ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की। यशोधवल-देव कुछ और कहना चाहते थे कि हृषीकेश शर्मा आकर उन्हें वेदी के

एक किनारे ले गए। धीरे-धीरे सभा मंडप खाली हो गया। राजकर्मचारी अब तक ठहरे थे। प्रथा यह थी कि सभा विसर्जित होने पर मंत्रणा सभा बैठती थी जिसमें केवल प्रधान-प्रधान राजकर्मचारी रहते थे। हृषीकेश शर्मा ने पुकार कर कहा "आज महाराजाधिराज़ अस्वस्थ हैं इससे मंत्रणा सभा नहीं हो सकती।" सम्राट् ने यह सुन कर कहा "आज तो मंत्रणा सभा बहुत ही आवश्यक है। संध्या हो जाने के पीछे समुद्र गृह* में मंत्रणा सभा का अधिवेशन होगा। बहुत ही आवश्यक कार्य है। जो कर्मचारी यहाँ उपस्थित नहीं हैं उनके पास भी दूत भेजे जायँ।"

रामगुप्त यशोधवलदेव को अपने घर ले जाने की चेष्टा कर रहे थे। यशोधवलदेव उनका आतिथ्य स्वीकार करके सम्राट् के पास विदा माँगने गए। सम्राट् ने कहा "यशोधवल! मेरी भी कुछ इच्छा है। तुम मेरे साथ आओ, आज तुम साम्राज्य के अतिथि हो।"

सम्राट, यशोधवलदेव और शशांक सभा स्थल से उठे।

———

* समुद्र गृह = प्रासाद के एक भाग का नाम।

चौदहवाँ परिच्छेद

चित्रा का अधिकार

प्रासाद से लगा हुआ गंगा के तीर पर एक छोटा सा उद्यान है। सेवा-यत्न के बिना प्रासाद का प्रांगण और उद्यान जंगल सा हो रहा है। पर यह छोटा उद्यान अच्छी दशा में है, इसमें झाड़-झंखाड़ नहीं हैं, सुंदर-सुंदर फूलों के पौधे ही लगे हैं। फुलवारी के चारों ओर जो घेरा है उस पर अनेक प्रकार की लताएँ घनी होकर फैली हैं जिनमें से कुछ तो रंग-बिरंग के फूलों से गुछी हैं, कुछ स्निग्ध श्यामल दलों के भार से झुकी पड़ती हैं। इस चौखूँटी पुष्प वाटिका के बीचो-बीच श्वेतमर्मर का एक चबूतरा है जिसके चारों ओर रंग-बिरंग के फूलों से लदे हुए पौधों की कई पंक्तियाँ हैं। सूर्योदय के पूर्व का मंद समीर गंगा के जलकणों से शीतल होकर पेड़ों की पत्तियाँ धीरे-धीरे हिला रहा है। इधर-उधर पेड़ों के नीचे फूल झड़ रहे हैं। अंधकार अभी पूर्ण रूप से नहीं हटा है, उषा के आलोक के भय से प्रासाद के कोनों में और घने पेड़ों की छाया के नीचे छिपा बैठा है। जब तक मार्त्तंड के करोड़ों ज्वलंत किरणवाणों की वर्षा न होगी तब तक वह वहाँ से न हटेगा।

पुष्पवाटिका का द्वार खुला जिससे उसके ऊपर छाई हुई माधवी-लता एकबारगी हिल गई। एक बालिका फुलवारी में आई। उसके भौंरे के समान काले केश मंद समीर के झोंकों से लहरा रहे थे। उसने देखा कि फुलवारी में कोई नहीं है। इतने में एक और बालिका हँसती हँसती वहाँ आ पहुँची और चिल्लाकर कहने लगी युवराज! चोर

पकड़ लिया"। पहली बालिका भागने का यत्न करने लगी, किंतु दूसरी बालिका ने उसे पकड़ रखा। हँसते हँसते शशांक और माधवगुप्त वहाँ आ पहुँचे। शशांक ने पहले आई हुई बालिका से पूछा "चित्रा! तू भागी क्यों?" चित्रा ने कुछ उत्तर न दिया। दूसरी बालिका ने कहा "चित्रा रूठ गई है"।

शशांक—क्यों?

दू० बालिका—तुमने मुझे फूल तोड़ कर देने को कहा इसी लिए।

शशांक हँस पड़े। चित्रा का मुँह लज्जा और क्रोध से लाल हो गया। दूसरी बालिका उसका क्रोध देख सकुच गई और माधव को पुकारकर कहने लगी "चलो कुमार, हम लोग फूल तोड़ने चलें"। दोनों फुलवारी में जाकर अदृश्य हो गए। शशांक बोले "चित्रा! तुम रूठ क्यों गई?"

चित्रा कुछ न बोली, मुँह फेरकर खड़ी हो गई। युवराज ने जाकर उसका हाथ थामा, उसने झटक दिया। शशांक ने फिर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा "क्या हुआ, बोलती क्यों नहीं?" चित्रा मुँह दूसरी ओर करके रोने लगी। धीरे धीरे किसी प्रकार शशांक ने उसे मनाया। उसने अंत में कह दिया कि लतिका को फूल तोड़कर देने को कहते थे, इसी से मुझे बुरा लगा। शशांक ने कहा "लतिका चार दिन के लिए हमारे घर आई है। माँ ने उसके साथ खेलने के लिए मुझसे कहा है। यदि मैं न खेलूँगा तो वे चिढ़ेंगी"। चित्रा की आकृति कुछ गंभीर हो गई। वह बोली "तुम उसे फूल तोड़कर क्यों दोगे?" इस 'क्यों' का क्या उत्तर था? शशांक ने उसे बहुत तरह से समझाया, पर बात उसके गले के नीचे न उतरी।

कुमार ने कोई उपाय न देख कहा "अच्छा, तो मैं फूल तोड़कर तुम्हीं को दूँगा। लतिका को न दूँगा।" चित्रा के जी में जी आया।

फुलवारी में जितने फूल खिले थे, बालक बालिका उन्हें तोड़ तोड़ कर चबूतरे पर रखने लगे। शशांक फूल तोड़ तोड़कर चित्रा की झोली में डालते जाते थे और माधव लतिका को देते जाते थे। इतने में फुलवारी के द्वार पर से न जाने कौन बोल उठा "अरे! कुमार यह हैं। इधर आओ इधर"। कुमार ने पूछा "कौन है?"। उस व्यक्ति ने कहा "प्रभो! मैं हूँ अनंत। नरसिंह आपको ढूँढ़ रहे हैं"। दो बालक वाटिका का द्वार खोल भीतर आए। इनमें से एक को तो पाठक जानते ही हैं। वह चरणाद्रि के गढ़पति यज्ञवर्म्मा का पुत्र है। दूसरा बालक चित्रा का बड़ा भाई नरसिंहदत्त है। नरसिंह ने पूछा "कुमार! यहाँ क्या हो रहा है?" शशांक ने हँसकर उत्तर दिया "तुम्हारी बहिन की नौकरी बजा रहा हूँ। रोहिताश्वगढ से लतिका आई है। उसे फूल तोड़कर देने जाता था, इसपर यह बहुत रूठ गई। लतिका का संगी माधव है।" कुमार की बात सुनकर अनंत और नरसिंह जोर से हँस पड़े। चित्रा ने लजाकर सिर नीचा कर लिया। नरसिंह ने कहा "चित्रा, कुमार बड़े होंगे, दस विवाह करेंगे, तब तू क्या करेगी?" बालिका मुँह फेरकर बोली "मैं नहीं करने दूँगी।" सबके सब फिर हँस पड़े।

नरसिंह ने फिर कहा "फुलवारी में तो अब एक फूल न रहा; जान पड़ता है, डाल पत्ते भी न रह जायँगे। दिन इतना चढ़ आया, नदी पर कब चलेंगे। तीन चार घड़ी से कम में तो नहाना होगा नहीं। महादेवी के यहाँ से दो-दो तीन-तीन आदमी आ आकर जब लौट जायँगे, तब जाकर कहीं खाने-पीने की सुध होगी।" उसकी बात पर सब हँस पड़े। कुमार बोले "नरसिंह, हम लोगों की मंडली में तुम सबसे चतुर निकल पड़े।" उनकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि एक दासी उद्यान में आई और कुमार को प्रणाम करके बोली "महादेवी जी आप लोगों को स्नान करने के लिए कह रही हैं।" उसकी बात सुनकर नरसिंह हँसा और कहने लगा "देखिए! मैं झूठ कहता था?" सब

लोग फुलवारी से निकलकर प्रासाद के भीतर गए। आँगन के किनारे एक लंबे डील के वृद्ध टहल रहे थे। लतिका ने उन्हें देखते ही झट उनका हाथ जा पकड़ा। उसके पीछे शशांक और माधव ने भी पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। और लोग कुछ दूर खड़े रहे। लंबे डील के वृद्ध रोहिताश्व के गढ़पति यशोधवलदेव थे। यशोधवल ने शशांक के भूरे-भूरे बालों पर हाथ फेरते हुए पूछा "युवराज! ये लोग कौन हैं?" शशांक ने हाथ हिलाकर नरसिंह, अनंत और चित्रा को बुलाया। उन लोगों ने भी पास आकर वृद्ध को प्रणाम किया। शशांक ने उनका परिचय दिया। वृद्ध अनंत और चित्रा को गोद में लेकर न जाने क्या क्या सोचने लगे।

वृद्ध सोच रहे थे कि साम्राज्य का अभिजातवर्ग, बड़े-बड़े उच्च वंशों के लोग आश्रय के अभाव से राजधानी में आकर पड़े हैं। साम्राज्य में इस समय सब भिखारी हो रहे हैं, भीख देनेवाला कोई नहीं है। वृद्ध सम्राट् ही सबके आश्रय हो रहे हैं। पर वे भी अब बुड्ढे हुए। उनके दोनों पुत्र अभी छोटे हैं, राज्य की रक्षा करने में असमर्थ हैं। चारों ओर प्रबल शत्रु घात लगाए वृद्ध सम्राट् की मृत्यु का आसरा देख रहे हैं। क्या उपाय हो सकता है? दासी दूर खड़ी गढ़पति को चिंतामग्न देख बोली "प्रभो! दिन बहुत चढ़ आया है। महादेवीजी कुमारों को स्नान करने के लिए कह रही हैं"। वृद्ध ने झट अनंत और चित्रा को गोद से नीचे उतार दिया। सब लड़के प्रणाम करके प्रासाद के भीतर चले गए। वृद्ध फिर चिंता में डूबे।

वे सोचने लगे "मैं भी अपनी पौत्री का कुछ ठीक ठिकाना लगाने के लिए ही सम्राट् के पास आया हूँ। पर यहाँ आकर देखता हूँ कि सबकी दशा एक सी हो रही है। राजकार्य्य की सारी व्यवस्था बिगड़ गई है। सम्राट् बुड्ढे हो गए, अधिक परिश्रम कर नहीं सकते। बाहरी

शत्रुओं का खटका उन्हें बराबर लगा रहता है, थोड़ी थोड़ी बातों से वे घबरा उठते हैं। दोनों कुमार भी अभी राजकाज चलाने के योग्य नहीं हुए हैं। हृषीकेश शर्म्मा और नारायण शमर्म्मा ही सारा भार अपने ऊपर उठाए हुए हैं, पर वे भी अब बहुत वृद्ध हो गए हैं। अब उनके परिश्रम करने के दिन नहीं रहे। क्या किया जाय ?"

चिंता करते करते वृद्ध का चेहरा एक बारगी दमक उठा। उन्होंने मन ही मन स्थिर किया "मैं स्वयं राज्य के मंगल के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करूँगा। कीर्त्तिधवल ने साम्राज्य के लिए रणक्षेत्र में अपने प्राण दे दिए, मैं भी अपना शेष जीवन कर्मक्षेत्र में ही बिताऊँगा। जापिल* के महानायक सदा से साम्राज्य की सेवा में तन मन देते आए हैं। उनका अंतिम वंशधर होकर मैं भी उन्हीं का अनुसरण करूँगा।"

वृद्ध इस प्रकार दृढ़ संकल्प करके कर्मक्षेत्र में आने के लिए आतुर हो उठे। उन्होंने पुकारा "कोई है ?" अलिंद के एक कोने से एक प्रतीहार प्रणाम करके सामने आ खड़ा हुआ। यशोधवदेव ने उससे पूछा "सम्राट् इस समय कहाँ हैं ? मैं अभी उनसे मिलना चाहता हूँ।" प्रतीहार ने कहा "महाराजाधिराज गंगाद्वार की ओर गए हैं।" यशोधवलदेव ने कहा "अच्छा, उन्हें संवाद दे दो।" प्रतीहार अभिवादन करके चला गया।

---

* रोहिताश्वगढ़ के पास का एक ग्राम। इसे आजकल जपला कहते हैं। यशोधवलदेव के पूर्वज इसी ग्राम के थे।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

राजनीति

गंगाद्वार के बाहर घाट की एक चौड़ी सीढ़ी पर सम्राट् बैठे हैं। उनके सामने यहाँ से वहाँ तक बालू का मैदान है। दूर पर जाह्नवी की धारा क्षीण रेखा के समान दिखाई पड़ रही है। सम्राट् घाट पर बैठे बैठे बालक बालिकाओं की जलक्रीड़ा देख रहे हैं। एक प्रतीहार आया और अभिवादन करके बोला "महानायक यशोधवलदेव इसी समय महाराज के पास आना चाहते हैं" सम्राट् ने कहा "अच्छा, उन्हें यहीं ले आओ"।

प्रतीहार अभिवादन करके चला गया और थोड़ी देर में यशोधवल को लेकर लौट आया। सम्राट् ने हँसते हँसते पूछा "कहो भाई यशोधवल! क्या हुआ?" वृद्ध प्रणाम कर ही रहे थे कि सम्राट् ने उनका हाथ पकड़कर बैठा लिया। यशोधवल सम्राट् के सामने बैठ गए और हाथ जोड़कर बोले "महाराजाधिराज! मेरे न रहने पर लतिका के लिए कहीं ठिकाना न रहेगा, यही समझकर मुट्ठी भर अन्न माँगने मैं महाराज की सेवा में आया था। किंतु यहाँ आकर देखता हूँ कि उच्चवंश के जितने लोग हैं, प्रायः सब के सब भिखारी हो रहे हैं। उनके अनाथ बालबच्चों के आश्रय महाराज ही हो रहे हैं। किंतु आपके बाल भी अब सफेद हुए, आपके दिन भी अब पूरे हो रहे हैं। आपके न रहने पर साम्राज्य और प्रजावर्ग की क्या दशा होगी, यही सोचकर मैं अधीर हो रहा हूँ। इस समय लतिका की सारी बातें मैं भूल गया हूँ।

दोनों कुमार अभी बाल्यावस्था के पार नहीं हुए हैं, उन्हें राजकाज सीखते अभी बहुत दिन लगेंगे। हृषीकेश शर्म्मा और नारायण शर्म्मा भी बूढ़े हुए, अब अधिक परिश्रम करने के दिन उनके नहीं रहे। नए कर्म्मचारियों को अपने मन से कुछ करने धरने का साहस नहीं होता, एक एक बात वे महाराज से कहाँ तक पूछें! इस प्रकार आपके रहते ही राज्य के सब कार्य्य अव्यवस्थित हो रहे हैं। चरणाद्रिगढ़ साम्राज्य का सिंहद्वार था। शार्दूलवर्म्मा के पुत्र महावीर यज्ञवर्मा वहाँ से भगा दिए गए। सम्राट् को -इसका संवाद तक न मिला। मंडला-दुर्ग अंग और बंग की सीमा पर है। सदा से मंडलाधीस साम्राज्य के प्रधान अमात्य रहते आए हैं। तक्षदत्त का वह दुर्ग भी अब दूसरों के अधिकार में है। उनकी कन्या और पुत्र के लिए पेट पालने का भी ठिकाना अब नहीं है। महाराजाधिराज! इससे बढ़कर क्षोभ की बात और क्या हो सकती है?

"आपके रहते ही पाटलिपुत्र नगर की क्या अवस्था हो रही है, आप देख ही रहे हैं। तोरणों पर के फाटक निकल गए हैं। नगर-प्राकार स्थान स्थान पर गिर रहा है, उसका संस्कार तक नहीं होता। प्रासाद का पत्थर जड़ा विस्तृत आँगन घास फूस से ढक रहा है। कोष में अब तक धन की कमी नहीं है, प्रासाद में कर्म्मचारियों की भी कमी नहीं है, पर कोई काम ठीक ठीक नहीं होता। क्यों नहीं होता, आप इसे नहीं देखते। चारों ओर शत्रु साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर गीध की तरह दृष्टि लगाए हुए हैं। साम्राज्य के अंतर्गत होने पर भी बंग देश पर कोई अधिकार नहीं रहा है। देवी महासेनगुप्ता जब तक जीवित हैं, तभी तक वाराणसी और चरणाद्रि भी प्रकाश्य रूप में थानेश्वर राज्य में मिलने से बचे हुए हैं। यह सब आप अच्छी तरह जानते हैं। आज यदि महादेवी न रहें अथवा प्रभाकर उनकी बात न मानें तो इच्छा रहते भी थोड़ी

बहुत सेना और शक्ति रहते भी साम्राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। राजधानी में भी कोई रुकावट नहीं हो सकती, वह अनायास शत्रु के हाथ में पड़ सकती है।"

यशोधवल चुप हुए। वृद्ध सम्राट् धीरे-धीरे बोले "मैं क्या करूँ? मैं वृद्ध हूँ, शशांक बालक है। दैवज्ञ कह चुके हैं कि शशांक के राज्य-काल में ही साम्राज्य नष्ट होगा।" सम्राट् की बात सुनकर वृद्ध यशोधवल गरजकर बोले "ऐसी बात आपके मुँह से नहीं सोहती। आप क्या पागलों और धूर्त्तों की बात में आकर साम्राज्य नष्ट होने देंगे? दैवज्ञ न जाने क्या-क्या कहा करते हैं। उनकी बातों पर ध्यान देने लगें तो संसार का सब काम धंधा छोड़ वानप्रस्थ लेकर बैठ रहें। कुमार बालक होने पर भी बुद्धिमान्, साहसी और अस्त्रविद्या में निपुण हैं, पर आपने उनकी यथोचित शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया है। साम्राज्य चलाने के लिए शौर्य्य और पराक्रम की अपेक्षा कूटनीति की अधिक आवश्यकता होती है। लगातार बहुत दिनों तक राज्य परिचालन का क्रम देखते देखते उसका अभ्यास होता है, आप स्वयं जानते हैं। आप ही को राजकार्य्य की शिक्षा किस प्रकार मिली है? वंश में समय समय पर अद्भुतकर्म्मा प्रतापी बालक उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को लेकर इतिहास की रचना होती है। चौदह वर्ष के समुद्रगुप्त ने उत्तरापथ के राजन्यसमुद्र को मथकर अश्वमेध का अनुष्ठान किया था। पंद्रह वर्ष की अवस्था में ही स्कंदगुप्त ने अस्त्र उठाकर हूणों की प्रबल धारा की पहली बाढ़ रोकी थी। इसी प्रकार चौदह वर्ष के शशांक नरेंद्रगुप्त प्राचीन साम्राज्य का उद्धार न करेंगे, कौन कह सकता है? महाराजाधिराज! दुश्चिंता छोड़िए, अब भी उद्धार की आशा है। अब भी समय है, पर आगे न रह जाएगा।"

वृद्ध सम्राट ने धीरे से कहा "तो क्या करूँ?"

यशोधवल ने धीरे धीरे कहा "आप को कुछ नहीं करना है। एक दिन यह सेवक महाराजधिराज की आज्ञा से साम्राज्य के सब कार्य्य करता था। इन सूखे हुए हाथों में यद्यपि पहले का सा बल अब नहीं रहा है, किंतु हृदय में अब तक बल है। महाराजाधिराज की आज्ञा हो तो यह दास राजकार्य्य का भार ग्रहण करने को प्रस्तुत है। कीर्त्ति-धवल ने साम्राज्य के हित के लिए अपना शरीर लगा दिया। उसका वृद्ध पिता भी वही करना चाहता है। आया तो था लतिका के लिए अन्न का ठिकाना करने, पर आकर देखता हूँ कि अन्नदाता का घर भी बिगड़ा चाहता है। उसे कौन आश्रय देगा ? हृषीकेश शर्मा और नारायण शर्म्मा अपने पद पर ज्यों के त्यों बने रहें। मैं आड़ में रहकर ही सम्राट् की सेवा, जहाँ तक हो सके, करना चाहता हूँ"।

सम्राट् सिर नीचा किए न जाने क्या क्या सोच रहे थे। कुछ देर पीछे सिर उठाकर उन्होंने कहा "यशोधवल! सच कहो, राजकार्य्य का भार तुम अपने ऊपर लोगे ?"

यशोधवल—दास कभी महाराज के आगे झूठ बोल सकता है ?

सम्राट्—यशोधवल! रात दिन की चिंता से इधर बहुत दिनों से मेरी आँख नहीं लगती। आगे क्या होगा, यही सोच कर मेरी दशा पागलों की सी हो रही है। तुम यदि कार्य्यभार ग्रहण कर लो तो मैं सचमुच निश्चिंत हो जाऊँ।

यशो०—मैं सब बातें देख रहा हूँ। भविष्यत् की चिंता महाराज को सदा व्याकुल किए रहती है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। भय के मारे कोई राजकर्म्मचारी महाराज के पास नहीं आता। काम बिगड़ता देखकर भी किसी को यह साहस नहीं होता कि महाराज के पास आकर कुछ पूछे और आज्ञा की प्रार्थना करे। हृषीकेश शर्म्मा भी, जिनका राजकार्य्य में ही सारा जीवन बीता है, सामने आकर कुछ

नहीं कह सकते। नागरिक बराबर कहते हैं कि स्थाण्वीश्वर के जाने के पीछे सम्राट् के मुँह पर कभी हँसी नहीं दिखाई दी।

सम्राट्—बात ठीक है। प्रभाकर का आना सुनते ही मेरा चित्त ठिकाने न रहा। प्रभाकर जितने दिनों तक नगर में रहा, मैं छाया के समान उसके पीछे लगा फिरता रहा, दास के समान उसकी सेवा करता रहा, भृत्य के समान उसका तिरस्कार सहता रहा। यशोधवल! मैं इस बात को भूल गया था कि मैं गुप्त साम्राज्य का अधीश्वर हूँ, मैं समुद्रगुप्त का वंशज हूँ और प्रभाकर मेरा भानजा है। बात बात में उसके अनुचर मेरे राजम्कर्मचारियों का अपमान करते थे। एक साधारण झगड़ा लेकर उन्होंने हमारी सेना पर आक्रमण किया, नगर में घुस कर लूटपाट की, नागरिकों को मारा पीटा; अंत में जब असह्य हो गया तब नागरिकों ने भी उनपर धावा किया और उनके डेरे जला दिए। यशोधवल! क्या यही सब अपमान सहने के लिए वीर यशवर्म्मा ने लौहित्या के तट पर मेरी प्राणरक्षा की थी?

यशो०—महाराज! मैं सब सुन चुका हूँ। नगर में आकर जो जो बातें मैंने सुनीं वे पहले कभी नहीं सुनी गई थीं। सब सुनकर ही मेरी आँखें खुली हैं। महाराजाधिराज! अब आज्ञा दीजिए, मैं फिर राज्य का कार्य्य अपने ऊपर लूँ।

सम्राट्—तुम राज्य का कार्य्य ग्रहण करो, इससे बढ़कर मेरे लिए कौन बात होगी? इसमें भी मेरी अनुमति पूछते हो? मैं अभी मंत्रणा सभा बुलाता हूँ।

यशो०—मंत्रणासभा बुलाने की आवश्यकता नहीं। केवल हृषीकेश शर्म्मा और नारायण शर्म्मा के आ जाने से ही सब काम हो जायगा।

सम्राट्—अच्छी बात है। प्रतीहार!

प्रतीहार कुछ दूर पर खड़ा था पुकार सुनते ही उसने आकर सिर झुकाया। सम्राट ने आज्ञा दी "विनयसेन को बुला लाओ।" द्वारपाल अभिवादन करके चला गया। थोड़ी देर में विनयसेन आ पहुँचे। सम्राट् ने कहा "हृषीकेश शर्मा, नारायण शर्मा और हरि गुप्त से जाकर कह आओ कि दोपहर को प्रासाद में आवें।" विनयसेन अभिवादन करके चले गए। सम्राट् और यशोधवलदेव प्रासाद में लौट गए।

सोलहवाँ परिच्छेद

मंत्रगुप्ति

पाटलिपुत्र के प्राचीन राजप्रासाद के चारों ओर गहरी खाई थी। वह गंगा के जल से सदा भरी रहती थी। घोर ग्रीष्म के समय में भी खाई में जल रहता था। इस समय वर्षा काल में खाई मुँह तक भरी हुई है, पर और ऋतुओं में वह बहुत दूर तक जंगल से ढँकी रहती थी। जिस नाली से होकर गंगा का पानी खाई में आता था, वह कभी साफ न होने के कारण बालू से पट गई है। जब वर्षा काल में गंगा का जल बढ़ता है तब उस नाली से ऊपर होकर खाई में उलट पड़ता है। परिखा के ऊपर का प्राकार भी जगह-जगह से गिर गया है। प्रासाद के चारों ओर जो परकोटा था वह पत्थर का था, पर नगर प्राकार काठ का था। मरम्मत न होने से नगर के चारों ओर की दीवार प्रायः टूट-फूट

गई है। काठ के भारी-भारी पटरों के हट जाने से बीच की मिट्टी गिर-गिर कर खाई को भर रही है। दीवार के ऊपर पेड़ पौधों का जंगल लग रहा है। नगर वाले दिन को भी उधर जाने से डरते हैं।

जिस दिन सवेरे यशोधवल ने सम्राट् के पास जाकर राज-कार्य चलाने की इच्छा प्रकट की थी, उसी दिन सूर्योदय के पहले प्राचीन प्रासाद के प्राकार के ऊपर तीन भिक्खु बैठे बातचीत कर रहे थे। दूर पर एक और भिक्खु एक पेड़ के नीचे अँधेरे में खड़ा था। पेड़-पौधों के जंगल में बहुत से भिक्खु इधर-उधर छिपे हुए पहरे का काम करते थे। जो तीन भिक्खु बातचीत कर रहे थे, उनमें से दो को तो हमारे पाठक जानते हैं; तीसरा व्यक्ति कपोतिक संघाराम का महास्थविर बुद्धघोष था। बंधुगुप्त, शक्रसेन और बुद्धघोष उत्तरापथ के बौद्धसंघ के प्रधान नेता थे।

बुद्धघोष कह रहे थे "भगवान् बुद्ध का नाम लेकर अब तक हम लोग बौद्धसंघ की उन्नति का प्रयत्न निर्विघ्न करते आए हैं। पर अब इतने दिनों पर फिर बाधा का रंग ढंग दिखाई देता है। यशोधवलदेव रोहिताश्वगढ़ छोड़कर पाटलिपुत्र आ रहे हैं, यह संवाद उनके आने के पहले ही हम लोगों को मिल जाना चाहिए था। करुष* देश के संघ-स्थविर कान में तेल डाले बैठे हैं। वे संघ के इतने बड़े और प्रबल शत्रु का कुछ भी पता नहीं रखते"।

शक्र०—महास्थविर? इसमें करुष देश के संघस्थविरों का उतना दोष नहीं है। पुत्र के मरने पर यशोधवल पागल हो गए थे और पागलों की तरह ही दुर्ग में अपने दिन काटते थे। अस्सी वर्ष के ऊपर का बुड्ढा फिर जवान होगा, इस बात का किसी को भरोसा न था, इसी से वे लोग निश्चिंत हो बैठे थे।

---

* करुषदेश = वर्त्तमान आरा या शहाबाद का जिला।

बुद्ध०—वज्राचार्य्य ! सैकड़ों वर्ष तक बौद्धसंघ की जो दुरवस्था रही वह किसी प्रकार इधर दूर हुई। अब जब अच्छे दिनों का उदय दिखाई पड़ रहा है तब असावधान रहना मूर्खों का काम है। जिन लोगों पर विश्व का कल्याण अवलंबित है उन लोगों के योग्य यह कार्य्य नहीं हुआ। करुष देश के संघस्थविरों के अपराध का विचार तो पीछे होगा। अब इस समय जो विपत्ति सिर पर है उससे उद्धार का उपाय निकालना है। यशोधवल आया है, राजसभा में बैठा है और इस समय सम्राट के पास ही प्रासाद में रहता है। यदि पहले से कुछ संवाद मिला होता तो इस बात का कोई न कोई उपाय किया गया होता कि वह सम्राट् के यहाँ तक न पहुँचने पावे। यशोधवल कोई ऐसा वैसा शत्रु नहीं है, यह तो आप लोग जानते ही हैं। किसी सामान्य बात के लिए वह पाटलिपुत्र नहीं आया है, इतना तो निश्चय समझिए। और जब वह आ गया है तब वह साम्राज्य की ऐसी अव्यवस्था देख चुपचाप न बैठेगा, यह भी निश्चित है। सम्राट् और यशोधवल के बीच क्या क्या परामर्श हुआ है, इसके जानने का भी हमारे पास कोई उपाय नहीं है। इस समय हम लोगों को बहुत ही सावधान रहना पड़ेगा, नहीं तो सर्वनाश हुआ समझिए। यशोधवल किस प्रकार नगर में आया, कुछ सुना है ?

शक्र०—मैंने अपनी आँखों देखा है। शशांक को मारने के लिए मैं प्रासाद के चारों ओर फिर रहा था। उसे भय दिखाने के लिए मैं गंगाद्वार पर खड़ा होकर भविष्य सुना रहा था; इसी बीच में मैंने देखा कि एक छोटी सी नाव आकर घाट पर लगी। उस पर से एक वृद्ध और एक युवक उतरा। उनके निकट आते ही मैंने यशोधवल को पहचान लिया, पर उसने मुझे नहीं पहचाना। मैं विपद देखकर एक पेड़ पर चढ़ गया और किसी प्रकार अपनी रक्षा कर सका।

बुद्ध०—उसके अनंतर क्या क्या हुआ कुछ पता लिया ?

बंधु०—प्रासाद में नियुक्त गुप्तचरों ने संवाद दिया है। गंगाद्वार पर शशांक के साथ यशोधवल का परिचय हुआ। कुमार के साथ ही साथ वह गंगाद्वार से ही होकर सभामंडप में गया। यशोधवल अभी जीवित है, पहले तो सम्राट् को इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ। जब यशोधवल ने सभामंडप में प्रवेश किया तब सम्राट् स्वयं वेदी से नीचे उतर आए और उन्होंने उसे गले से लगा लिया। सभा में जाकर वृद्ध यशोधवल ने यह कहा कि मैं अपनी पौत्री के लिए अन्न की भिक्षा माँगने आया हूँ।

बुद्ध०—ठीक है। सम्राट् के साथ उसकी और क्या क्या बातचीत हुई, कुछ सुना है?

शक्र०—कुछ भी नहीं। वह सम्राट् के साथ अंतःपुर तक जाता है, पट्टमहादेवी के घर में भोजन करता है, इससे विष देने का भी कोई उपाय नहीं हो सकता। यशोधवल के आने पर एक बार मंत्रणासभा हुई थी, पर वहाँ क्या क्या हुआ, कोई कुछ भी नहीं कह सकता। उस समय स्वयं विनयसेन पहरे पर था।

बुद्ध०—प्रासाद में रहनेवाले गुप्तचरों की संख्या दूनी कर दो और आज से जिन भिक्खुओं पर पूरा विश्वास हो, उन्हें छोड़ और किसी को इस काम में मत लेना।

बंधु०—अब आगे मंत्रणा का क्या उपाय होगा? मैं देखता हूँ कि मुझे वंगदेश लौट जाना पड़ेगा।

बुद्ध०—क्यों?

बंधु०—मैं ही यशोधवल के पुत्र की हत्या करनेवाला हूँ, इस बात का पता उसे बिना लगे न रहेगा। मंदिर के भीतर निरस्त्र पाकर बकरे की तरह मैंने उसके पुत्र को काटा है। जहाँ यह बात उसने सुनी कि वह न जाने क्या क्या कर डालेगा। यशोधवल कैसा विकट मनुष्य है,

इसका ध्यान करो। उसकी प्रतिहिंसा अत्यंत भयंकर है। महास्थविर ! अब तो मैं पाटलिपुत्र में नहीं ठहर सकता। मैं वंगदेश की ओर चला जाता हूँ। वहाँ रहकर जो काम होगा, निश्चिंत होकर कर सकूँगा।

बुद्ध०—संघस्थविर ! क्या पागल हुए हो ? भला इस विपत्ति के समय में तुम पाटलिपुत्र छोड़कर चले जाओगे ? तुम अपने इस क्षणिक जीवन के लोभ में संघ का बना बनाया काम बिगाड़ोगे ? यह कभी हो नहीं सकता। यदि मरना ही है तो संघ के कार्य के लिए मरो। तुम्हारे पहले न जाने कितने महास्थविर, न जाने कितने भिक्खु संघ के लिए प्राण दे चुके हैं। उन्होंने संघ की सेवा में अपने प्राण दिए, तभी संघ का अस्तित्व अब तक बना हुआ है। पहले तो कभी मृत्यु के भय ने तुम्हें नहीं घेरा था। इस समय तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ?

बंधु०—महास्थविर ! साधारण मृत्यु से तो बंधुगुप्त कभी डरनेवाला नहीं, यह बात तो आप भी जानते हैं। पर यशोधवल के हाथ से जो मृत्यु होगी—बाप रे बाप !—वह अत्यंत भीषण होगी, अत्यंत यंत्रणा-मय होगी। उसकी अपेक्षा तो हज़ार बार कुठार पर कंठ रखकर मरना अच्छा है। वंगदेश से मैं निश्चिंत होकर संघ की सेवा कर सकूँगा। दूत और पत्र के द्वारा मंत्रणा में योग देता रहूँगा।

बुद्ध०—ऐसा नहीं हो सकता; बंधुगुप्त। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। हाँ, यदि इस विपत्ति के समय में तुम संघ को छोड़ देना चाहते हो तो चले जाओ।

बंधुगुप्त सिर नीचा किए बैठे रहे। फिर धीरे धीरे बोले "महास्थविर ! आपका इसमें कोई दोष नहीं है। हम सब भाग्यचक्र में बँधे हैं। यह सब मेरे अदृष्ट का फल है। अच्छा, तो मैं न जाऊँगा"।

धीरे धीरे पूर्व दिशा में ईंगुर की सी ललाई फैल चली। एक भिक्खु ने आकर कंठ से एक प्रकार का शब्द निकाला और कहा

"देव ! अब इस स्थान पर ठहरना ठीक नहीं है। सूर्योदय के साथ ही रास्ते में लोग इधर उधर चलने लगे हैं"।

तीन के तीनों उठ पड़े और तीन ओर को चले। चलते समय बुद्धघोष ने कहा "संघस्थविर ! घबराना नहीं। मैं स्वयं जाकर इसका प्रबंध करता हूँ कि यशोधवल तुम्हारे पास तक न पहुँच सके। अब से उस पुराने मंदिर के भुइँहरे (भूगर्भस्थगृह) को छोड़ और कहीं मंत्रणासभा न होगी"। बुद्धघोष के चले जाने पर शक्रसेन ने हँसते हँसते कहा "स्थविर ! तुम तो भाग्यचक्र को कुछ नहीं समझते थे न ?" बंधुगुप्त ने कोई उत्तर न दिया।

सत्रहवाँ परिच्छेद

तरला का संवाद

"तरला ! तू कल कहाँ थी ? मैं तेरे आसरे में रात भर सोई नहीं, रात भर जँगले के पास बैठी रही। माँ ने पूछा, कह दिया बड़ी ऊमस है। तू कल आई क्यों नहीं ?"

जिसने यह बात पूछी वह पूर्ण युवती थी, अवस्था बीस वर्ष से कुछ कम होगी। तपाए हुए सोने का सा रंग और गठीला शरीर था। सौ बात की एक बात यह कि वह असामान्य सुंदरी थी, उसका सा रूप संसार में दुर्लभ समझिए। सूर्योदय से दो दंड पीछे तरला घर लौटकर आई। आते ही वह सीधे अपने प्रभु की कन्या के पास

गई जिसने देखते ही यही कहना आरंभ किया। तरला ने कुछ हँसकर उत्तर दिया "कल मैं अभिसार को गई थी। तुम्हारा दूतीपन करते करते मैंने भी अपने लिए एक नवीन नागर ढूँढ़ लिया"

"तेरे मुँह में आग लगे। पहले यह बता कि तू क्या कर आई।"

तरला—करूँगी और क्या? अपने मन का नवीन नागर मिलने पर जो सब करते हैं वही मैंने भी किया। रात भर कुंज में रहकर सबेरे आँख मलती मलती घर आ रही हूँ। तुममें यही तो बुराई है कि सच बात कहने से चिढ़ जाती हो। मैं दासी हूँ तो क्या मेरी रक्त मास की देह नहीं है, मेरे मन में उमंग नहीं है? भगवान् ने क्या प्रेम तुम्हीं लोगों के लिए बनाया है? रास्ते में कुँवरकन्हैया मिल गए, तब उनकी बात टालकर कैसे चली आती? मेरा वयस् भी अभी कुछ अधिक नहीं है। बहुत हूँगी, तुमसे दो एक बरस बड़ी हूँगी। अभी न मेरे दाँत टूटे हैं, न बाल पके हैं।

युवती—अरे! तू मर जा। यमराज के यहाँ जा। न जाने यमराज क्यों कहाँ भूले हुए हैं? यदि तुझे नागर ही मिल गया तो फिर लौटकर आई क्या करने? मुझे खबर देने? तरला, अब इधर उधर की बात छोड़, ठीक ठीक कह कि क्या कर आई। मुझसे अब विलंब नहीं सहा जाता।

तरला—तुम्हारे ही लिए तो मैं लौट आई। बहुत उतावली न करो। चलो, भीतर चलो।

युवती तरला के कंधे पर हाथ रखे घर के भीतर गई। एक कोठरी में पहुँचकर तरला ने उसके किवाड़ भीतर से बंद कर लिए। युवती ने उसके गले में हाथ डालकर पूछा "उनसे भेंट हुई?"

"हुई"

युवती ने उसे हृदय से लगा लिया। तरला ने कहा "क्या यही मेरा पुरस्कार है?" युवती ने उत्तर दिया "और पुरस्कार तेरा नागर आकर देगा"।

"मेरा नहीं, तुम्हारा"

"मेरा क्यों, तेरा; जिसके लिए तू अभिसारिका हो कर गई थी"।

"अरे वह तो एक बुड्डा बंदर है। कल रात को उसके गले में रस्सी डाल आई हूँ; किसी दिन जाकर नचाऊँगी।"

"यह सब तो तेरी बात है। सच सच बता, उनसे भेंट हुई थी?"

"सच नहीं तो क्या झूठ?"

युवती ने तरला का हाथ पकड़ उसे खिड़की के पास बैठाया और आप भी वहीं जा बैठी। तरला धीरे धीरे गुनगुनाने लगी—

जोगी बने पिय पंथ निहारत भूलि गई चतुराई।

युवती ने झुँझलाकर तरला के गाल पर एक चपत जमाई। तरला हँस पड़ी और बोली "और मैं क्या बताऊँ?" युवती रूठ गई और मुँह फेरकर अलग जा बैठी। तरला मनाने लगी "यूथिका देवी! इधर देखो। अच्छा लो, अब कहती हूँ।" युवती का मन चट पिघल गया। उसने तरला की ओर मुँह किया। तरला कहने लगी "आज सचमुच उनसे भेंट हुई। पहले तो मैंने उनके पिता के पास जाकर कहा कि मेरी सेठानी जी ने सेठ वसुमित्र के पास कुछ रत्न परीक्षा के लिए भेजे थे, वे रत्न कहाँ हैं। आप कुछ बता सकते हैं? बुड्ढा चकपका उठा और बोला कि मैं कुछ भी नहीं जानता; वसुमित्र तो मुझसे कुछ भी नहीं कह गया है। बुड्ढा एक प्रकार से स्वभाव का अच्छा है, उसके मन में छल कपट नहीं है। उसे मेरी बात पर विश्वास आ गया और उसने चट वसुमित्र का ठिकाना बता दिया। बुड्ढा मेरे साथ एक आदमी किए देता था। मैंने देखा, यह तो भारी विपत्ति लगी। किसी प्रकार बुड्ढे

से अपना पल्ला छुड़ाकर मैं चली आई। पता तो जान ही चुकी थी; मैं चल पड़ी। नगर के बाहर एक पुराने विहार में वे रखे गए हैं। वे पूरे बंदी तो नहीं हैं, पर किसी प्रकार भाग नहीं सकते। भिक्खु उनपर बराबर दृष्टि रखते हैं।

यूथिका—तूने उनसे कुछ कहा ?

तरला—न जाने कितनी बातें कहीं। तुमने जो कुछ कहा था वह तो मैंने कहा ही; उसके ऊपर और दस बातें अपनी ओर से बढ़ाकर कह आई हूँ। मैंने कहा "सेठजी ! मैं सागरदत्त की कन्या यूथिका की दूती होकर तुम्हारे पास आई हूँ। तुम्हारे विरह में वह सूखती चली जा रही है, टहनी से टूटकर गिरा चाहती है। और यह भी कहा कि यदि तुम उससे मिलना चाहते हो तो चैत की चाँदनी में वर के वेश में—

युवती आँख निकालकर बोली "फिर !"

तरला—देखो, तुम्हारा रसज्ञान दिन-दिन कम होता जा रहा है।

युवती—तरला ! तेरे पैरों पड़ती हूँ, यह सब रहने दे। और क्या कहा, यह बता।

तरला—पहले जाते ही तो मैं ने पूछा कि भैया जी ! क्या इसी प्रकार दिन काटोगे ? उत्तर मिला 'जान तो ऐसा ही पड़ता है।'

युवती के दोनों ओठ कुछ फरक उठे। तरला कहने लगी "पहले तो मैंने उन्हें देखकर पहचाना ही नहीं। पहचानती कैसे ? न वे काले भँवर से कुंचित केश हैं, न वह वेश है। जिन्हें मैं वसुमित्र कहा करती थी, उनका सिर मुँड़ा हुआ है; अनशन करते-करते चेहरा पीला पड़ गया है; शरीर काषाय वस्त्र से ढका है। नाम तक बदल गया है। अब वसुमित्र कहने से उनका पता नहीं लग सकता। अब उनका नाम है जिनानंद।" युवती तरला की गोद में मुँह छिपा कर सिसक-सिसक रोने लगी। तरला उसे समझा बुझाकर फिर कहने लगी—

"तुम्हें जिस बात का डर था, वह बात नहीं है। वसुमित्र तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते थे, इसलिए उनके पिता चारुमित्र ने उन्हें संसार से अलग नहीं किया है। चारुमित्र के मरने पर वसुमित्र ही उनकी अतुल संपत्ति के अधिकारी होते। इसलिए बौद्ध संन्यासियों ने उन्हें वसुमित्र को बौद्ध संन्यासी बना देने का उपदेश दिया। भिक्खु हो जाने पर फिर संपत्ति पर अधिकार नहीं रह जाता, संपत्ति बौद्ध संघ की हो जाती है। बौद्ध संघ की इसी सहायता के लिए ही चारुमित्र ने अपने एकमात्रपुत्र का बलिदान कर दिया है।

यूथिका—तो अब उपाय ?

तरला—उपाय वही भगवान् हैं। मठ से लौटती बार मैंने बड़ी विनती से भगवान् को पुकारा था। जान पड़ता है, भगवान् ने पुकार सुन ली और मार्ग में ही उन्होंने एक उपाय खड़ा कर दिया। मठ में बहुत से दुष्ट भिक्खु हैं। उनमें एक अधेड़ या बूढ़ा भिक्खु है। वहाँ से लौटते लौटते दिन ढल गया और अँधेरा हो गया। मैं जल्दी जल्दी बढ़ी चली आ रही थी। इतने में मुझे जान पड़ा कि कोई पीछे पीछे आ रहा है। पहले तो मैं बहुत डरी। कई बार अँधेरे में छिप रही कि वह निकल जाय; पर उसने किसी प्रकार पीछा न छोड़ा। घड़ी भर तक मैं आँख मिचौली खेलती रही। अंत में मैंने उसका मुँह देख पाया। देखते ही शरीर में गुदगुदी लगी, मैंने अपने भाग्य को सराहा। मठ का वही बुड्ढा बंदर मेरे पीछे लगा आ रहा था।

यूथिका—मुँहजला कहीं का !

तरला—तुम वसुमित्र के मुँह की ओर क्यों ताकती रह जाती थीं, क्यों तुम्हारी पलकें नहीं पड़ती थीं, अब जाकर मुझे समझ पड़ा है।

यूथिका ने कोई उत्तर न दिया, धीरे से तरला के गाल पर एक चपत जमाई। तरला कहने लगी "तुम मेरी बात का विश्वास तो

मानोगी नहीं, व्यर्थ क्यों अपने कुँवरकन्हैया का रूप वर्णन करके सिर खपाऊँ। तुम्हारी ही बात कह चलती हूँ। मैंने बाहर निकलकर नागर के साथ बातचीत की। प्रेम का पंथ ही कुछ निराला है, तुम जानती ही हो। उस रसालाप का आनंद मैं क्या कहूँ? सेठ के बेटे के मुँह में मुँह डालकर किस आनंद से बातचीत करती थीं, है स्मरण? बस उसीसे समझ लो। ऐसी सुहावनी चाँदनी में नागर कहीं नागरी को छोड़ सकता है? अग्नि के अभाव में चन्द्र को साक्षी बनाकर हम दोनों ने गांधर्व विवाह कर लिया—"।

यूथिका—चल तू बड़ी दुष्ट है। तेरा यह सब रसरंग मुझे इस समय नहीं सुहाता है, मेरे सिर की सौगंध, सच सच कह क्या हुआ।

तरला—कहती हूँ न, भला यह कौन सी बात है कि तुम मेरी प्रेम कथा न सुनो। यही न कि तुम्हारा यौवन मुझसे अभी कुछ नया है इससे क्या हुआ?

यूथिका चिढ़कर उठा ही चाहती थी कि तरला ने उस का हाथ थामकर बैठाया और बोली "सुनो, कहती हूँ, इतनी उतावली न करो। वह बुड्ढा भिक्खु सचमुच मेरे लिए पागल होकर मेरे पीछे लगा था। ज्योंही मैं ओट से निकलकर उसके सामने आई वह मेरे पैरों पर लोट गया। मैं भी उसे बढ़ावा देकर स्वर्ग का स्वप्न दिखाने लगी। मैं वसुमित्र से कह आई हूँ कि जिस प्रकार से होगा उस प्रकार से मैं तुम्हें छुड़ाऊँगी। रास्ते में सोचती आती थी कि कहने को तो मैंने कह दिया पर छुड़ाऊँगी किस उपाय से, इतने में भगवान् ने एक उपाय खड़ा कर दिया। उस बुड्ढे से मैं कह आई हूँ कि कल फिर मिलूँगी। उसीकी सहायता से मैं मठ के भीतर जाऊँगी और वसुमित्र को छुड़ाऊँगी। किस उपाय से छुड़ाऊँगी यह अभी तक मैं नहीं स्थिर क पराई हूँ। अब इस विषय में और कुछ बातचीत न करना। सेठानी

जी पूछें तो कह देना कि तरला अपनी मासी की लड़की के ब्याह में कहीं बाहर गई है, पाँच सात दिन में आवेगी। मेरी मौसेरी बहिन का नाम भी यूथिका है।"

यूथिका—तेरे मुँह में लगे आग!

तरला—अब इस बार आग नहीं, घी-गुड़।

यही कहकर तरला हँसती हँसती चली गई।

अठारहवाँ परिच्छेद

देशानंद का अभिसार

तरला अपने सेठ के घर से निकलकर राजपथ पर आई और तीन दूकानों पर से उसने पुरुषों के व्यवहार योग्य वस्त्र, उत्तरीय, उष्णीश और एक जोड़ा जूता मोल लिया। इन सब को अपने वस्त्र के नीचे छिपाकर वह अपने घर की ओर गई। नगर के बाहर तरला की मासी की एक झोपड़ी थी, यही तरला का घर था। वह प्रायः रात को सेठ ही के घर रहती थी। बीच बीच में कभी कभी अपने प्रभु से आज्ञा लेकर दो तीन दिन आकर मासी के घर भी रह जाती थी। मासी झगड़ालू थी, इससे वह अधिक दिन उसके यहाँ नहीं ठेहरती थी। तरला की मासी में अनेक गुण थे। वह अंधी, बहरी और झगड़ालू थी। घर में आकर उसने सब सामान एक कोठरी में छिपाकर रख दिया और खा पीकर सो रही। तीसरे पहर उठकर वह बड़ी सावधानी

से अपने कार्य्यसाधन के लिए चली। जाते समय वह अपनी मासी से कहती गई कि "मैं सेठ से दो दिन की छुट्टी लेकर आई हूँ। बहुत रात बीते घर लौटूँगी। साथ में अपनी एक सखी को भी लाऊँगी"।

घर से निकलकर वह नगर के दक्खिन की ओर चली। दिन ढल चला था, संध्या हुआ ही चाहती थी। चलते हुए राजपथ को छोड़ तरला नगर के छोर पर पहुँची। उस दिन जिस रास्ते से होकर वह पुराने मठ से लौटी थी, वही रास्ता पकड़े धीरे धीरे चली। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि मार्ग से थोड़ा हटकर एक बावली के किनारे ताड़ के पेड़ों की आड़ में खड़ा कोई मनुष्य चलनेवालों की ओर एकटक देख रहा है। उसे देखते ही तरला तालवन में घुसी और दबे पाँव धीरे धीरे उसके पीछे पहुँच उसने अपने दोनों हाथों से उसकी आँखें ढाँप लीं। वह व्यक्ति तरला का हाथ टटोलकर हँस पड़ा और बोला "तरला! मैं पहचान गया। ऐसा कोमल हाथ पाटलिपुत्र में और हो किसका सकता है?" तरला ने हँसकर हाथ हटा लिए और बोली "बाबा जी! बावली के किनारे खड़े खड़े तुम क्या करते थे?"

देशानंद—तृषित चकोर के समान तुम्हारे मुखचंद्र का आसरा देखता था। अच्छा, अब चलो।

तरला—कहाँ चलोगे?

देशा०—कुंज में।

तरला—बाबा जी! तुम तो संन्यासी हो। तुम्हारा कुंज कहाँ है?

देशा०—क्यों? संघाराम में।

तरला—यह कैसी बात? संघाराम क्या कोई निर्जन स्थान है? अभी उस दिन मैंने कुछ नहीं तो पचीस मुंडी तो देखे होंगे। वे सब तुम्हें पकड़कर तुम्हारे सिर का सनीचर उतारने लगेंगे।

देशा०—संघाराम में निर्जन स्थान भी है। तुम चलो तो।

तरला—अच्छा, तुम आगे आगे चलो।

देशानंद आगे बढ़ा, तरला कुछ दूर पर उसके पीछे पीछे चली। उस समय संध्या हो गई थी। नगर के बाहर के राजपथ पर कोई आता जाता नहीं दिखाई देता था। देशानंद नित्य के अभ्यास के कारण अँधेरे में ही चलते चलते उस पुराने मंदिर के सामने पहुँच गया। वस्त्र के एक कोने से कुंजी निकालकर उसने ताला खोला और मंदिर का किवाड़ खोलकर तरला से कहा "भीतर आओ"। तरला बड़े संकट में पड़ी। उसने देखा कि सचमुच निर्जन स्थान है। वह सोचने लगी कि अब क्या करूँ। किस प्रकार अपना कार्य्य सिद्ध करूँ अथवा कम से कम इसके हाथ से छुटकारा पाऊँ। देशानंद उसे विलंब करते देख अधीर हो उठा और बोला "भीतर निकल आओ, भीतर। बाहर खड़ी खड़ी क्या करती हो? कहीं कोई देख लेगा तो…"। तरला कोई उपाय न देख सीढ़ी पर चढ़ी और चौखट पर जाकर बैठ गई। देशानंद ने यह देख घबराकर कहा "द्वार पर क्या बैठ गई? झट से भीतर निकल आओ, मैं किवाड़ बंद करूँगा"। तरला ने धीरे धीरे कहा "मुझे डर लगता है, दीया जलाओ"।

देशा०—दीया जलाने से सब लोग देखेंगे।

तरला—यहाँ है कौन जो देखेगा?

देशानंद अँधेरे में दीया टटोलने लगा। तरला द्वार का कोना पकड़े बाहर खड़ी रही। इतने में कुछ दूर पर मनुष्य का कंठस्वर सुनाई पड़ा। तरला ने उसे सुनते ही धीरे से कहा "बाबा जी, जल्दी आओ। देखो किसी के बोलने का शब्द सुनाई पड़ रहा है"।

देशानंद झट द्वार पर आया और सिर निकालकर झाँकने लगा। अँधेरे में दो मनुष्य मंदिर की ओर आते दिखाई पड़े। देशानंद ने और

कुछ न कहकर तरला का हाथ पकड़कर उसे भीतर खींच लिया और उसे प्रतिमा के पीछे ले जाकर वहीं आप भी छिप रहा।

दोनों मनुष्य मंदिर के द्वार पर आ पहुँचे। उनमें से एक बोला "शक्रसेन! मंदिर का द्वार तो खुला दिखाई पड़ता है"। दूसरे व्यक्ति ने सीढ़ी पर चढ़कर देखा और कहा "हाँ, द्वार तो सचमुच खुला पड़ा है। बंधुगुप्त! देशानंद दिन पर दिन विक्षिप्त होता जाता है। अब तुरंत किसी दूसरे को मंदिर की रक्षा पर नियुक्त करो।"

दोनोंने मंदिर के भीतर घुसकर किवाड़ बंद कर लिए। बंधुगुप्त ने दीयट पर से दीया उठाकर जलाया। दोनों आसन लेकर बैठ गए। प्रतिमा के पीछे अंधकार रहने पर भी देशानंद बेंत की तरह काँप रहा था शक्रसेन ने पूछा "संघस्थविर! तुम्हारा मुँह इतना सूखा हुआ क्यों है?"

बंधुगुप्त—केवल यशोधवल के डर से।

शक्रसेन—यशोधवल से तुम इतना डरते क्यों हो?

बंधु०—क्या तुम सारी बातें भूल गए? यशोधवल मर गया, यह समझकर मैं इतने दिन निश्चिंत था।

शक्र०—पहले तो तुम मरने से इतना नहीं डरते थे।

बंधु०—मरने से तो मैं अब भी नहीं डरता हूँ। और किसी के हाथ से मरना हो तो कोई चिंता नहीं, पर यशोधवल का नाम सुनते ही मैं थर्रा उठता हूँ। जिस समय उसे सब बातों का ठीक-ठीक पता लगेगा, वह असह्य यंत्रणा दे देकर मेरी हत्या करेगा—बड़ी साँसत से मेरे प्राण निकलेंगे। एक-एक बोटी काट-काट कर वह मेरा तड़पना देखेगा। सोचते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

शक्र०—तुमने कीर्त्तिधवल को किस प्रकार मारा था?

बंधु०—यह क्या तुम जानते नहीं, जो पूछते हो?

शक्र०—तुमने तो मुझसे कभी कहा नहीं।

बंधु०—ठीक है, मैंने किसी से भी नहीं कहा है। अच्छा सुनो, कहता हूँ।

बहुत देर तक चुप रहकर बंधुगुप्त बोला "न, वज्राचार्य्य! इस समय न कहूँगा। मुझे बहुत डर लग रहा है।" उसकी बात सुनकर शक्रसेन हँस पड़ा और बोला "बंधु! मैं देखता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि लुप्त होती जा रही है। मंदिर का द्वार बंद है, मंदिर के भीतर की बात बाहर सुनाई नहीं पड़ सकती, सामने दीपक जल रहा है। तुम अपनी आँख से देख रहे हो कि मंदिर में हमें, तुम्हें और इस देवप्रतिमा को छोड़ और कहीं कोई नहीं है। इतने पर भी तुम्हें इतना भय घेरे हुए है!"

बंधु०—"ठीक है, मैं व्यर्थ डर रहा हूँ। कीर्त्तिधवल जिस समय वंगदेश में कर संग्रह करने गए थे, उस समय वहाँ के संघ पर बड़ी विपत्ति थी। धवलवंशवाले सबके सब बड़े ही नीतिकुशल और युद्ध-विद्या-विशारद होते आए हैं। बार-बार पराजित होकर जब विद्रोही प्रजा ने संधि की प्रार्थना की तब उसने बिना किसी प्रकार का दंड दिए उसे छोड़ दिया जिससे सब लोग उसके वश में हो गए। मैं उस समय वंग देश में ही था। लाख चेष्टा करने पर भी मैं सद्धर्म्मियों (बौद्धों) को कीर्त्तिधवल के विरुद्ध न भड़का सका। उस समय मैंने विचारा कि यशोधवल के पुत्र के वध के अतिरिक्त संघ की कार्य्यसिद्धि का और कोई उपाय नहीं है वंगदेश का कोई मनुष्य उसपर हाथ छोड़ने को तैयार न हुआ। वह भी सदा रक्षकों से घिरा रहता था, इससे मुझे भी दाँव न मिलता था। बहुत दिनों पीछे मुझे पता लगा कि वह नित्य संध्या को तारादेवी के मंदिर में दर्शन करने जाता है। तब से मैं बराबर संध्या को उसके पीछे-पीछे जाता, पर उसपर आक्रमण न कर सकता। एक दिन देवयात्रा के समय सद्धर्मियों और ब्राह्मणों के बीच

झगड़ा हुआ। उसी हुल्लड़ में मैंने दूर से छिपकर उसपर बाण चलाया। वह गिर पड़ा। उस भीड़-भाड़ में किसी ने मुझको या उसको न देखा। वह तारा मंदिर के सामने अचेत पड़ा था। अँधेरे में जब उसके अनुचर उसे चारों ओर ढूँढ़ रहे थे, तब मैंने उसके पास जाकर देखा कि वह जीता है, और चोट ऐसी नहीं है कि वह मर जाय। मैंने झट देवी के हाथ का खड्ग लेकर उसके हाथ और पैर की नस काट दी। असह्य पीड़ा से वह छटपटाने लगा, घोर यंत्रणा और रक्त-स्राव से व्याकुल होकर वह क्षीण कंठ से बार-बार जल माँगने लगा। उसका रुधिर देख देखकर मैं आनंद से उन्मत्त हो रहा था। उसकी बात पर मैंने कुछ भी ध्यान न दिया। इस प्रकार एक महाशत्रु का मैंने वध किया।"

इस भीषण हत्या की बात सुनकर तरला प्रतिमा के पीछे बैठी-बैठी काँप उठी। बहुत देर तक चुप रहकर शक्रसेन ने कहा "बंधुगुप्त! तुम मनुष्य नहीं राक्षस हो। किसने बौद्धसंघ में लेकर तुम्हें धर्म की दीक्षा दी?"

बंधु०—वज्राचार्य्य! अब उस बात को मुँह पर न लाओ। बहुत दिनों तक मैं बराबर यही स्वप्न देखता कि तारामंदिर के सामने पड़ा वह बालक मृत्युयंत्रणा से तड़प और चिल्ला रहा है और मैं रक्त देख देखकर नाच रहा हूँ। पर जब से सुना है कि यशोधवल फिर आया है, तब से इधर नित्य रात को देखता हूँ कि मैं इसी मंदिर के द्वार पर पड़ा मृत्यु को घोर यंत्रणासे छटपटा रहा हूँ और रक्त से डूबी तलवार हाथ में लिए यशोधवल आनंद से नाच रहा है।

आधे दंड तक तो दोनों चुपचाप रहे। फिर बंधुगुप्त बोला "वज्राचार्य्य! चलो संघाराम लौट चलें, मंदिर का यह सन्नाटा देख मेरा जी दहल रहा है।" दिया बुझाकर दानों मंदिर के बाहर निकले।

प्रतिमा की ओट में देशानंद अब तक थरथर काँप रहा था। बंधुगुप्त और शक्रसेन के चले जाने पर तरला बोली "बाबाजी! अब बाहर निकलो।" हाथ पर सिर पटककर देशानंद बोला "तरला, अब प्राण बचता नहीं दिखाई देता, तुम्हारे प्रेम में मेरे प्राण गए।"

तरला—तो क्या यहीं बैठे बैठे प्राण दोगे?

देशानंद हताश होकर बोला "चलो, चलता हूँ।" दोनों मंदिर के बाहर आ खड़े हुए। तरला ने देखा कि बुड्ढा बेतरह डरा हुआ है। उसे ढाढ़स बँधाने के लिए उसने कहा "तुम इतना डरते क्यों हो? ये सब तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकते। तुम यहाँ से भाग चलो, तुम्हें मैं ऐसे स्थान में ले जाकर छिपाऊँगी जहाँ ये जन्म भर ढूँढ़ते मर जायँ तो भी न पा सकें।" देशानन्द का जी कुछ ठिकाने आया। वह अधीर होकर कहने लगा "तब फिर यहाँ ठहरने का अब काम नहीं, चलो भागें।" तरला ने कहा, "घबराओ न, मेरा थोड़ा सा काम है, उसे करती चलूँ"

देशा०—तुम्हारा अब कौन सा काम है?

तरला—जिनानंद से एक बार मिलकर कुछ कहना है।

देशा०—जिनानंद तो इस समय संघाराम में बन्द होगा। वहाँ तुम्हारा जाना ठीक न होगा। यहीं रहो, मैं अभी उसे बुलाए लाता हूँ।'

देशानंद गया। तरला ने मन ही मन सोचा, चलो, अच्छा हुआ। वह मंदिर की ओट में अँधेरा देख छिप रही। थोड़ी ही देर में जिनानंद को लिए देशानंद आ पहुँचा और तरला से बोला 'जो कुछ काम हो जल्दी निबटा लो। जिनानंद देर तक बाहर रहेगा तो भिक्खुओं को संदेह होगा।'

तरला—बाबा जी! तुम थोड़ा मंदिर के भीतर हो रहो। कुछ गुप्त बात है।

देशानंद मंदिर के भीतर गया। तरला ने किवाड़ बन्द कर दिए और जिनानन्द से कहा "भैया जी! मुझे पहचाना? मैं वही तरला हूँ। तुम्हें छुड़ा ले चलने के लिए आई हूँ। अब और कोई बात न पूछो। चुपचाप जो जो मैं कहती हूँ, करते चलो।"

जिनानंद वा वसुमित्र मुँह ताकता रह गया। तरला ने मंदिर के द्वार पर जाकर धीरे से पुकारा "बाबा जी!"। उत्तर मिला "क्या है।"

"अपने वस्त्र बाहर निकाल दो, मैं उन्हें पहनूँगी। यदि तुम भिक्खु के वेश में रात को बाहर निकलोगे तो लोग तुम्हें पहचान जायँगे।"

देशानंद ने एक एक करके सब वस्त्र मंदिर के बाहर फेंक दिए। तरला ने वसुमित्र से वेश बदल डालने के लिए कहा। वसुमित्र ने देशानंद के वस्त्र पहन लिए और अपने वस्त्र उतारकर तरला के हाथ में दे दिए। तरला ने अँधेरे में भिक्खु का वेश धारण किया और अपने वस्त्र मंदिर के भीतर फेंक दिए और देशानंद से उन्हें पहनने को कहा। देशानंद ने मंदिर के भीतर ही भीतर तरला के सब वस्त्र पहन लिए। मंदिर के भीतर जाकर तरला ने अपने सब गहने भी उसे पहना दिए और कहा "तुम यहीं चुपचाप बैठे रहो, मैं अभी आती हूँ।" देशानद अँधेरे में बैठा रहा। तरला ने बाहर आकर मंदिर के किवाड़ लगा दिए और कुंडी भी चढ़ा दी। यह सब कर चुकने पर वसुमित्र को लेकर वह चल खड़ी हुई और देखते देखते अँधेरे में बहुत दूर निकल गई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

साम्राज्य का मंत्रगृह

नए प्रासाद के अलिंद में खड़े महाप्रतीहार विनयसेन किसी चिंता में हैं। दोपहर का समय है, प्रासाद के आँगन में सन्नाटा है। दो एक द्वारपाल इधर उधर छाया में खड़े हैं। अलिंद के भीतर खंभों के बीच दो चार दंडधर भी दिखाई पड़ते हैं। एक पालकी आँगन में आई और अलिंद के सामने खड़ी हुई। कहारों ने पालकी रखी, उसमें से वृद्ध हृषीकेश शर्म्मा उतरे। जान पड़ता है, विनयसेन उन्हींका आसरा देख रहे थे, क्योंकि उन्हें देखते ही वे अलिंद से नीचे आए और प्रणाम करके बोले "प्रभो! आपको बहुत विलंब हुआ। सम्राट् और यशोधवलदेव आपके आसरे बहुत देर से बैठे हैं।" वृद्ध ने क्या उत्तर दिया, विनयसेन नहीं समझे। वे उन्हें लिए सीधे प्रासाद के अंतःपुर में घुसे। विनयसेन ज्यों ही अलिंद से हटे, एक दंडधर आकर उनके स्थान पर खड़ा हो गया। चलते चलते हृषीकेश शर्म्मा ने पूछा "और सब लोग आ गए हैं?"

विनय०—महाधर्म्माध्यक्ष और महाबलाध्यक्ष के अतिरिक्त और किसी को संवाद नहीं दिया गया है।

हृषी०—क्यों?

विनय०—महाराज की इच्छा।

अंतःपुर के द्वार पर जाकर विनयसेन ने एक परिचारिका को बुलाया और महामंत्री को सम्राट् के पास पहुँचाने की आज्ञा देकर वे

लौट आए। अलिंद के सामने एक और पालकी आई थी जिसपर से उतरकर नारायण शर्म्मा दंडधर से कुछ पूछ रहे थे। विनयसेन ने ज्योंही जाकर उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने पूछा "क्यों भाई विनय! आज यह असमय की सभा कैसी? कुछ कारण ऐसे आ पड़े कि मुझे आने में बहुत विलंब हो गया।"

विनय०—सम्राट् और यशोधवलदेव दो घड़ी से बैठे आसरा देख रहे हैं और अब तक सब लोग नहीं आए। क्षण भर हुआ कि महामंत्री जी आए हैं और अब आप आ रहे हैं। महाराजाधिराज की आज्ञा से सब लोगों को संवाद नहीं दिया गया।

नारायण०—और कौन कौन आवेंगे?

विनय०—महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त।

नारायण०—रामगुप्त भी नहीं?

विनय०—मैं तो समझता हूँ नहीं, पर ठीक कह नहीं सकता।

नारायण०—अच्छा, चलो।

दोनों प्रासाद के भीतर घुसे। इतने में एक भिखारी आकर द्वारपाल से पूछने लगा "क्यों भाई! प्रासाद में आज भिक्षा मिलेगी?" द्वारपाल ने कहा "नहीं।"

भिखारी—तो फिर कहाँ मिलेगी?

द्वार०—आज न मिलेगी।

भिखारी इस उत्तर से कुछ भी उदास न होकर आँगन से होता हुआ धीरे-धीरे चला गया। अलिंद के एक खंभे की आड़ से एक दंडधर उसे देख रहा था। उसने चट बाहर आकर पूछा "वह कौन था और क्या कहता था?"

द्वार०—एक भिखमंगा था, भिक्षा के लिए आया था।

दंड०—कुछ पूछता था?

द्वार—नहीं।

दंड—देखने में वह भिक्खु ही सा लगता था।

द्वार—अच्छी तरह देखा नहीं।

दंड०—कोई आकर कुछ पूछे तो बहुत समझ बूझकर उत्तर देना।

द्वारपाल ने अभिवादन किया। इसी बीच में एक अश्वारोही आँगन में आ पहुँचा। उसे देखते ही एक दंडधर जाकर विनयसेन को बुला लाया। द्वारपालों और दंडधरों ने प्रणाम किया। विनयसेन अभिवादन करके घोड़े पर से उतरे हुए व्यक्ति को अंतःपुर के भीतर ले गए।

इतने में एक द्वारपाल उसी भिखारी का हाथ पकड़े हुए अलिंद के नीचे आ खड़ा हुआ और अलिंद के एक द्वारपाल से पूछने लगा "महाप्रतीहारजी कहाँ हैं?" द्वारपाल बोला "महाबलाध्यक्ष के साथ अंतःपुर में गए हैं।"

पहला द्वार०—अच्छा किसी दंडधर को बुला दो।

दूसरा द्वार०—क्यों, क्या हुआ?

पह० द्वार०—यह मनुष्य आड़ में छिपकर राज कर्म्मचारियों की गतिविधि देख रहा था, इसीसे इसे पकड़कर लाया हूँ।

एक दूसरा द्वारपाल जाकर पूर्वोक्त दंडधर को बुला लाया। उसने आते ही पूछा "यही न भिक्षा माँगने के लिए आया था?"

दूस० द्वार०—हाँ।

दंड०—इसे क्यों पकड़ लाए हो?

दूस० द्वा०—यह छिपकर महाधर्म्माध्यक्ष और महाबलाध्यक्ष की गतिविधि देख रहा था, इसीसे इसे पकड़ रखा है।

दंड०—बहुत अच्छा किया। इसे बाँध रखो; मैं अभी जाकर महाप्रतीहार को संवाद देता हूँ।

दूसरे द्वारपाल ने भिखारी की पगड़ी खोलकर उसके हाथ पैर कस-कर बाँधे। पगड़ी खुलते ही भिखारी की मुँड़ी खोपड़ी देख दंडधर बोल उठा "अरे! यह तो बौद्धभिक्खु है! निश्चय यह कोई गुप्तचर है।" यही कहता हुआ वह अंतःपुर की ओर दौड़ा और थोड़ी देर में विनयसेन को लिए लौट आया। विनयसेन ने आते ही भिक्षुक से पूछा "तू यहाँ क्या करने आया था?"

भिक्षुक—भिक्षा माँगने।

विनय०—अंतःपुर में भिक्षा कहाँ मिलती है?

भिक्षुक—बाबा! मैं परदेसी हूँ, नया नया आया हूँ। यहाँ की रीति-नीति नहीं जानता।

विनय०—तेरा सिर क्यों मुँड़ा है?

भिक्षुक—मुझे सँबलबाई का रोग है।

एक दंडधर ने आकर विनयसेन से कहा "महाराज आप को स्मरण कर रहे हैं।" विनयसेन ने भिक्षुक को प्रासाद के कारागार में रखने की आज्ञा दी और द्वारपाल से कहा "देखो! अब मेरी आज्ञा बिना कोई प्रासाद के आँगन तक भी न आने पावे।" इतना कहकर वे दंडधर के साथ अंतःपुर में गए।

अंतःपुर के एक छोटे से घर में एक पलंग के ऊपर सम्राट् महा-सेनगुप्त बैठे हैं। कुछ दूर पर एक-एक आसन लेकर हृषीकेशशर्म्मा और नारायण शर्म्मा बैठे हैं। कोठरी के द्वार पर हरिगुप्त खड़े हैं। द्वार से कुछ दूर पर कई दंडधर खड़े हैं। विनयसेन ने आकर हरिगुप्त से पूछा "महाराजाधिराज ने मुझे स्मरण किया है?" हरिगुप्त ने कहा "हाँ, भीतर जाओ।" विनयसेन ने कक्ष में जाकर अभिवादन किया। सम्राट् ने उन्हें देखकर भी कुछ नहीं कहा तब यशोधवल ने सम्राट् को संबोधन करके कहा "महाधिराज! विनयसेन आ गए हैं। अब कुमार

क्यों न बुलाए जायँ ?" वृद्ध सम्राट् ने झुका हुआ सिर उठाकर कहा "यशोधवलदेव ! गणना का फल कभी झूठ नहीं हो सकता। तुम शशांक को अभी से साम्राज्य के कार्य्य में न फँसाओ।"

यशो०—महाराजाधिराज ! युवराज को राजकार्य्य में दक्ष करने को छोड़ साम्राज्य की रक्षा का और कोई उपाय नहीं है। वृद्ध महामंत्री हृषीकेश शर्म्मा, पुराने धर्माध्यक्ष नारायण शर्म्मा, युद्धक्षेत्र में दीर्घजीवन बितानेवाले महाबलाध्यक्ष और मैं महाराजाधिराज के चरणों में यह बात कई बार निवेदन कर चुका। इस समय साम्राज्य की जो दुर्दशा हो रही है, वह महाराज से छिपी नहीं है। होराशास्त्र की बातों को लेकर राज्य चलाना असंभव है। यदि कुमार के हाथों से साम्राग्य का नाश ही विधाता को इष्ट होगा तो उसे कौन रोक सकता है ? विधि का लिखा तो मिट नहीं सकता। किंतु यही सोचकर हाथ पर हाथ रखे बैठे रहना, अपनी रक्षा का कुछ उपाय न करना कहाँ तक ठीक है ? कहीं कुमार का राष्ट्रनीति न जानना ही आपके पीछे साम्राज्य के ध्वंस का प्रधान कारण न हो जाय।

सम्राट् चुपचाप बैठे रहे। उन्हें निरुत्तर देख हृषीकेश शर्म्मा धीरे-धीरे बोले "महाराजाधिराज ! महानायक का प्रस्ताव बहुत उचित जान पड़ता है। हम सब लोग अब बुड्ढे हुए। हम लोगों का समय अब हो गया। अब ऐसा कुछ करना चाहिए जिसमें महाराज के पीछे युवराज को राजनीति के घोर चक्र में पड़कर असहाय अवस्था में इधर उधर भटकना न पड़े। यदि विधाता की यही इच्छा होगी कि युवराज के हाथ से यह प्राचीन साम्राज्य नष्ट हो तो कोई कहाँ तक बचा सकेगा ? किंतु विधाता की यही इच्छा है, पहले से ऐसा मान बैठना बुद्धिमानी का काम नहीं है।" सम्राट् फिर भी कुछ न बोले। यह देख नारायण शर्म्मा ने कहा "महाराजाधिराज !" उनका कंठस्वर कान

में पड़ते ही सम्राट् का ध्यान टूटा और वे बोले "अच्छा, यशोधवल ! तो फिर यही सही। विधाता का लिखा कौन मिटा सकता है ?"

यशो०—महाराजाधिराज ! विनयसेन आज्ञा के आसरे खड़े हैं।

सम्राट्—महाप्रतीहार ! तुम युवराज शशांक को चुपचाप यहाँ बुला लाओ।

विनयसेन प्रणाम करके बाहर निकले। सम्राट् ने यशोधवलदेव से कहा "यशोधवल ! अच्छा अब बताओ, क्या क्या करना चाहते हो।"

यशो०—मेरे चार प्रस्ताव हैं जिन्हें मैं महाराज की सेवा में पहले ही निवेदन कर चुका हूँ। इस समय साम्राज्य के संचालक यहाँ एकत्र हैं, उनके सम्मुख भी उपस्थित कर देना चाहता हूँ।

सम्राट्—तुम्हारे प्रस्तावों को मैं ही सुनाए देता हूँ। महानायक ने मेरे सामने चार प्रस्ताव रखे हैं। प्रथम—प्रांत* और कोष्ठ† की रक्षा; द्वितीय—अश्वारोही, पदातिक और नौसेना का पुनर्विधान; तृतीय—राजस्व और राजषष्ठ के संग्रह का उपाय; चतुर्थ—वंगदेश पर फिर अधिकार। ये चारों प्रस्ताव, मैं समझता हूँ, सब को मनोनीत होंगे। अब विचारने की बात है उपयुक्त कर्म्मचारियों का निर्वाचन और अर्थसंग्रह। राजकोष तो, आप लोग जानते ही हैं, शून्य हो रहा है। आवश्यक व्यय भी बड़ी कठिनता से निकलता है। रहे कर्म्मचारी, सो पुराने और नए दोनों अयोग्य हैं। उनमें न अनुभव है न कार्य्यतत्परता।

यशो०—इन चारों प्रस्तावों के अनुसार जब तक व्यवस्था न होगी तब तक साम्राज्य की रक्षा असंभव समझिए। प्रांत और कोष्ठ

---

* प्रांत=सीमा। सरहद।

† कोष्ठ=प्राचीर से घिरे हुए नगर, दुर्ग आदि।

की रक्षा के लिए सुशिक्षित सेना और बहुत सा धन चाहिए। सेना और अर्थसंग्रह के लिए राजस्व और राजषष्ठ संग्रह की सुव्यवस्था आवश्यक है।

सम्राट्—यशोधवल! तुम्हारी एक एक बात इस समय मेरे लिए एक एक विकट समस्या है। मैं देखता हूँ कि मेरे किए इनमें से एक बात भी नहीं हो सकती।

यशो०—महाराजाधिराज के निकट मैंने जिस प्रकार ये समस्याएँ उपस्थित कीं, उसी प्रकार इनकी पूर्त्ति का उपाय भी पहले से सोच रखा है। कुमार आ जायँ तो मैं निवेदन करूँ। तीन कार्य्य तो इस समय हो सकते हैं, पर उनके लिए बहुत धन की आवश्यकता है।

हृषीकेश—यशोधवल! इसी अर्थाभाव के कारण ही तो हाथ पैर नहीं चल सकता। तुम इतना धन कहाँ से लाओगे?

हरिगुप्त द्वार पर खड़े थे। वे बोल उठे "कुमार आ रहे हैं"। विनयसेन युवराज शशांक को साथ लिए कोठरी में आए। युवराज अपने पिता के चरणों में प्रणाम करके और समाहृत पुरुषों को प्रणाम करके खड़े रहे। सम्राट् ने उन्हें बैठने की आज्ञा दी। यशोधवल ने बढ़कर उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया।

सम्राट् बोले "यशोधवल! क्या कहते थे, अब कहो"। महानायक कहने लगे "युवराज! साम्राज्य की बड़ी दुर्दशा हो रही है। प्राचीन गुप्त साम्राज्य का दिन दिन पतन होता चला जा रहा है। उसकी रक्षा का यत्न सब का सब प्रकार से कर्त्तव्य है। अब तक साम्राज्य की रक्षा का ध्यान छोड़कर सब लोग चुपचाप बैठे थे, आज चेत रहे हैं। इस प्राचीन साम्राज्य के साथ, करोड़ों प्रजा का धन, मान और प्राण गुथा हुआ है। इसका ध्वंस होते ही पूर्व देश में महाप्रलय सी आ पड़ेगी। इधर सैकड़ों वर्ष से पाटलिपुत्र की ऐसी दशा कभी नहीं हुई थी। शकों

के समय की दुर्दशा की बात जनपदवासी भूल गए हैं। हूणों के प्रबल प्रवाह में पड़कर पुरुषपुर और कान्यकुब्ज ध्वस्त हो गए, किंतु पाटलिपुत्र के दुर्ग प्राकार की छाया तक वे स्पर्श न कर सके। साम्राज्य का ध्वंस होते ही देश का सर्वनाश हो जायगा। तुम्हारे पिता वृद्ध हैं, तुम दोनों कुमार अभी बालक हो। पूर्व में सुप्रतिष्ठित वर्म्मा और पश्चिम में प्रभाकरवर्द्धन घात लगाए केवल सम्राट् की मृत्यु का आसरा देख रहे हैं। कोई उपाय न देख तुम्हारे पिता चुपचाप बैठ गए हैं। पर क्या इस प्रकार हाथ पर हाथ रखकर बैठ रहना पुरुषोचित कार्य्य है? जो आत्मरक्षा में तत्पर न रह भाग्य के भरोसे पर बैठे रहते हैं, मैं समझता हूँ, उनके समान मूर्ख संसार में कोई नहीं। यत्न के बिना साम्राज्य की क्या दशा हो रही है, थोड़ा सोचो तो। सीमा पर के जितने दुर्ग हैं, संस्कार और देखरेख के बिना निकम्मे हो रहे हैं। सेना और अर्थ के अभाव से वे शत्रु का अवरोध करने योग्य नहीं रह गए हैं। नियमित रूप से राजस्व राजकोष में नहीं आ रहा है। भूमि के जो साम्राज्यप्रतिष्ठित अधिकारी थे वे अधिकारच्युत हो रहे हैं, उनके स्थान पर जो नए अधिकारी बन बैठे हैं वे राजकर्मचारियों की आज्ञा पर ध्यान नहीं देते। फल यह है कि राजकोष शून्य हो रहा है। बहुत दिनों से इधर पाटलिपुत्र के दुर्गप्राकार और नगरप्राकार का संस्कार नहीं हुआ है। खाइँयों में जल नहीं रहता है, कुछ दिनों में वे पटकर खेत हुआ चाहती हैं। इस समय यदि कहीं से कोई चढ़ आवे तो हम लोगों की पराजय निश्चय है।

"मैं सम्राट् के पास पितृहीना लतिका के लिए अन्न की भिक्षा माँगने आया था। किंतु मैंने आकर देखा कि जो अन्नदाता हैं, उन्हींके यहाँ अन्न का अभाव हो रहा है। बहुत दिन पहले जब तुम्हारे पिता जी राजसिंहासन पर बैठे थे, तब एक बार मैंने साम्राज्य का कार्य्य चलाया था। आज फिर साम्राज्य की दुर्दशा देखकर कार्य्य का भार

अपने ऊपर लेता हूँ। किंतु हम सब लोग अब वृद्ध हुए, अधिक दिन इस संसार में न रहेंगे। अपने पिता के पीछे तुम्हीं इस सिंहासन पर बैठोगे। तुम्हारे ही ऊपर राज्यभार पड़ेगा; इसलिए तुम्हें अभी से राज्यकार्य्य की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। तुम्हारी सहायता से हम लोगों का परिश्रम भी बहुत कुछ हलका रहेगा। आज से तुम्हें राज्यकार्य्य का व्रत लेना पड़ेगा।"

महानायक की गोद में बैठे बैठे युवराज बोले "यदि पिता जी आज्ञा देंगे तो क्यों न करूँगा?" इतना कहकर वे पिता का मुँह ताकने लगे। सम्राट् ने कुछ उदास होकर कहा "शशांक! सब की यही इच्छा है कि आज से तुम साम्राज्य के कार्य्य की दीक्षा लो। अतः बालक होकर भी तुम्हें यह भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा। यशोधवल ही तुम्हें दीक्षित करेंगे, तुम सदा इन्हींकी आज्ञा में रहना।"

यशोधवल का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने फिर कहना आरंभ किया—"साम्राज्य की रक्षा के लिए मैंने चार प्रस्ताव किए थे, प्रथम—राजस्व संग्रह की व्यवस्था; द्वितीय प्रांत और कोष्ठ संरक्षण; तृतीय—अश्वारोही, पदातिक और नौसेना का पुनर्विधान और चतुर्थ—वंगदेश का अधिकार। जब पहले तीन कार्य्य सुसंपन्न हो लेंगे तब चौथे में हाथ लग सकता है, उसके पहले नहीं। पर इन तीनों कार्य्यों के लिए बहुत धन चाहिए और राजकोष इस समय शून्य हो रहा है। अभी कार्य्य आरंभ कर देने भर के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी, उतने के संग्रह का एक उपाय मैंने सोचा है। नगर और राज्य के भीतर जो बहुत से लखपती श्रेष्ठी (सेठ) और स्वार्थवाह (महाजन) हैं उनसे ऋण लेकर कार्य्य आरंभ कर देना चाहिए, यही मेरी समझ में ठीक होगा।"

हृषीकेश—हम लोगों की इस समय जैसी अवस्था हो रही है, उसे देखते कोई कैसे ऋण देगा?

यशो०—अवश्य देंगे। राज्य में श्रेष्ठियों का काम अर्थसंचय मात्र है। पुरुष परंपरा से उन्हें इसका अभ्यास रहा है, इसीसे राज्य की ओर से उन्हें इसके लिए पूरा पूरा सुभीता कर दिया जाता है। अतः वे अपने धन का कुछ अंश राज्य की सेवा में देकर अपना परम गौरव समझेंगे। साम्राज्य की छत्र-छाया के नीचे ही उनका पालन होता है, साम्राज्य की रक्षा के पीछे उनकी रक्षा है, साम्राज्य के नाश के आरंभ के साथ ही साथ उनका सर्वनाश है, यह वे जानते हैं; और उन्हें इसकी सूचना भी दे दी जायगी। इस प्रकार कार्य आरंभ कर देने भर के लिए धन उनसे सहज में निकल सकता है।

सम्राट्—अच्छी बात है। तुमने आज से राज्य के कार्य्य का भार अपने ऊपर लिया है, इसकी सूचना साम्राज्य के सब कर्म्मचारियों को तो देनी होगी न ?

यशो०—नहीं महाराजाधिराज ! इससे सारा काम बिगड़ जायगा। मैं चुपचाप महामंत्री की ओट में सब कार्यों की व्यवस्था करूँगा।

सम्राट—एवमस्तु।

बीसवाँ परिच्छेद

तरला और यशोधवल

तरला उसी रात वसुमित्र को लिए अपनी मासी के घर लौटी। द्वार पर खड़ी-खड़ी वह घंटों चिल्लाई, तब जाकर कहीं बुड्ढी की आँख खुली। वह न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती हुई उठी और आकर किवाड़ खोला। तरला वसुमित्र को लिए घर के भीतर गई। वे दोनों किस वेश में थे, बुड्ढी अँधेरे में कुछ भी न देख सकी। वसुमित्र को एक कोठरी में सोने के लिए कहकर तरला अपनी मासी की खाट पर जाकर पड़ रही। बुढ़िया बहुत चिड़चिड़ाई। बुढ़ापे में एक तो नींद यों ही नहीं आती, उसपर से यदि बाधा पड़ी तो फिर जल्दी नींद कहाँ? बुड्ढी बकने लगी "तू न जाने कैसी है; इतनी रात को एक आदमी को साथ लाई और उसे एक कोठरी में ढकेलकर आप मेरे सिर पर आ पड़ी। अपने घर किसी को लाकर उसके साथ ऐसा ही करना होता है?" तरला ने धीरे से कहा "उस घर में मच्छड़ बहुत हैं, आँख नहीं लगती।" बुड्ढी यह सुनते ही झल्ला उठी और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी "अब तू ऐसी बड़ी ठकुरानी हो गई कि मच्छड़ लगने से तुझे नींद नहीं आती? तब तू किसीके घर का कामधंधा कैसे करती होगी? तेरे बाप दादा तेरे लिए राज न छोड़ गए हैं; जो तू पैर पर पैर रखे रानी बनी बैठी रहेगी।" बुढ़िया अपना मनमाना बर्राती रही, तरला चुपचाप खाट के किनारे पड़ी रही। पर बुढ़िया की बातों की चोट और चिंता से उसे रात भर नींद नहीं आई।

सूर्य्योदय के पहले ही चिड़ियों की चहचह सुनकर तरला उठ बैठी और अपनी मासी को सोते देख धीरे से चारपाई के नीचे उतरी। रात भर पड़े-पड़े उसने सोचा था कि वसुमित्र की रक्षा तभी हो सकती है जब सम्राट् तक किसी प्रकार उसकी पहुँच हो जाय। यों तो दिन में जब कभी भिक्खु उसे देख पावेंगे, तुरंत पकड़ ले जायँगे और किसी को कुछ बोलने का साहस न होगा। उसने मन ही मन स्थिर कर रखा था कि सवेरा होते ही उसे लेकर मैं प्रासाद में जाऊँगी और अंतःपुर के द्वार पर बैठी रहूँगी। वहाँ से उसे कोई पकड़-कर नहीं ले जा सकेगा। तरला ने अपना भेस बदला और जो कपड़े वह उस दिन मोल लाई थी, उन्हें वसुमित्र को देकर पहनने के लिए कहा। भिक्खुओं का जो पहनावा था उसे घर के एक कोने में छिपाकर रख दिया। यह देख कि मासी अभी पड़ी सो रही है, वह दबे पाँव घर के बाहर निकली।

राजपथ पर अभी तक लोग आते जाते नहीं दिखाई देते थे। पूर्व की ओर प्रकाश की कुछ कुछ आभा दिखाई पड़ रही थी, पर मार्ग में अँधेरा ही था। दोनों जल्दी जल्दी चलकर प्रासाद के तोरण पर पहुँचे। तोरण पर अभी तक प्रकाश जल रहा था। चारों ओर प्रतीहार पड़े सो रहे थे। उनमें से केवल एक भाला टेककर खड़ा नींद में झूम रहा था। तरला चुपचाप उसकी बगल से होकर निकल गई और उसे कुछ आहट न मिली। तोरण के इधर उधर कई कुत्ते पड़े सो रहे थे। वे आदमी की आहट पाकर भाँव भाँव करने लगे। प्रतीहार जाग पड़े। उन्होंने सामने वसुमित्र को देख उसका हाथ पकड़कर पूछा "कहाँ जाता है?" इतने में तरला प्रतीहार का पैर पकड़ रो रोकर कहने लगी "हम लोगों पर बड़ी भारी विपत्ति है, हम लोगों को जाने दो। मैं अपने भाई की प्राणरक्षा के लिए महाराजाधिराज के पास जा रही हूँ। दिन को जहाँ भिक्खु इसे देख पावेंगे पकड़ ले जायँगे और मार डालेंगे। हम लोग

और कुछ न करेंगे, अंतःपुर के द्वार पर जाकर बैठे रहेंगे। जब सम्राट् बाहर निकलेंगे तब उनसे इसके प्राण की भिक्षा माँगूँगी"। बातचीत सुनकर और प्रतीहार भी जाग पड़े। उनमें से एक तरला के पास आकर बोला "तुम लोगों को क्या हुआ है ?"

तरला—यह मेरा भाई है। भिक्खु इसे ज़बरदस्ती पकड़ ले गए और सिर मूँड़कर भिक्खु बना दिया। कल रात को यह किसी प्रकार उनके चंगुल से निकलकर भाग आया है। इसीसे आज इसे लेकर महाराजाधिराज की शरण में आई हूँ। दिन को यदि इसे भिक्खु कहीं देख पावेंगे तो पकड़ ले जायँगे और मार डालेंगे। अब महाराज यदि शरण देंगे तभी इसकी रक्षा हो सकती है। नगर में किसी की सामर्थ्य नहीं है जो भिक्खुओं के विरुद्ध चूँ कर सके।

जो पुरुष खड़ा पूछ रहा था वह एक दंडधर था। प्रतीहारों ने उससे पूछा "तो इसे जाने दें ?"। दंडधर ने तरला से पूछा "तुम दोनों कहाँ जाओगे ?"

तरला—बाबा ! हम लोग कहीं न जायँगे, कुछ न करेंगे, केवल अंतःपुर के द्वार पर खड़े रहेंगे। जब महाराज निकलेंगे तब उनसे अपना दुःख निवेदन करेंगे।

यह कहकर तरला आँसू गिराने लगी। रमणी के विशेषतः किसी सुंदर रमणी के, कपोलों पर आँसू की बूँदें देख पत्थर भी पिघल सकता है, सामान्य प्रतीहारों और दंडधरों के हृदय में यदि करुणा का उद्रेक हो तो आश्चर्य क्या ! तरला ने उन्हें चुप देख रोने की मात्रा कुछ बढ़ा दी। दंडधर का हृदय अंत में पसीजा। वह बोला "ये दोनों कोई बुरे आदमी नहीं जान पड़ते, इन्हें जाने दो।" प्रतीहार रास्ता छोड़कर अलग खड़ा हो गया। तरला वसुमित्र को लेकर प्रासाद के भीतर घुसी।

पहले तोरण के आगे विस्तृत आँगन पड़ता था जिसके उत्तर दूसरा तोरण था। जब वे दूसरे तोरण के सामने पहुँचे तब उजाला हो चुका था। दूसरे तोरण पर के प्रतीहारों ने उनकी बात सुनते ही रास्ता छोड़ दिया। यहाँ पर भी तरला को दो चार बूँद आँसू टपकाने पड़े थे। द्वितीय तोरण के आगे ही सभामंडप पड़ता था। क्रमशः धर्माधिकरण, अस्त्रशाला आदि को पार करके तरला और श्रेष्ठिपुत्र तीसरे तोरण पर पहुँचे। वहाँ के प्रतीहारों ने उन्हें किसी प्रकार आगे न बढ़ने दिया, कहा कि सम्राट् की आज्ञा नहीं है। अंत में विवश होकर वे दोनों तोरण के पास बैठ रहे। धीरे-धीरे दिन का उजाला फैल गया। आँगन लोगों से भर गया। एक-एक करके राजकर्म्मचारी आने लगे। दिन चढ़ते-चढ़ते प्रतीहाररक्षी सेना का एक दल तोरण पर आ पहुँचा और रात के प्रतीहार अपने-अपने घर गए। तरला को अब भीतर जाने की आज्ञा मिल गई। तीसरे तोरण के भीतर जाकर नए और पुराने प्रासाद पड़ते थे। पश्चिम की ओर तो पुराना प्रासाद था जो संस्कार के अभाव से जीर्ण हो रहा था, चारों ओर घास पात से ढक रहा था। उत्तर ओर गंगा के तट पर नया प्रासाद था। नए प्रासाद के अंतःपुर के द्वार पर जाकर तरला के जी में जी आया, उसका उद्वेग दूर हुआ। यहाँ से अब कोई वसुमित्र को पकड़कर नहीं ले जा सकता। वह निश्चिंत बैठकर सम्राट् का आसरा देखने लगी।

तृतीत तोरण के बाहर का आँगन अब लोगों से खचाखच भर गया। नए और पुराने प्रासाद की निद्रा अभी नहीं टूटी थी। जो दो एक आदमी आते जाते दिखाई भी देते थे वे बहुत धीरे-धीरे सँभाल-सँभालकर पैर रखते थे। तरला बैठी बैठी बहुत सी बातें सोच रही थी। सम्राट् के सामने क्या कह कर शरण माँगूँगी, यही अपने मन में बैठा रही थी। यदि कहीं सम्राट् ने आश्रय न दिया तो फिर क्या होगा? वसुमित्र को लेकर मैं कहाँ जाऊँगी? सेठ की बेटी से क्या कहूँगी?

इन्हीं सब बातों की चिंता से वह अधीर हो रही थी। रात भर की वह जागी हुई थी, इससे बीच बीच में उसे झपकी भी आ जाती थी। एक-बार झपकी लेकर जो उसने सिर उठाया तो देखा कि पुराने प्रासाद के सामने कुछ दूर पर लंबे डील का वृद्ध पुरुष इधर उधर टहल रहा है। उसने घबराकर वसुमित्र से पूछा "सम्राट् निकले क्या ?" वसुमित्र ने कहा "अभी तो नहीं।" तरला ने फिर पूछा "तो वह टहल कौन रहा है ?" वसुमित्र ने कहा "मैं नहीं जानता।"

तरला अब चुपचाप बैठी न रह सकी। वह उठकर धीरे धीरे उस दीर्घकाय वृद्ध पुरुष की ओर बढ़ी और उसने दूर से उसे प्रणाम किया। वृद्ध ने पूछा "तुम कौन हो ? क्या चाहती हो ?" तरला सचमुच रो पड़ी और सिसकती सिसकती बोली "धर्म्मावतार ! आप कौन हैं, यह तो मैं नहीं जानती। पर यह देखती हूँ कि आप पुरुष हैं और निस्संदेह कोई ऊँचे पदाधिकारी हैं। मैं बड़ी विपत्ति में पड़कर सम्राट् की शरण में आई हूँ। सम्राट् यदि रक्षा न करेंगे तो किसी प्रकार रक्षा नहीं हो सकती। मैं इस नगर के एक सेठ की दासी हूँ। मेरे सेठ की लड़की के साथ सेठ चारुमित्र के एकमात्र पुत्र वसुमित्र के विवाह की बातचीत थी। चारुमित्र बौद्ध हैं, इससे वे यह संबंध नहीं होने देना चाहते थे। मेरे सेठ वैष्णव हैं। चारुमित्र ने द्वेष के वशीभूत होकर और बौद्ध भिक्खुओं की लंबी चौड़ी बातों में आकर अपने एकमात्र पुत्र को बलि चढ़ा दिया। उन्होंने जन्म भर की संचित सारी संपत्ति बौद्ध संघ को दान करने का संकल्प करके अपने पुत्र को भिक्खु हो जाने के लिए विवश किया, क्योंकि भिक्खु हो जाने पर फिर संपत्ति पर अधिकार नहीं रह जाता। वसुमित्र के वियोग में अपने सेठ की कन्या को प्राण देते देख मैं उनकी खोज में निकली। नगर के बाहर एक बौद्ध मठ में वसुमित्र का पता पाकर मैं कल रात को उन्हें वहाँ से बड़े बड़े कौशल से निकाल लाई। पर अब कहीं शरण ढूँढ़ती हूँ तो नहीं पाती हूँ। मैं इस

समय सम्राट् के सामने खड़ी हूँ या और किसी राजपुरुष के, यह नहीं जानती; पर इतना श्रीमान् के मुखारबिंद को देख समझ रही हूँ कि श्रीमान् दयामायाशून्य नहीं हैं, अपने चरण में स्थान देकर तीन तीन जीवों की रक्षा करेंगे। दिन में जहाँ कहीं भिक्खु लोग हम दोनों को देख पावेंगे, मठ में पकड़ ले जायँगे और मार डालेंगे। नगर में अब भी बौद्धों की प्रधानता है ऐसा कोई नहीं है जो हम लोगों को भिक्खुओं के हाथ से बचा सके।" यह कहकर तरला रोने लगी और उसने उस पुरुष के दोनों पैर पकड़ लिए। उन्होंने उसे आश्वासन देकर कहा "कुछ डर नहीं है, सेठ का लड़का कहाँ है?" तरला ने हाथ उठाकर वसुमित्र की ओर दिखाया। उस पुरुष ने उसे निकट बुलाया। वसुमित्र ने सामने आकर झुककर प्रणाम किया। वृद्ध पुरुष ने तरला से पूछा "तुमने इन्हें किस प्रकार संघाराम के बाहर निकाला।" तरला ज्यों ही उत्तर देने को थी कि किसी ने पीछे से पुकारा "आर्य्य! पिता जी आपको स्मरण कर रहे हैं।" उस दीर्घाकार पुरुष ने पीछे फिरकर देखा कि कुमार शशांक खड़े हैं। कुमार को देख वृद्ध ने पूछा "सम्राट् ने मुझे क्यों स्मरण किया है?"

शशांक—जान पड़ता है, नगरप्राकार के संस्कार के लिए।

दीर्घाकार पुरुष—नगरप्राकार के संस्कार से बढ़कर भारी बात इस समय सामने है। किसी दंडधर को भेज दो।

कुमार का संकेत पाते ही तोरण पर से एक दंडधर आकर सामने खड़ा हो गया। वृद्ध पुरुष ने कहा "सम्राट् की सेवा में जाकर निवेदन करो कि मैं एक काम में फँसा हूँ, थोड़ी देर में आऊँगा। कुमार! सामने जो ये स्त्री और पुरुष खड़े हैं, दोनों तुम्हारी प्रजा हैं। ये दुर्बल हैं, प्रबल के अत्याचार से पीड़ित होकर सम्राट् की शरण में आए हैं"। फिर तरला की ओर फिरकर वे बोले "ये युवराज शशांक हैं। तुमने

जो जो बातें मुझ से कही हैं, सब इनके सामने निवेदन करो"। परिचय पाते ही दोनों ने कुमार को साष्टांग प्रणाम किया और तरला ने जो जो बातें कही थीं, उन्हें वह फिर कुमार के सामने कह गई। वृद्ध पुरुष ने फिर पूछा "तू किस प्रकार सेठ के लड़के को संघाराम से छुड़ा लाई?" तरला ने देशानंद के साथ प्रथम परिचय से लेकर उसके स्त्री वेश-धारण तक की सब बातें एक एक करके कह सुनाई। जिस समय उसने कीर्त्तिधवल की मृत्यु का वृत्तांत कहा, वृद्ध पुरुष का मुँह लाल हो गया और वह चौंककर बोल उठा "क्या कहा? फिर तो कह"। मंदिर में मूर्त्ति के पीछे छिपकर तरला जो वृत्तांत बंधुगुप्त के मुँह से सुन चुकी थी, सब ज्यों का त्यों कह गई। उसकी बात पूरी होने पर वृद्ध पुरुष ने एक लंबी साँस भरकर वसुमित्र से पूछा "जो बात यह कहती है, सत्य है?"

वसुमित्र—सब सत्य है।

वृद्ध पुरुष—तुम लोगों को कोई भय नहीं, भिक्खु तुम लोगों का एक बाल तक बाँका नहीं कर सकते। हमारे साथ आओ, हम तुम्हें आश्रय के स्थान पर पहुँचाए देते हैं।

तरला कृतज्ञता प्रकट करती हुई वृद्ध के चरणों पर लोट पड़ी। वसुमित्र के मुँह से कोई बात न निकल सकी, वह रो पड़ा। वृद्ध ने कुमार की ओर दृष्टि फेरी, देखा तो वे क्रोध के मारे काँप रहे थे, अपने को किसी प्रकार सँभाल नहीं सकते थे, खड़े दाँत पीस रहे थे। वृद्ध पुरुष बोले "कुमार!"

शशांक—आर्य्य!

वृद्ध पुरुष—अपने को सँभालो, कोई बात मुँह से न निकालो।

युवराज जब अपने मन का वेग न रोक सके तब रोने लगे। वृद्ध ने उन्हें अपनी गोद में खींचकर शांत किया और कहा "पुत्र! स्मरण

रहेगा ?" । कुमार ने कहा "जब तक जीऊँगा तब तक स्मरण रहेगा" । वृद्ध पुरुष के पीछे पीछे कुमार, वसुमित्र और तरला अंतःपुर में गए।

बताने की आवश्यकता नहीं कि वृद्ध पुरुष महानायक यशोधवलदेव थे।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

देशानंद की दशा

जिस समय तरला वसुमित्र के मंगल के लिए अंतःपुर के द्वार पर बैठी थी पाटलिपुत्र नगर के वाह्य प्रांत के बौद्ध मंदिर में एक और ही लीला हो रही थी। सबेरे उठकर भिक्खुओं ने देखा कि मंदिर के किवाड़ बंद हैं, बाहर से कुंडी चढ़ी हुई है, और भीतर से न जाने कौन किवाड़ ठेल रहा है। यह अद्भुत व्यापार देख एक एक दो-दो करके धीरे-धीरे सैकड़ों भिक्खु आकर मंदिर के द्वार पर इकट्ठे हो गए। देखते-देखते संघस्थविर और वज्राचार्य्य भी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही प्रणाम करके भिक्खु लोगों ने मार्ग दे दिया। वज्राचार्य ने पूछा "क्या हुआ ?" एक तरुण भिक्खु सामने आकर बोला "प्रभो ! मंदिर का द्वार बाहर से बंद है पर भीतर से न जाने कौन किवाड़ ठेल रहा है।" बंधुगुप्त और शक्रसेन ने किवाड़ के पास खड़े होकर देखा कि सचमुच भीतर से कोई किवाड़ खींच रहा है। शक्रसेन ने आज्ञा दी "ताला तोड़कर किवाड़ खोल लो।" आज्ञा होते ही ताला तोड़कर फेंक

दिया गया। किवाड़ खुले—सब ने विस्मित होकर देखा कि मंदिर के भीतर आचार्य्य देशानंद स्त्रीवेश धारण किए खड़े हैं।

शक्रसेन ने आगे बढ़कर पूछा "देशानंद! यह क्या हुआ?" देशानंद समझे था किवाड़ खुलते ही मैं भाग खड़ा हूँगा, किंतु इतनी भीड़ सामने देख उसे भागने का साहस न हुआ। वह हताश होकर बैठ रहा। उसे चुपचाप देख बंधुगुप्त ने आगे बढ़कर पूछा "क्यों आचार्य्य! कुछ बोलते क्यों नहीं? यह वेश तुम कहाँ से लाए?" देशानंद को फिर भी चुप देख शक्रसेन पुकारने लगे देशानंद, ओ देशानंद!" देशानंद ने वस्त्र से सिर ढाँक स्त्री का सा महीन स्वर बनाकर कहा मैं तरला हूँ।" इस बात पर क्रुद्ध होकर शक्रसेन ने सिर का वस्त्र हटा दिया और कहा "तरला तेरी कौन है?" देशानंद रो पड़ा और बोला "तरला ने मेरा सर्वनाश किया।" इस पर शक्रसेन और भी क्रुद्ध होकर पूछने लगा "तरला कौन?"

देशा०—"तरला मेरी—मेरी—"

शक्र०—तुम्हारी कौन है, यही तो पूछता हूँ।

देशा—तरला मेरा सर्वस्व है।

इतने में पीछे से कोई बोल उठा "प्रभो! जिनानंद कल रात को आचार्य्य के साथ बाहर गया, और फिर लौट कर संघाराम में नहीं आया।" बंधुगुप्त घबराकर बोले "देखो तो जिनानंद मंदिर के भीतर तो नहीं है।" कई भिक्खु जिनानंद को ढूँढ़ने मंदिर के भीतर घुस पड़े और एक एक कोना ढूँढ़ डाला। अंत में सबने आकर कहा कि नए भिक्खु जिनानंद का कहीं पता नहीं है। रोष और क्षोभ से संघस्थविर का मुँह लाल हो गया। वे देशानंद का गला पकड़ कर पूछने लगे "जिनानंद को कहाँ रख छोड़ा है, बोल, नहीं तो अभी तेरे प्राण लेता हूँ"। देशानंद डर के मारे रोने लगा। यह देख वज्राचार्य्य ने संघस्थविर का

हाथ थाम लिया और कहा "संघस्थविर! तुम भी पागल हुए हो? इस प्रकार भय दिखाने से कहीं किसी बात का पता लग सकता है?" बंधुगुप्त कुछ ठंढे पड़कर पीछे हट गए। शक्रसेन ने भिक्खुओं को संबोधन करके कहा "तुम लोग इसे पकड़ कर संघाराम में ले चलो, हम लोग पीछे पीछे आते हैं"। भिक्खु लोग स्त्रीवेशधारी देशानंद को लिए हँसीठट्ठा करते मंदिर के बाहर निकले। केवल शक्रसेन और बंधुगुप्त खड़े रह गए।

सबके चले जाने पर बंधुगुप्त ने कहा "वज्राचार्य्य! बात क्या है कुछ समझे? जिनानंद क्या सचमुच भाग गया? कितने कितने उपायों से चारुमित्र को वश में करके उसके पुत्र को संघ में लिया था, वह सब परिश्रम क्या व्यर्थ जायगा?"

शक्र०—क्या हुआ कुछ भी समझ में नहीं आता। पर सेठ वसुमित्र भाग कर हम लोगों के हाथ से जा कहाँ सकता है? जो कोई सुनेगा कि उसने प्रव्रज्या ग्रहण की है उसे अपने यहाँ ठहरने न देगा। पर देशानंद ने क्या किया, किसने उसे स्त्री का वेश धारण कराके मंदिर के भीतर बंद कर दिया यह सब कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। देशानंद पर इस समय बिगड़ना मत, नहीं तो उससे किसी बात का पता न चलेगा। जिनानंद किस प्रकार भागा, देशानंद को किसने स्त्रीवेश बनाया, तरला उसकी कौन होती है, इन सब बातों का पता उसी से लेना चाहिए।

बंधु०—वज्राचार्य्य! कल रात को जिस समय हम लोग यहाँ आए थे मंदिर का द्वार खुला पड़ा था और देशानंद मंदिर के भीतर नहीं था।

शक्र०—ठीक है। तुम जिस समय कीर्त्तिधवल की हत्या का वृत्तांत कह रहे थे उस समय मंदिर में कोई नहीं था। मंदिर का द्वार भी खुला था।

बंधु—तो क्या कोई छिपकर हम लोगों की बातें सुन रहा था ?

शक्र०—ऐसा तो नहीं जान पड़ता।

बंधु०—वज्राचार्य्य ! अब तो मुझे बड़ा भय हो रहा है, अब मैं यहाँ नहीं ठहर सकता। तुम यहाँ रहकर देशानंद की बातों का पता लगाओ, मैं तो अब इसी समय बंगदेश का रास्ता लेता हूँ। यशोधवल इस समय नगर में है, यदि कहीं किसी ने हम लोगों की बातें सुनकर उससे कह दी तो फिर रक्षा का कोई उपाय नहीं।

शक्र०—बात तो बहुत कुछ ठीक कहते हो। यहाँ से हम लोगों का चला जाना ही ठीक है। यदि किसी प्रकार यशोधवल को अपने पुत्र की हत्या की बात विदित हो गई तो फिर वह बिना प्रतिशोध लिए कभी नहीं रह सकता। पर तुम्हारे बंगदेश चले जाने से नहीं बनेगा, सब काम बिगड़ जायगा। चलो हम लोग देशानंद को लेकर कपोतिक संघाराम में चले चलें। वहाँ बुद्धघोष हम लोगों की पूरी रक्षा कर सकेंगे।

बंधु०—तो फिर चलो, अभी चलो।

शक्र०—मंदिर और संघाराम का कुछ प्रबंध करता चलूँ।

बंधु—भगवान् का मंदिर है, वे अपनी व्यवस्था आप कर लेंगे। तुम इसकी चिंता छोड़ो, बस यहाँ से चल ही दो।

शक्र०—देखता हूँ कि तुम डर के मारे बावले हो रहे हो।

बंधु०—जिस समय मेरा सिर काट कर नगर तोरण के सामने लोहे की छड़ पर टाँगा जायगा उस समय बुद्ध, धर्म और संघ कोई रक्षा करने नहीं जायगा।

शक्र०—अच्छा तो चलो, संघाराम से देशानंद को साथ ले लें।

दोनों मंदिर से निकल कर संघाराम की ओर चले। वहाँ जाकर देखा कि भिक्खुओं ने देशानंद का स्त्रीवेश उतार कर उसे एक स्थान पर बिठा रखा है। शक्रसेन ने देशानंद से कहा "आचार्य्य ! तुम्हें

कपोतिक संघाराम चलना होगा।" देशानंद ने रोते-रोते पूछा "क्यों ?" वज्राचार्य्य ने कहा "कोई डर की बात नहीं है। महास्थविर ने भोजन का निमंत्रण दिया है।" देशानंद को विश्वास न पड़ा, वह छोटे बच्चे के समान चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। उसने मन में समझ लिया कि मेरी हत्या करने के लिए ही मुझे कपोतिक संघाराम ले जा रहे हैं। शक्रसेन ने एक भिक्खु को बुला कर कहा "जिनेंद्रबुद्धि ! तुम यहाँ मंदिर और संघाराम की रखवाली के लिए रहो, हम लोग एक विशेष कार्य्य से कपोतिक संघाराम जा रहे हैं। तुम दो भिक्खुओं के साथ देशानंद को तुरंत वहाँ भेज दो।" बंधुगुप्त और शक्रसेन संघाराम के बाहर निकले। भिक्खु लोग आचार्य्य के साथ बुरे-बुरे शब्दों में हँसी-ठट्ठा करने लगे। उसने किसी की बात का कोई उत्तर न दिया, चुपचाप रोने लगा और मन ही मन कहने लगा "तरला ! तेरे मन में यही था ?"

आधी घड़ी भी न बीती थी कि सहस्र से अधिक अश्वारोहियों ने आकर मंदिर और संघाराम को घेर लिया। वसुमित्र को साथ लेकर महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त और स्वयं यशोधवलदेव बंधुगुप्त को ढूँढ़ने लगे। जब बंधुगुप्त कहीं न मिला तब वे लोग भिक्खुओं से पूछने लगे; पर किसी ने ठीक ठीक उत्तर न दिया। उसी समय वसुमित्र देशानंद को देख बोल उठा "प्रभो ! इस व्यक्ति ने मेरे छुड़ाने में सहायता दी थी, इससे पूछने से कुछ पता चल सकता है।" देशानंद को ज्यों ही छोड़ देने का लोभ दिखाया गया उसने तुरंत कह दिया कि बंधुगुप्त कपोतिक संघाराम को गए हैं। क्षण काल का भी विलंब न कर यशोधवलदेव अश्वारोही सेना लेकर कपोतिक संघाराम की ओर दौड़ पड़े। हरिगुप्त की आज्ञा से दो सवार देशानंद और जिनेंद्रबुद्धि को बाँधकर प्रासाद की ओर ले चले।

बाईसवाँ परिच्छेद

बंधुगुप्त की खोज

तरला के मुँह से कीर्तिधवलदेव की हत्या का व्योरा सुनकर यशोधवलदेव आपे से बाहर हो गये थे। बहुत कष्ट से अपने को किसी प्रकार सँभाल कर वे वसुमित्र और तरला को प्रासाद के भीतर सम्राट् के पास ले गए। वृद्ध सम्राट् हत्या का पूरा व्योरा सुनकर बालकों की तरह रोने लगे। महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने और यशोधवलदेव ने मिलकर किसी प्रकार सम्राट् को शांत किया। उसके पीछे हरिगुप्त बोले "जहाँ तक मैं समझता हूँ बंधुगुप्त को अभी तक यह पता न होगा कि कीत्तिधवल की हत्या की बात फैल गई है। हम लोग यदि इसी समय अश्वारोही सेना लेकर पुराने मंदिर और संघाराम को घेरें तो वह अवश्य पकड़ा जायगा। वह यदि भागा भी होगा तो कितनी दूर गया होगा, हम लोग उसे पकड़ लेंगे"। सम्राट् ने बड़े उत्साह के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और कहा "तुम लोग सेठ के लड़के को साथ लेकर अभी जाओ, इसके द्वारा सब स्थानों का ठीक ठीक पता लगेगा"। यशोधवलदेव ने वसुमित्र से पूछा "तुम घोड़े पर चढ़ सकते हो?"

वसु०—हाँ, मुझे घोड़े पर चढ़ने का अभ्यास है।

यशो०—संघाराम में फिर लौट कर जाने में तुम डरोगे तो नहीं?

वसु०—प्रभो! मैं अकेला, निरस्त्र, असहाय और निरुपाय हो कर तो संघाराम में रहता ही था, अब महाराजाधिराज की छत्र छाया के नीचे मुझे किस बात का भय है?

यशो०—तुम शस्त्र चला सकते हो ?

वसु०—मेरी परीक्षा कर ली जाय।

यशो०—बहुत अच्छी बात है, आओ, तुम्हें मैं अस्त्र देता हूँ।

वसुमित्र और यशोधवल प्रासाद के भीतर गए, तरला भय से व्याकुल हो कर उसी स्थान पर खड़ी रही। उसकी आँखों में आँसू देख सम्राट् ने उसे धीरज बँधाने के लिए कहा "कोई डर की बात नहीं है। सेठ के लड़के के साथ एक सहस्र अश्वारोही रहेंगे, कोई उसे बल से पकड़ नहीं सकता"। फिर विनयसेन से उन्होंने कहा "इसे ले जाकर अंतःपुर में महादेवी के यहाँ कर आओ"। इतना धीरज बँधाने पर भी तरला के जी का खटका न मिटा। वह चुपचाप विनयसेन के साथ अंतःपुर के भीतर गई।

दूसरे तोरण के बाहर सुसज्जित शरीररक्षी अश्वारोही सेना आसरे में खड़ी थी। फाटक के सामने ही तीन अश्वपाल तीन सजे सजाए घोड़े लिए खड़े थे। बात क्या है कुछ न समझकर बहुत से लोग फाटक के बाहर खड़े आपस में बातचीत कर रहे थे। इतने ही में यशोधवल युवराज शशांक और वसुमित्र को लिये फाटक के बाहर आए। उन्हें देख सैनिकों ने सामरिक प्रथा के अनुसार अभिवादन किया। तीनों पुरुष अश्वपालों से घोड़े लेकर उनपर सवार होकर तीसरे तोरणसे होकर निकले। सहस्र अश्वारोही सेना भी उनके साथ-साथ चली। तोरण पर इकट्ठे लोगों ने चकित हो देखा कि महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त स्वयं सेना का परिचालन कर रहे हैं हैं। उन लोगों की समझ में कुछ भी नहीं आया कि सेना कहाँ जा रही है। वे खड़े ताकते रह गए!

अश्वारोही सेना लिए योशोधवलदेव ने उस पुराने बौद्ध मंदिर में जाकर क्या किया यह पहले कहा जा चुका है। संघाराम में वसुमित्र को किसी ने नहीं पहचाना। बात यह थी कि प्रासाद से प्रस्थान करते

समय यशोधवल ने उसे सिर से पैर तक लौहवर्म्म से मढ़ दिया था। मंदिर में बंधुगुप्त को न पाकर युवराज और यशोधवल सेना सहित कपोतिक संघाराम की ओर चले। मंदिर से दो कोस पर, नगर के बीचो-बीच, कपोतिक संघाराम था। हरिगुप्त की आज्ञा से सेनादल ने बड़े वेग से नगर की ओर घोड़े फेंके घोड़ों की टापसे उठी हुई धूल से नगर तटस्थ राज-पथपर अँधेरा सा छा गया।

संघाराम से निकलकर शक्रसेन और बंधुगुप्त बहुत दूर न जा पाये थे कि वे एकबारगी चौंक पड़े। शक्रसेन ने कहा "बंधुगुप्त! पीछे बहुत से घोड़ों की टाप-सी सुनाई देती है।" बंधुगुप्त ठिठककर खड़े हो गए। शब्द सुनकर दोनों ने जाना कि बहुत से अश्वारोही वेग से उनकी ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। बंधुगुप्त ने कहा "हाँ! यही बात है?"

शक्रसेन—तो अब छिप रहना ही ठीक है। वसुमित्र ने भागकर क्या अनर्थ किया देखते हो न।

बंधु—वज्राचार्य्य! जान पड़ता है यशोधवलदेव को मेरा पता लग गया है और वह मुझे पकड़ने आ रहा है। अब क्या होगा?

शक्र०—भाई, घबराओ मत। बड़ी भारी विपत्ति है। धैर्य्य छोड़ने से सचमुच मारे जाओगे, और तुम्हारे साथ मुझे भी मरना होगा। वह जो सामने ताड़ों का जंगल सा दिखाई पड़ता है चलो उसी में छिप रहें। बढ़ो, जल्दी बढ़ो।

उस स्थान से थोड़ी दूर पर एक छोटे ताल के किनारे से होता हुआ राज-पथ चला गया था। ताल के किनारे छोटे बड़े बहुत से ताड़ के पेड़ थे। दोनों दौड़ते हुए जाकर उन ताड़ों की ओट में छिप रहे। देखते-देखते सवार पास पहुँच गए। सबके आगे सिंधुदेश के एक काले घोड़े पर युवराज शशांक थे। उनका सारा शरीर स्वर्ण खचित लौहवर्म्म से आच्छादित था; दमकते हुए रुपहले शिरस्त्राण के बाहर इधर उधर

सुनहरे घुँघराले बाल लहरा रहे थे। सूर्य्य के प्रकाश में लौहवर्म्म आग की लपट के समान झलझला रहा था। उनके पीछे महानायक यशोधवलदेव थे, वे भी सिर से पैर तक लौहवर्म्म से ढके थे, पर धवलवंश का चिह्न ऊपर दिखाई देता था। उसे देखते ही बंधुगुप्त काँप उठे। उन्होंने धीरे से पूछा "जान पड़ता है यही यशोधवल है"। शक्रसेन ने कहा "हाँ"। यशोधवल के पीछे दो और वर्म्मावृत अश्वारोही थे जिन्हें बंधुगुप्त और शक्रसेन न पहचान सके। ताल के किनारे पहुँचने पर उनमें से एक का शिरस्त्राण हट गया। पेड़ की आड़ से बंधुगुप्त और शक्रसेन ने भय और विस्मय के साथ देखा कि वह श्रेष्ठिपुत्र था। क्रमशः पाँच पाँच सवारों की अनेक पंक्तियाँ निकल गईं। वसुमित्र ने घोड़े को थोड़ा रोक टोप पहना और फिर वेग से घोड़ा छोड़ता हुआ वह सेनादल में जा मिला। पेड़ों की झुरमुट में बैठे बंधुगुप्त बोले "वज्राचार्य्य! अब क्या उपाय हो?"

शक्र०—तुम तो इसी समय वंगदेश की ओर चल दो। पाटलिपुत्र में रहना अब तुम्हारे लिए अच्छा नहीं।

बंधु०—तुम क्या करोगे?

शक्र०—मैं यहीं नगर में रहूँगा।

बंधु०—तो फिर मैं भी यहीं मरूगा।

शक्र०—क्यों?

बंधु०—मैं अकेला अब कहीं नहीं जा सकता।

शक्रसेन ने बंधुगुप्त के मुँह की ओर देखा। वह एकबारगी पीला पड़ गया था। उन्होंने यह निश्चय करके कि अब इसे समझाना बुझाना व्यर्थ है कहा "तो फिर चलो, इसी समय चल दें।" दोनों ताल वन से निकलकर गंगा के किनारे किनारे चले।

सवेरे ही से संघाराम के आँगन में बैठे महास्थविर बुद्धघोष गुप्तचरों से संवाद सुन रहे थे। गुप्तचर सब के सब बौद्ध भिक्खु थे। एक आचार्य्य महास्थविर के सामने खड़े होकर उन सबका परिचय दे रहे थे और महास्थविर चुपचाप ध्यान लगाए सब बातें सुनते जाते थे। एक गुप्तचर कह रहा था 'उस दिन मध्याह्न में सम्राट् गंगा किनारे घाट पर बैठे थे, इसी बीच में यशोधवलदेव ने आकर राज्यकार्य का सारा भार अपने उपर लेने की इच्छा प्रकट की। मैं एक पेड़ की आड़ में छिपा सब बातें सुनता रहा'। गुप्तचर इसके आगे कुछ और कहा ही चाहता था कि संघाराम के तोरण पर से एक भिक्खु घबराया हुआ आया और कहने लगा "प्रभो! बदुत से आश्वारोही वेग से संघाराम की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं।" सुनते ही महास्थविर ने कहा "संघाराम का फाटक तुरंत बंद करो।" भिक्खु आज्ञा पाकर तुरंत फाटक पर लौट गया। महास्थविर उठकर फाटक की ओर चले। कपोतिक संघाराम एक प्राचीन गढ़ी के तुल्य था। लोग कहते थे कि वह महाराज अशोक का बनवाया हुआ था। नीचे से ऊपर तक वह पत्थर का बना था। उसके चारों ओर बहुत ही दृढ़ पत्थर का ऊँचा परकोटा था। इस वृहत् संघाराम के भीतर पाँच सहस्र से ऊपर भिक्खु सुख से रह सकते थे और उस समय भी एक हजार से अधिक भिक्खु उसमें निवास करते थे। संघाराम के चारों ओर चार फाटक (तोरण) थे जो सदा खुले रहते थे। विप्लव के समय कई बार नागरिकों ने संघाराम को तोड़ा था इससे लोहे के असंख्य कीलों से जड़े हुए भारी भारी किवाड़ तोरणों पर लगा दिए गए थे। जब तक कोई भारी आशंका नहीं होती थी महास्थविर किवाड़ों को बंद करने की आज्ञा नहीं देते थे, क्योंकि नगरवासी बराबर संघाराम में दर्शन के लिए आते जाते रहते थे। महास्थविर ने फाटक पर जाकर देखा कि असंख्य सशस्त्र अश्वारोही संघाराम को चारों ओर से घेरे हुए हैं। तोरण के सामने खड़े तीन वर्म्मधारी पुरुष

उनकी व्यवस्था कर रहे हैं। एक अश्वारोही उनके घोड़ों को थामे कुछ दूर पर खड़ा है।

तोरण के ऊपर चढ़कर महास्थविर ने उन तीनों वर्म्मधारी पुरुषों को संबोधन करके कहा "तुम लोग कौन हो? किस लिए देवता का अपमान कर रहे हो? किसकी आज्ञा से इतने अधिक अस्त्रधारी अश्वारोही लेकर शांतिसेवी निरीह भिक्खुओं के आश्रम को आ घेरा है?" वर्म्मधारी पुरुषों में से एक ने उनकी ओर अच्छी तरह देखा और कहा "तुम कौन हो?" महास्थविर ने उत्तर दिया। "भगवान् बुद्ध के आदेश से मैं इस संघाराम का प्रधान हूँ, मेरा नाम बुद्धघोष है।" वर्म्मावृत पुरुष हँसकर बोला "अच्छा, तब तो आप मुझे पहचान सकते हैं। मेरा नाम यशोधवल है। मैं रोहिताश्व गढ़ का हूँ। मैं इस साम्राज्य का महानायक हूँ। इस समय अपने पुत्र घातक की खोज में यहाँ आया हूँ। फाटक खोलने की आज्ञा दीजिए। हम लोग संघाराम में नरघाती बंधुगुप्त को ढूँढ़ेंगे।" कोठे के ऊपर रहने पर भी यशोधवलदेव का नाम सुनते ही महास्थविर डर के मारे दहल गए, पर अपने को सँभालकर धीरे-धीरे बोले "महानायक! पाटलिपुत्र में ऐसा कौन होगा जिसने यशोधवल की विमल कीर्त्ति न सुनी हो? आप भ्रम में पड़कर ही इस कपोतिक संघाराम में हत्यारे का पता लगाने आए हैं। संघाराम संसारत्यागी निरीह भिक्खुओं का आश्रम है। यहाँ कभी नरघाती पिशाच को ठिकाना मिल सकता है? पुत्रहंता कहकर आपने जिनका नाम लिया है वे उत्तरापथ के बौद्ध-संघ के एक स्थविर हैं। आर्यावर्त्त में बंधुगुप्त का नाम कौन नहीं जानता? भला, ऐसा बोधिसत्वपाद ऋषिकल्प पुरुष कभी नरघाती हो सकते हैं? आप कहते क्या हैं?"

यशोधवल—महास्थविर! आप मेरे इन पके बालों पर विश्वास कीजिए। बिना विशेष प्रमाण पाए यशोधवल देवस्थान में आकर उत्पात

करने का साहस कभी नहीं कर सकता। बंधुगुप्त यदि संघाराम में कहीं छिपा हो तो आप तुरंत उसे हम लोगों के हाथ में दीजिए, हम लोग उसे सम्राट् के सामने ले जायँगे।

बुद्धघोष—संघ स्थविर बंधुगुप्त ने आज इस संघाराम में पैर ही नहीं रखा। आप मेरी बात का विश्वास कीजिए। यदि उन्हीं की खोज में आप आए हों, और कोई बात न हो, तो जाकर कहीं और देखिए।

यशो०—बंधुगुप्त यदि संघाराम में नहीं है तो आपने फाटक क्यों बंद कराए ?

बुद्ध०—अस्त्रधारी अश्वारोहियों के भय से।

यशो०—हम लोग सम्राट् की आज्ञा से बंधुगुप्त का पता लगाने के लिए संघाराम में आए हैं। हम लोगों को भीतर जाने देने में आपको कुछ आपत्ति है ?

बुद्ध०—रत्ती भर भी नहीं।

यशो०—तो फिर द्वार खोलने की आज्ञा दीजिए।

महास्थविर की आज्ञा से द्वार खोल दिया गया। पाँच सौ सवार लेकर यशोधवलदेव, युवराज शशांक और हरिगुप्त ने संघ के भीतर प्रवेश किया, शेष पाँच सौ सवार संघाराम को घेरे रहे। एक-एक कोना ढूँढ़ने पर भी जब बंधु गुप्त न मिला तब हताश होकर यशोधवलदेव प्रासाद को लौट गए।

उस समय गंगा की बीच धारा में एक छोटी सी नाव बड़े वेग से पूरब की ओर जा रही थी। उसमें बैठे-बैठे शक्रसेन बंधु गुप्त से कह रहे थे "भाई! न जाने किस जन्म का पुण्य उदय हुआ कि आज रक्षा हुई।"

पहला परिच्छेद

स्कंदगुप्त का गीत

पूर्वोक्त घटना हुए तीन वर्ष हो गए। इन तीन वर्षों के बीच मगध राज्य और पाटलिपुत्र में अनेक परिवर्त्तन हुए हैं। प्राचीन नगरी की शोभा मानो फिर लौट आई है। नगरप्राकार का पूर्ण संस्कार हो गया है, पुराने प्रासाद का जीर्णोद्धार हो गया है, राज्यकार्य्य सुव्यवस्थित रूप से चल रहा है, मगध साम्राज्य में फिर से नई शक्ति सी आ गई है, सीमा पर के सब दुर्ग सुदृढ़ और सुरक्षित हैं, साम्राज्य के दारिद्रग्रस्त होने से जो सेना पहले विशृंखल हो रही थी वह अब पूर्ण सुशिक्षित और सुसज्जित हो गई है, उसे अब वेतन के लिए या अन्न के लिए गौल्मिकों का घर नहीं घेरना पड़ता। घोर नींद में सोए हुए मगधवासी अब जाग गए हैं। उनके मन में अब आशा के अंकुर दिखाई पड़ने लगे हैं। जान पड़ता है चंद्रगुप्त और समुद्रगुप्त का समय फिर आया चाहता है, फिर पाटलिपुत्र के नागरिकों की जयध्वनि गांधार के तुषारधवल गिरिशृंगों के बीच सुनाई देगी, फिर मगध का गरुड़ध्वज वक्षु* के तट पर दिखाई देगा, फिर केरल देश तक के शत्रुओं की स्त्रियाँ अकाल वैधव्य के संताप से कोसेंगी। इस काया-पलट के प्रत्यक्ष कारण हैं युवराज शशांक और परोक्ष कारण हैं वृद्ध महानायक यशोधवलदेव।

---

* आक्सस नदी या सर दरिया जो मध्य एशिया में है।

यशोधवल फिर लौटकर रोहिताश्वगढ़ नहीं गए। वे तब से अपनी पौत्री को लेकर बराबर प्रासाद ही में रहते हैं। सम्राट् महासेनगुप्त अब बहुत वृद्ध हो गए हैं, किंतु अब तक वे दिन में एक बार संध्या के समय सभामंडप में आ जाते हैं। सभा का सारा कार्य्य युवराज शशांक और महानायक यशोधवलदेव करते हैं। शशांक के संगी साथी अब ऊँचे ऊँचे पदों पर हैं। नरसिंहदत्त इस समय प्रधान सेनानायकों में हैं। माधवर्म्मा नौसेना के अध्यक्ष हुए हैं और अनंतवर्म्मा युवराज के शरीररक्षी हैं। युवराज किशोरावस्था पारकर अब युवावस्था को प्राप्त हुए हैं। कैशोर की चपलता अब उनमें नहीं है, अब युवराज धीर, शांत और चिंताशील हैं।

यशोधवलदेव के तीनों प्रस्ताव तो कार्य्यरूप में परिणत हो चुके— दुर्ग सुदृढ़ हो गए, सेना सुशिक्षित हो गई और राजस्वसंग्रह की व्यवस्था हो गई। अब बंगदेश पर अधिकार करने का आयोजन हो रहा है। किस प्रकार उक्त तीनों बातों की व्यवस्था हुई इसे बहुत दिनों तक राजकर्मचारी भी न समझ सके। वृद्ध महानायक ने अपने और युवराज के हस्ताक्षर से एक सूचनापत्र राज्य के सब धनिकों, श्रेष्ठियों और भूस्वामियों के पास भेजकर उन्हें साम्राज्य की सहायता के लिए उत्साहित किया। साम्राज्य की रक्षा से अपनी रक्षा समझ सब ने प्रसन्न चित्त से साम्राज्य को ऋण दिया। इस प्रकार बहुत सा धन एकत्र हो गया। उसी धन से उक्त तीन प्रस्ताव कार्य्यरूप में परिणत हुए। एक बड़ी सेना खड़ी करके यशोधवल ने चरणाद्रिगढ़ पर फिर से अधिकार किया। मंडला और गौड़ पर साम्राज्य की सेना ने अधिकार स्थापित किया। सरयू नदी से लेकर करतोया नदी तक के विस्तृत प्रदेश के सामंत सिर झुकाकर राज-कर भेजने लगे। सब सीमाएँ सुरक्षित हो गई थीं। इससे तीन ही वर्ष में यशोधवलदेव ने सारा ऋण चुका दिया। पर बड़े-बड़े नदों से घिरा हुआ बंगदेश अब तक अधीन नहीं हुआ था। बौद्धा-

चार्य्यों की कुमंत्रणा में पड़कर वंगदेशवासियों ने यशोधवलदेव के भेजे हुए संदेसों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। पूर्व में कामरूप के राजा और पश्चिम में स्थाण्वीश्वर के राजा चकित नेत्रों से प्राचीन साम्राज्य में फिर से इस नई शक्ति के संचार को देख रहे थे। उन्हीं के संकेत से उद्धत वंगवासी राजस्व देना बंद किए हुए थे। इसीसे यशोधवलदेव वंगदेश पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे थे।

संध्या के पहले गंगा किनारे घाट की सीढ़ी पर बैठे यशोधवलदेव अनेक बातों की चिंता कर रहे थे, कुछ दूर पर बालू के बीच चित्रा और लतिका घूम रही थीं। शशांक नीचे की सीढ़ी पर खड़े गंगा के जल पर पड़ती हुई डूबते सूर्य्य की लाल और सुनहरी किरनों की छटा देख रहे थे। घाट पर दो वृद्ध बैठे थे—एक तो लल्ल था, दूसरा यदुभट्ट। यशो-धवल कहने लगे "भट्ट! बहुत दिनों से तुम्हारा गीत नहीं सुना। युवा-वस्था में युद्धयात्रा के समय तुम्हारा मांगलिक गीत सुनकर प्रासाद से प्रस्थान करता था। अब तक मेरे कानों में तुम्हारा वह मधुर स्वर गूँज रहा है। भट्ट! आज पचास वर्ष पर एक बार फिर गीत सुनाओ।" वृद्ध भट्ट का चमड़ा झूल गया था, दाँत गिर गए थे और बाल सन हो गए थे। वह आँखों में आँसू भरकर बोला "प्रभो! भट्टचारणों का अब वह दिन नहीं रहा। साम्राज्य में अब तो भट्टचारण कहीं ढूँढ़े नहीं मिलते। नागरिक अब मंगल गीत भूल गए। अब तो कवि लोग विधु-वदनी नायिकाओं के चंचल नयनों का वर्णन करके उनका मनोरंजन करते हैं। अब युद्ध के गीत उन्हें नहीं अच्छे लगते। जब मेरे गाने के दिन थे तब तो मैं गाने ही नहीं पाता था। अब वे दिन चले गए; न तो शरीर में अब वह बल रहा, न अब वह गला है। अब मैं क्या गाऊँ?"

यशो०—भट्ट! मैं भी तो अपनी युवावस्था कभी का खो चुका हूँ। तरुण कंठ अब मुझे अच्छा न लगेगा। मैं भी अपने जीवन के अस्ता-

चल के निकट आ चुका हूँ। अहा! यौवन की स्मृति क्या मधुर होती है? युवावस्था के गीत एक बार फिर गाओ। गला अब वैसा नहीं है तो क्या हुआ? अमरकीर्त्ति तो अमर ही है, जब तक स्मृति रहेगी तब तक अमर रहेगी।

यदु०—प्रभु, क्या, गाऊँ?

वृद्ध गुनगुनाने लगा। लल्ल के कानों से अब सुनाई नहीं पड़ता था, वह भट्ट के पास सरक आया। सीढ़ी के नीचे से कुमार ने पूछा "यदु दादा! कौन सा गीत गा रहे हो?"

यशो०—शशांक यहाँ आओ। भट्ट स्कंदगुप्त के गीत गावेंगे।

युवराज इतना सुनते ही सीढ़ियों पर लंबे-लंबे डग रखते हुए भट्ट के पास आ बैठे। वृद्ध भट्ट बहुत देर तक गुनगुनाता रहा, फिर उसने गाना आरंभ किया। पहले तो गीत का स्वर अस्फुट रहा, फिर धीमा चलता रहा, देखते-देखते घी पाकर उठी हुई लपट के समान वह एक-बारगी गगनस्पर्श करने लगा।

"नागर वीरो! आलस्य छोड़ो, हूण फिर आते हैं। गांधार की पर्वत-माला भेदकर हूणवाहिनी आर्य्यावर्त्त में फिर घुस आई है। नागर वीरो! व्यसन छोड़ो, वर्म्म धारण करो, हूण फिर आते हैं। अब स्कंदगुप्त नहीं हैं, कुमार सदृश पराक्रमी कुमारगुप्त के कुमार अब नहीं हैं जो तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

"दूर गंगाजमुना के संगम पर प्रतिष्ठान दुर्ग में सम्राट् ने तुम्हारे लिए अपना शरीर त्याग किया जिन्होंने वितस्ता के तट पर, शतद्रु के पार, मथुरा के रक्तवर्ण दुर्ग कोट पर ब्रह्मावर्त्त के भीषण युद्ध क्षेत्र में साम्राज्य का मान, ब्राह्मण और देवता का मान, आर्य्यावर्त्त का मान रखा था अब वे भी नहीं हैं। स्कंदगुप्त की सेना भीरु और कायर नहीं थी, कृतघ्न और विश्वासघातिनी नहीं थी जो लौटकर चली आती।

उनके सहचर प्रभु के पास प्राण रहते तक जमे रहे, अपने रक्त से कालिंदी की काली धारा उन्होंने लाल कर दी, वे घर लौटकर नहीं आए। प्रतिष्ठान के भीषण दुर्ग के सामने उन्होंने तोरमाण को रोका था। वे स्कंदगुप्त के चिर सहचर थे, इस जीवन में अंत तक साथ देकर परलोक में भी उन्होंने साथ दिया। हूण आते हैं, नागर वीरो! उठो, कटिबंध कसो, हूण आ रहे हैं।"

"वृद्ध सम्राट् तरुणी के रूप पर मुग्ध होकर जब अपना मंगल, राज्य का मंगल और प्रजा का मंगल भूल रहे थे उस समय आर्य्यावर्त्त की रक्षा किसने की? ब्राह्मणों और श्रमणों, स्त्रियों और बच्चों, मठों और मंदिरों, नगरों और खेतों को किसने बचाया था, जानते हो? बालू की भीत उठाकर किसने महासमुद्र की बढ़ती हुई गति को रोका था? नागर वीरो! जानते हो? कुमार सदृश पराक्रमी स्कंदगुप्त ने। नागर वीरो उठो, आलस्य छोड़ो, हूण आ रहे हैं।

"हूण आ रहे हैं, आत्मरक्षा के लिए कटिबद्ध हो, नहीं तो हूणों की प्रबल धारा में देश डूब जायगा, स्त्री बालक और वृद्ध किसी की रक्षा न होगी। घर का झगड़ा छोड़ो, देवता और ब्राह्मण की रक्षा करो। घर के झगड़े से ही साम्राज्य की यह दशा हुई है। कुमारगुप्त यदि सचेत रहते तो साम्राज्य का ध्वंस न होता। वितस्ता के तट पर यदि सेना रहती तो हूण हार मानकर कुरुवर्ष लौट जाते। कटिबंध कसो, अपना कल्याण सोचो, हूण आ रहे हैं।"

"जिन्होंने शतद्रु के किनारे केवल दस सहस्र सेना लेकर सौ सहस्र को रोका था उनका नाम था स्कंदगुप्त। जिन्होंने केवल एक सहस्र सेना लेकर शौरसेन दुर्ग में लाखों को शिथिल कर दिया था, उनका नाम स्कंदगुप्त था। कोशल में जिसकी पाँच सहस्र सेना का मार्ग हूण-राज न रोक सके उनका नाम स्कंदगुप्त था। नागर वीरो! उठो, अपने नामों को चिरस्मणीय करो, कोष से खड्ग खींचो, हूण आ रहे हैं।"

"आँख उठाकर देखो, सूर्य्य को छिपानेवाले मेघ छँटे दिखाई पड़ते हैं। वृद्ध सम्राट् शरीर छोड़ चुके हैं। अब जिन गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त ने खड्ग धारण किया है उनके हाथ निर्बल नहीं हैं। राजश्री फिर लौटती दिखाई देती है। हूणधारा रुकी जान पड़ती है, ब्रह्मावर्त्त में गंगा की श्वेत शैकतराशि के बीच हूणसेना की श्वेत अस्थिराशि इसका आभास दे रही है, गोपाचल के नीचे नासिकाविहीन हूणों की मुंडमाला इसका आभास दे रही है। उत्तरापथ में अब शांति स्थापित हो गई है, हूण देश से बाहर कर दिए गए हैं, स्कंदगुप्त सिंहासन पर बैठे हैं। हूण फिर आ रहे हैं, उत्तरकुरु की विस्तृत मरुभूमि हूणधारा में मग्न हो गई है, गांधार की पर्वतमाला अब उस धारा को नहीं रोक सकती। हूण फिर आ रहे हैं, कोई भय नहीं, स्कंदगुप्त ने फिर खड्ग उठाया है। उनका नाम सुनकर हूण काँप रहे हैं। पर स्कंदगुप्त रहकर ही क्या करेंगे? उत्तरापथ में विश्वासघात है, आर्य्यावर्त्त में कृतघ्नता है। हूण फिर आ रहे हैं। नागर वीरो! अपनी रक्षा के लिए उठो, देवों और ब्राह्मणों, स्त्रियों और बच्चों, मठों और मंदिरों, नगरों और खेतों की रक्षा करो"।

"विश्वासघात ही के कारण आर्य्यावर्त्त का बहुत दिनों से नाश होता आ रहा है। आँख उठाकर देखो, साम्राज्य का सर्वनाश हो गया; भीरु और कायर पुरगुप्त सिंहासन पर जा बैठा है। हूणों ने प्रतिष्ठान दुर्ग घेर लिया है, सम्राट् सेना सहित दुर्ग के भीतर घिर गए हैं, इस इतने बड़े आर्य्यावर्त्त में ऐसा कोई नहीं है जो उनकी सहायता के लिए जाय, अग्नि की लपट आकाश में उठ रही है, हूणों ने सौराष्ट्र, आनर्त्त, मालव, मत्स्य और मध्यदेश में आग लगा दी है। छोटे से मगध देश का राजसिंहासन पाकर ही पुरुगुप्त संतुष्ट बैठा है। समुद्रगुप्त का विशाल साम्राज्य तिनके के समान बाढ़ में डूब गया। प्रतिष्ठान दुर्ग के भीतर दस सहस्र सेना है; पर दो दिन से अधिक के लिए पीने का जल नहीं है। वृद्ध सम्राट् जल लाने के लिए आप निकल खड़े हुए हैं,

श्वेत बालू की भूमि रक्त से रँग गई है। हूणसेना ने उनपर आक्रमण किया है, अब रक्षा नहीं है। एक भारी वाण सम्राट् की दहनी आँख में आकर लगा है। साम्राज्य की सेना स्वामी की रक्षा के लिए लौट पड़ी है; पर जिन्होंने वितस्ता और शतद्रु के तट पर, शौरसेन, ब्रह्मावर्त्त और आर्य्यावर्त्त में मान रखा था, वे अब लौटने के लिए नहीं है" ।

बुड्ढे का गला भर आया, आँसुओं से उसकी छाती भींग गई। उसके पास बैठा बैठा वृद्ध ल्लह भी चुपचाप आँसू गिरा रहा था। यशोधवल के नेत्र भी गीले थे। सीढ़ी के नीचे चित्रा और लतिका पड़ी रो रही थी। गीत बंद हुआ। आधे दंड तक किसी के मुँह से कोई बात न निकली। पूर्व की ओर अँधेरा छाता जाता था। देखते देखते चारों दिशाएँ अंधकारमय हो चलीं। यशोधवल ने कुमार की ओर दृष्टि फेरी, देखा तो उनका मुखमंडल पीला पड़ गया है, दोनों आँखें डबडबाई हुई हैं। वे स्थिर दृष्टि से अंधकार की ओर देख रहे हैं। यशोधवलदेव ने पुकारा "पुत्र—शशांक !"। कोई उत्तर नहीं। ल्लह घबराकर उठा। उसने कुमार के कंधे पर हाथ रखकर पुकारा "कुमार !" जैसे कोई नींद से जाग पड़े उसी प्रकार चौंककर वे बोले "क्या ?" यशोधवलदेव ने पूछा "पुत्र ! क्या सोच रहे हो ?"

शशांक—स्कंदगुप्त की बात ! आप जिस दिन पाटलिपुत्र आए थे—

यशो०—उस दिन क्या हुआ था ?

शशांक—मैंने तो सोचा कि किसीसे न कहूँगा। उस दिन एक व्यक्ति ने मुझे स्कंदगुप्त की बात सुनाई थी।

यशो०—यह कौन था ?

शशांक—शक्रसेन।

ल्लह—यह कैसा सर्वनाश ! उसने तुम्हें कैसे देख पाया ?

शशांक—तुम उस दिन कहीं चले गए थे। मैंने तुम्हें जब कहीं न

देखा तब माधव और चित्रा के साथ बालू में आकर खेलने लगा। ठीक है न चित्रा ?

चित्रा उठकर सीढ़ी के ऊपर आ बैठी थी। उसने सिर हिलाकर कहा "हाँ"। यशोधवलदेव ने पूछा "शक्रसेन ने तुमसे क्या कहा था ?"

शशांक—उसकी सब बातों का तो मुझे स्मरण नहीं है, केवल उसका यही कहना अब तक नहीं भूला है कि शशांक, तुम कभी सुखी न रहोगे। तुम जिस पर विश्वास करोगे वही विश्वासघात करेगा। तुम बिना किसी संगी साथी के अकेले विदेश में मरोगे।

यशो०—पुत्र! वज्राचार्य्य शक्रसेन बौद्धसंघ का एक प्रधान नेता और साम्राज्य का घोर शत्रु है! तुम कभी उसकी बात का विश्वास न करना और न कभी उसके पास जाना।

लल्ल—प्रभो! पर वज्राचार्य्य ज्योतिष की विद्या में पारदर्शी प्रसिद्ध है।

यशो०—लल्ल! स्वार्थ के लिए बौद्ध जो न करें सो थोड़ा है।

देखते देखते घोर अंधकार चारों ओर छा गया। दीपक हाथ में लिए एक परिचारक ने आकर कहा "युवराज! महाराजाधिराज आपको स्मरण कर रहे हैं"। सब लोग घाटपर से उठकर प्रासाद के भीतर गए।

———

दूसरा परिच्छेद

जलविहार

चारों ओर नदियों से घिरे हुए वंगदेश पर चढ़ाई करने के लिए अश्वारोही या पदातिक सेना की अपेक्षा नौसेना अधिक आवश्यक है, यशोधवलदेव इस बात को जानते थे। उन्होंने जलसेना खड़ी करने का भार अपने ऊपर लिया। मगध देश में ऐसी नदियाँ बहुत कम थीं जिनमें सब ऋतुओं में नावें चल सकती हों, इससे मगध देश के नाविकों को लेकर पूर्व की ओर चढ़ाई करने में सफलता की कम आशा थी। यह सोच कर यशोधवलदेव ने गौड़ देश से माझी बुलवाकर नौसेना खड़ी की। गौड़ देश के काले और नाटे नाटे माझियों की नाव चलाने में फुरती देख पाटलिपुत्र के नागरिक दंग रह जाते थे। प्रति दिन सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक नई नई नौसेना गंगा की धारा में नाव चलाने और युद्ध करने का अभ्यास करती थी। मगध-वासी नागरिक तीर पर खड़े होकर उनकी अद्भुत क्रीड़ा और शिक्षा देखते थे। शशांक, यशोधवलदेव, अनंतवर्म्मा, नरसिंहगुप्त और लल्ल तीसरे पहर नौसेना की शिक्षा में योग देते थे। कभी कभी सम्राट् भी रनिवास की स्त्रियों को साथ लेकर नौका पर भ्रमण करने निकलते थे। कुमार भी कभी कभी अपने संगी साथियों के साथ चित्रा, लतिका और गंगा को लेकर चाँदनी रात में जलविहार करने जाते थे। उस समय नाव पर तरुण कोमल कंठ के साथ मधुर संगीत ध्वनि सुनाई देती थी। कुमार की बालसंगिनि भी अब तरुणावस्था में पैर रख चुकी थी। महादेवी अब उन्हें बिना किसी सहचरी के अकेले नहीं जाने देती थीं। प्रायः

तरला उनके साथ रहती थी। इन कई वर्षों के बीच तरला प्रासाद के अंतःपुर में सबको अत्यंत प्रिय हो गई थी। घर के काम काज में चतुर, आलस्यशून्य, हँसमुख तरुणी तरला दासियों में प्रधान होगई थी। वसुमित्र को छुड़ाने के पीछे यशोधवल ने उसे अपने सेठ के घर न जाने दिया। तब से बराबर वह प्रासाद ही में बनी हुई है। श्रेष्ठिपुत्र वसुमित्र, संघाराम से छूटने पर बराबर तन मन से यशोधवलदेव की सेवा में ही रहते हैं। इस समय वे नौसेना के एक प्रधान अध्यक्ष हैं। यशोधवल के आदेशानुसार जल विहार के समय कुमार वसुमित्र को सदा साथ रखते थे।

वर्षा के अंत में गंगा बढ़कर करारों से जा लगी है। नावों का बेड़ा तैयार हो चुका है। नौसेना सुशिक्षित हो चुकी है। हेमंत लगते ही वंगदेश पर चढ़ाई होगी। सामान्य सैनिक से लेकर यशोधवल तक उत्सुक होकर जाड़े का आसरा देख रहे थे। वर्षा काल में तो सारा वंगदेश जल में डूबकर महासमुद्र हो जाता था, शरद ऋतु में जल के हट जाने पर सारी भूमि कीचड़ और दलदल से ढकी रहती थी। इससे हेमंत के पहले युद्ध के लिए उस ओर की यात्रा नहीं हो सकती थी। वंगदेश की इसी चढ़ाई पर ही साम्राज्य का भविष्य बहुत कुछ निर्भर था। यही सोचकर यशोधवलदेव बहुत उत्सुक होते हुए भी उपर्युक्त समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

शरत् के प्रारंभ में शुक्ल पक्ष की चाँदनी रात में कुमार शशांक अपने संगी साथियों सहित जल विहार के लिए निकले हैं। नरसिंहदत्त, अनंतवर्म्मा, माधवगुप्त, चित्रा, लतिका और गंगा के साथ कुमार एक नौका पर चंद्रातप (चँदवा) के नीचे बैठे हैं। चंद्रातप के बाहर तरला, लल्ल और वसुमित्र बैठे हैं। सैकड़ों गौड़ माझी एक स्वर से गीत गाते हुए नावें छोड़ रहे हैं। उज्ज्वल निखरी हुई चाँदनी

चारों ओर छिटक कर आभा सी डाल रही है। गंगा की विस्तृत धारा के हिलोरों के बीच चंद्रमा की उज्वल निर्मल किरनें पड़कर झलझला रही हैं। कुमार की नाव धारा में पड़कर तीर की तरह सन सन बढ़ती चली जाती थी। चित्रा का मुँह उदास था, वह प्रसन्न नहीं थी। सब लोग मिलकर उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहे हैं, पर कुछ फल नहीं हो रहा है। चित्रा ने सुन पाया था कि युद्ध में जाने से मनुष्य मारना पड़ता है।

कुमार भी जायँगे, इसकी चिंतामें वह दिन दिन सूखती जाती थी, पर पीछे यह सुनकर कि वे शीघ्र लौट आवेंगे उसका जी कुछ ठिकाने आ गया था पर आज न जाने किसने उससे कह दिया कि युद्ध में सहस्रों मनुष्य मारे जाते हैं, रक्त से धरती लाल हो जाती है। जो युद्धयात्रा में जाता है वह लौटने की आशा छोड़कर जाता है। यही बात सुनकर वह रोती रोती कुमार के पैरों के नीचे लोट पड़ी और कहने लगी, मैं तुम्हें युद्ध में न जाने दूँगी। तरुणावस्था लगने पर भी चित्रा अभी बालिका ही थी उसकी बाल्यावस्था का भोलापन और चपलता जरा भी नहीं दूर हुई थी। उसकी इस बात पर सब लोग हँस रहे थे, इसीसे वह रूठकर मुँह फुलाए बैठी थी।

कुछ काल तक इस प्रकार चुप रहकर वह एक बारगी पूछ उठी "तुम लोग क्यों युद्ध करने जाओगे ?" अनंतवर्म्मा अवस्था में छोटे होने पर भी गंभीर स्वभाव के थे। उन्होंने धीरे से उत्तर दिया "देश जीतने।"

चित्रा—देश जीतकर क्या होगा ?

शशांक—देश जीतने से राज बढ़ेगा, राजकोष में धन आवेगा

चित्रा—मनुष्य भी तो मरेंगे ?

शशांक—दो तीन सौ मरेंगे।

चित्रा—जो लोग मरेंगे उन्हें पीड़ा न होगी ?

शशांक—होगी।

चित्रा—तब फिर उन लोगों को क्यों मारोगे ?

शशांक—वे सम्राट् की प्रजा होकर उनकी आज्ञा नहीं मानते, इसी लिए वे मारे जायँगे।

चित्रा—क्या ऐसे मनुष्य नहीं हैं जो सम्राट् की प्रजा नहीं हैं ?

शशांक—हैं क्यों नहीं, बहुतसे हैं।

चित्रा—तो उन्हें भी समझ लो कि सम्राट् की प्रजा नहीं हैं।

शशांक—यह नहीं हो सकता चित्रा! विद्रोही प्रजा का शासन करना राजधर्म है। विद्रोह का दमन न करने से राजा का मान नहीं रह जाता। आर्य्य यशोधवलदेव कहते हैं कि आत्मसम्मानहीन राजशक्ति कभी स्थिर नहीं रह सकती।

चित्रा अब और आगे न चल सकी, मुँह लटकाए बैठी रही। उसे देख नरसिंह बोल उठे "अच्छा होता, इन्हीं लोगों के हाथ में राज्य का भार सौंप दिया जाता। हम लोग झंझट से बचते"। सब लोग हँस पड़े, पर चित्रा ने कुछ ध्यान न दिया। वह गहरी चिंता में डूबी हुई थी। वह सोच रही थी कि जिसे इतना बड़ा राज्य है वह राज्य और बढ़ाना क्यों चाहता है ? राज्य लेने में यदि इतने मनुष्यों को मारना पड़ता है तो राज्य लेने की आवश्यकता ही क्या है ? इतनी नरहत्या, इतना रक्तपात करके नया राज्य लेने की आवश्यकता क्या है, यह बात चित्रा की समझ में न आई।

अकस्मात् न जाने कौन सी बात सोचकर वह एक बारगी चिल्ला उठी। कुमार ने घबराकर पूछा "क्या हुआ ?" चित्रा की दोनों आँखें डबडबाई हुई थीं। रुँधे हुए कंठ से वह बोल उठी "तुम जिन लोगों को मारोगे वे भी तुम लोगों को मारेंगे ?"

शशांक—मारेंहीगे ।

चित्रा—तुम्हारी ओर के लोग भी मरेंगे ?

शशांक—न जाने कितने लोग मरेंगे, कोई ठिकाना है। शत्रु के अस्त्रशस्त्रों की चोट से न जाने कितने सैनिक लँगड़े लूले हो जायँगे।

चित्रा—तो फिर तुम लोग क्यों जाते हो ?

शशांक—क्यों जाते हैं, यह बतलाना बड़ा कठिन है। सनातन से ऐसी प्रथा मनुष्य समाज में चली आ रही है, यही समझकर जायँगे। सैंकड़ों मारे जायँगे, हजारों लँगड़े लूले होंगे, पीड़ा से तड़पेंगे, न जाने कितने लोग अनाथ हो जायँगे, इतना सब होने पर भी हम लोग जायँगे।

लतिका अब तक चुपचाप बैठी थी। वह बोल उठी "कुमार! तुम लोग जिन्हें मारने जाओगे वे लोग भी तुम्हें मारेंगे। क्या तुम लोगों को भी वे मार सकेंगे ?

शशांक—सुयोग पावेंगे तो अवश्य मारेंगे, क्या छोड़ देंगे ?

लतिका और कुछ न बोली। चित्रा का रोने का रंग ढंग दिखाई पड़ा। कुमार की बात सुन लतिका की गोद में मुँह छिपाकर चित्रा सिसकने लगी। कुमार और नरसिंह उसे शांत करने लगे। इस बातचीत में जल विहार का सारा प्रमोद भूल गया, मृत्यु के प्रसंग ने सारा आनंद किरकिरा कर दिया। बहुत देर तक यों ही चुपचाप रहकर कुमार ने माझियों का नगर लौट चलने की आज्ञा दी। नाव लौट पड़ी।

धार में पड़कर नाव बहुत दूर निकल आई थी, चढ़ाव पर प्रासाद तक आने में उसे बहुत विलंब लगा। चित्रा के प्रश्न पर कुमार के मन में एक नया भाव उठ रहा था। इसके पहले उनके मन में और कभी मृत्यु का ध्यान नहीं आया था। युद्ध में मृत्यु की भी संभावना है, यह बात अब तक किसी ने उन के सामने नहीं कही थी। कुमार सोचते थे कि

युद्ध में जय और पराजय दोनों संभव है यह बात तो आर्य्य यशोधवल-देव कई बार कह चुके हैं; पर जय और पराजय के साथ मृत्यु की संभावना भी लगी हुई, यह उन्होंने कभी नहीं कहा। मरने पर तो सब बातों का अंत हो जाता है। जीवन की जितनी आशाएँ हैं उन सबकी जीवन के साथ ही इतिश्री हो जाती है। जो लोग युद्ध में जायँगे, हो सकता है कि उनमें से अधिकतर लोग लौटकर न आवें, उनके आत्मीय और घर के प्राणी उन्हें फिर न देखें। युद्ध क्षेत्र में न जाने कितने असहाय अवस्था में प्राण छोड़ेंगे, बहुतों को एक घूँट जल भी मरते समय न मिलेगा।

संभव है मुझे भी मरना पड़े। मैं भी घायल होकर गिरूँ और सेनादल मुझे छोड़कर चल दे। मैं तड़पता पड़ा रहूँ और विजयोल्लास में उन्मत्त सहस्रों अश्वारोहियों के घोड़ों की टापों से टकराकर मेरी देह खंड खंड हो जाय, कोई मुझे उठाने के लिए न आवे। फिर तो यह सुंदर पाटलिपुत्र नगर सब दिन के लिए छूट जायगा, बाल्यकाल के क्रीड़ास्थल, बंधु बांधव, इष्ट मित्र देखने को न मिलेंगे। मृत्यु—कितनी भयावनी है! कुमार की दोनों आँखों में जल आ गया, पर किसी ने देखा नहीं।

एक पहर रात बीते नाव पाटलिपुत्र पहुँची। गंगाद्वार पर पहुँचते पहुँचते दो दंड और बीत गए। गंगाद्वार के चारों ओर बहुत सी नावें लगी थीं। ये सब नावें वंगदेश की चढ़ाई के लिए ही बनी थीं। नावों के जमघट से थोड़ी दूर पर एक नाव लंगर डाले खड़ी थी। उसपर से एक प्रतीहार ने पुकारकर पूछा "किसकी नाव है"? वसुमित्र ने चिल्ला-कर उत्तर दिया—"साम्राज्य की नौका है"।

प्रतीहार—नाव पर युवराज हैं?

वसुमित्र—हाँ।

प्रतीहार—युवराज से निवेदन करो कि स्वयं महाराजाधिराज और महानायक यशोधवलदेव उन्हें कई बार पूछ चुके।

युवराज अब तक चिंता में ही डूबे हुए थे। वे सोच रहे थे कि यदि कहीं युद्ध में मैं मारा गया तो वृद्ध पिता की क्या दशा होगी? साम्राज्य की क्या दशा होगी? जिन्होंने मेरे ही भरोसे पर इस बुढ़ापे में राजकार्य्य का जंजाल अपने ऊपर ओढ़ा है, उन पितृतुल्य यशोधवलदेव का क्या होगा? और भी लोग हैं—माता हैं, वे भी मुझे देखकर ही जीती हैं। चित्रा है—

वसुमित्र धीरे से आकर कुमार के सामने खड़ा हो गया, पर उन्हें चिंता में देख कोई बात न कह सका। अनंतवर्म्मा ने पूछा "क्यों सेठ! प्रतीहार ने क्या कहा है?"

वसुमित्र—कहा है कि सम्राट् और महानायक कुमार को पूछ रहे हैं।

कुमार मानो सोते से जाग पड़े। उन्होंने पूछा "क्या हुआ?"

वसुमित्र—प्रभो! गंगाद्वार के प्रतीहार ने कहा है कि स्वयं महाराजाधिराज और महानायक यशोधवलदेव कुमार को कई बार पूछ चुके।

अब नाव गंगाद्वार के घाट की सीढ़ियों पर आ लगी। कुमार नाव पर से उतरे। नरसिंहदत्त बोले "चित्रा रोते रोते सो गई है"। पीछे से माधववर्म्मा बोल उठे "लतिका भी सो गई है"। इसी बीच में लल्ल कहने लगा "कुमार! महाराजाधिराज बुला रहे हैं। आप चलें, हम लोग पीछे से आते हैं"।

कुमार धीरे धीरे प्रासाद के भीतर गए।

तीसरा परिच्छेद

दुःसंवाद

नए प्रासाद के भीतर एक सुसज्जित भवन में सम्राट् महासेनगुप्त, महानायक यशोधवलदेव, महामंत्री हृषीकेश शर्म्मा, प्रधान विचारपति नारायण शर्म्मा, महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त, महानायक रामगुप्त प्रभृति प्रधान राजपुरुष बैठे हैं। सब उदास और चिंतामग्न हैं। महाप्रतीहार विनय-सेन चुपचाप भवन के द्वार पर खड़े हैं। वे भी उदास हैं। कुछ दूर पर दंडधर और प्रतीहार चुपचाप खड़े हैं। अंतःपुर से रह रहकर थोड़ा थोड़ा रोने का शब्द भी आता है। कुमार गंगाद्वार से एक दंडधर के साथ अंतःपुर में आए। दुश्चिंता से वे सन्न हो गए थे, रोने का शब्द सुनकर वे और भी दहल उठे। दंडधर से उन्होंने पूछा "सब लोग रोते क्यों हैं? क्या हुआ, कुछ कह सकते हो?" दंडधर बोला "प्रभो! मैं कुछ भी नहीं जानता"।

उन्हें दूर ही से देख विनयसेन भीतर जाकर बोले "महाराजा-धिराज! युवराज आ रहे हैं"। सम्राट् हाथ पर सिर रखे रखे ही बोले "भीतर बुलाओ"। विनयसेन बाहर निकल कर कुमार को लिए फिर भीतर आए। कुमार पिता के चरणों में प्रणाम करके खड़े रहे। सम्राट् के मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। यह देख हृषीकेश शर्म्मा बोले "महाराजाधिराज! युवराज आए हैं"। सम्राट् फिर भी चुप। कुमार उनकी उदासी और मौन का कुछ कारण न समझ भौचक खड़े रहे। अंत में यशोधवलदेव ने सम्राट् को संबोधन करके कहा "महाराजा-

धिराज ! युवराज शशांक बहुत देर से खड़े हैं, उन्हें बैठने की आज्ञा हो" । सम्राट् सिर नीचा किए ही बोले "पुत्र ! बैठ जाओ । हम लोगों का सर्वनाश हो गया । स्थाण्वीश्वर में तुम्हारी बूआ का परलोकवास हो गया" । समाचार सुनकर युवराज सिर नीचा करके बैठ रहे । बहुत विलंब के उपरांत यशोधवलदेव बोले "महाराजाधिराज ! अब शोक में समय खोना व्यर्थ है । पाटलिपुत्र से थानेश्वर कई दिनों का मार्ग है, पर थानेश्वर की सेना चरणाद्रिगढ़ के पास ही है । प्रभाकरवर्द्धन यदि साम्राज्य पर आक्रमण करना चाहें तो बहुत सहज में कर सकते हैं । महाराजाधिराज ! अब शोक परित्याग कीजिए, साम्राज्य की रक्षा का उपाय कीजिए" । सम्राट् ने कहा "यशोधवल ! साम्राज्य की रक्षा का तो मुझे कोई उपाय नहीं सूझता । थानेश्वर के साथ युद्ध करने में तो पराजय निश्चय है । बालक और वृद्ध कभी लड़कर विजयी हो सकते हैं ?'

यशो०—उपाय न सूझने पर भी कोई उपाय करना ही होगा । जो अपनी रक्षा का उपाय नहीं करता वह आत्मघाती है ।

सम्राट्—महादेवी की मृत्यु के पहले मैं ही क्यों न मर गया ? अपनी आँखों से साम्राज्य का ध्वंस तो न देखता ।

रामगुप्त—प्रभो ! विलाप करने का कुछ फल नहीं । इस समय जहाँ तक शीघ्र हो सके, चरणाद्रिदुर्ग में सेना भेजनी चाहिए ।

यशो०—रामगुप्त ! सेना कै दिन में चरणाद्रिदुर्ग पहुँचेगी ?

राम०—अश्वारोही सेना तो तीन दिन में पहुँच सकती है, किंतु पदातिक सेना दस दिन से कम में नहीं पहुँच सकती ।

सम्राट्—चरणाद्रिगढ़ कितनी सेना भेजना चाहते हो ?

यशो०—कम से कम दस सहस्र; पाँच सहस्र पदातिक, और पाँच सहस्र अश्वारोही ।

सम्राट्—चरणाद्रिगढ़ गंगा के तट पर है, गढ़ की रक्षा के लिए कुछ नौसेना भी चाहिए ।

यशो०—वंगदेश की चढ़ाई के लिए जो नौसेना इकट्ठी की गई है, उसका कुछ अंश भेज देने से कोई विशेष हानि न होगी ।

सम्राट्—शिविर में कितनी सेना होगी ?

हरिगुप्त—पंद्रह सहस्र अश्वारोही, पचीस सहस्र पदातिक और पाँच सहस्र नौसेना ।

सम्राट्—नई नावें कितनी होंगी ?

हरिगुप्त—पाँच सौ से कुछ कम । इनमें से दो सौ के माँझी तो मगधदेश के ही हैं ।

सम्राट्—वंगदेश में अश्वारोही सेना ले जाना तो व्यर्थ होगा, अतः चरणाद्रिदुर्ग पर दश सहस्र अश्वारोही भेज देने से इधर कोई हानि न होगी । पर नौसेना अधिक नहीं भेजी जा सकती. क्योंकि वंगदेश में नौसेना ही लड़ेगी ।

यशो०—प्रभो ! कम से कम दो सहस्र अश्वारोही वंगदेश में भी रहने चाहिएँ, क्योंकि कामरूप के राजा क्या करेंगे, नहीं कहा जा सकता ।

सम्राट्—तो ठीक है । आठ सहस्र अश्वारोही, पाँच सहस्र पदातिक और दो सौ नावें इसी समय चरणाद्रिगढ़ भेज दी जायँ । मगध के माँझियों को वंगयुद्ध में ले जाना व्यर्थ ही होगा । अच्छा, चरणाद्रिगढ़ सेना लेकर जायगा कौन ?

यशो०—हरिगुप्त और रामगुप्त को छोड़ और तीसरा कौन जा सकता है ? पर दो में से किसी एक का पाटलिपुत्र में रहना भी आवश्यक है ।

सम्राट्—अच्छा तो हरिगुप्त को ही भेजो ।

हरिगुप्त—महाराजाधिराज की आज्ञा सिर माथों पर है। पर मैं इस बात का बहुत आसरा लगाए था कि एक बार फिर यशोधवलदेव के अधीन युद्धयात्रा करूँगा।

यशो०—हरिगुप्त ; तुम्हारी यह आशा थोड़े ही दिनों में पूरी होगी।

हरि०—किस प्रकार, प्रभो !

यशो०—अभी कई युद्धयात्राएँ होंगी।

सम्राट्—हरिगुप्त ! यशोधवल ठीक कहते हैं। बहुत शीघ्र इतनी अधिक चढ़ाइयाँ करनी पड़ेंगी कि उपयुक्त सेनापति ढूँढ़े न मिलेंगे।

वृद्ध हृषीकेश शर्म्मा अब तक चुपचाप बैठे थे। बुढ़ापे के कारण उन्हें अब बहुत कम सुनाई पड़ता था। जो जो बातें हुईं, अधिकांश उन्होंने नहीं सुनीं। वे बैठे बैठे बोल उठे "यशोधवल ! तुम लोगों ने क्या स्थिर किया, मुझे बताया नहीं"। यशोधवलदेव ने उनके कान के पास मुँह ले जाकर चिल्लाकर कहा "महाराज ने स्थिर किया है कि आठ सहस्र अश्वारोही, पाँच सहस्र पदातिक और दो सौ नावें लेकर हरिगुप्त इसी समय चरणाद्रिगढ़ की ओर प्रस्थान करें और रामगुप्त नगर की रक्षा के लिए रहें। वंग की चढ़ाई में दो सहस्र अश्वारोही भी जायँगे, क्योंकि कामरूप के राजा क्या भाव धारण करेंगे, नहीं कहा जा सकता"। वृद्ध ने कई बार सिर हिलाकर कहा "बहुत ठीक, बहुत ठीक ! पर स्थाण्वीश्वर जाने के संबंध में क्या व्यवस्था की गई ?"

सम्राट्—हरिगुप्त चरणाद्रिगढ़ जाते ही हैं, जो व्यवस्था उचित समझेंगे, करेंगे।

हृषी०—प्रभो ! वृद्ध की वाचालता क्षमा की जाय। स्थाण्वीश्वर की सेना के आक्रमण से देश की रक्षा करने के अतिरिक्त एक कर्त्तव्य और भी है। स्थाण्वीश्वरराज आपके भांजे हैं, उन्होंने आपकी भगिनी

की मृत्यु का संवाद दूत द्वारा भेजा है। यद्यपि दूत के पाटलिपुत्र पहुँचने के पहले ही श्राद्ध आदि कृत्य हो चुके होंगे, पर सम्राट्-वंश के किसी व्यक्ति का इस समय वहाँ जाना परम आवश्यक है।

प्रधान सचिव का यह प्रस्ताव सुन यशोधवलदेव, नारायण शर्म्मा और रामगुप्त आदि राजपुरुष धन्य धन्य कहने लगे। सम्राट् बोले "अमात्य! आपका प्रस्ताव बहुत उचित है, पर स्थाण्वीश्वर किसको भेजूँ। यदि कोई दूर का संबंधी या आत्मीय भेजा जायगा तो प्रभाकर-वर्धन अपना अपमान समझेंगे"।

हृषी०—किसी संबंधी को भेजना किसी प्रकार ठीक नहीं; ऐसा करने से तुरंत झगड़ा खड़ा हो जायगा। युवराज शशांक से प्रभाकर-वर्द्धन मन ही मन बुरा मानते हैं इसलिए उन्हें भेजना तो बुद्धिमानी का काम नहीं। माधवगुप्त ही भेजे जा सकते हैं, और कोई उपाय मैं नहीं देखता।

सम्राट्—माधव तो अभी निरा बच्चा है।

यशो०—महाराजाधिराज! ऐसे स्थान पर बच्चे को भेजना ही ठीक है क्योंकि इससे किसी प्रकार के विवाद आदि की उतनी संभावना नहीं रहती।

सम्राट्—तो फिर माधव का जाना ही ठीक है, पर उनके साथ जायगा कौन?

यशो०—कुमार माधवगुप्त के साथ किसी बड़े चतुर मनुष्य को भेजना चाहिए। नारायण शर्मा यदि जाते तो बहुत ही अच्छा होता' पर—

नारायण०—यदि महाराजाधिराज की आज्ञा हो तो इस वृद्धा-वस्था में भी मैं शास्त्र छोड़कर अभी शस्त्र धारण करने को प्रस्तुत हूँ, स्थाण्वीश्वर जाना तो कोई बड़ी बात नहीं है।

सम्राट्—बहुत अच्छी बात है। अच्छा तो महाधर्माधिकार ही कुमार के साथ जायँगे।

हृषीकेश शर्म्मा सब बातें नहीं सुन सके थे। वे पूछने लगे "यशोधवल, क्या स्थिर किया ?"

यशो०—कुमार माधवगुप्त ही स्थाण्वीश्वर जायँगे। महाधर्म्माधिकार नारायण शर्म्मा उनके साथ जायँगे।

हृषी०—साधु ! साधु ! किंतु यशोधवलदेव, एक बात तो बताओ। हरिगुप्त तो चरणाद्रि जायँगे, नारायण स्थाण्वीश्वर जाते हैं, रामगुप्त नगर की रक्षा के लिए रहते हैं, मैं वृद्ध हूँ, किसी काम का ही नही हूँ। तुम युद्ध में किसे लेकर जाओगे ?

यशो०—प्रभो ! सेनापति का क्या अभाव है ? नरसिंह, माधव, युवराज शशांक यहाँ तक कि अनंतवर्म्मा भी अब युद्धविद्या में पूर्ण शिक्षित हो चुके हैं। वंगदेश की चढ़ाई में ये हीं लोग हमारी पृष्ठरक्षा करेंगे। यदि साम्राज्य की रक्षा होगी, यदि वंगदेश पर अधिकार होगा, तो इन्हीं लोगों के द्वारा। हम लोग अब वृद्ध हुए, कर्मक्षेत्र से अब हम लोगों के छुट्टी लेने का समय है। यदि आगे का सब कार्य इन लोगों के हाथ में देकर हम लोग छुट्टी पा जायँ तो इससे बढ़कर भगवान् की कृपा क्या होगी ?

हृषी०—साधु ! यशोधवल, साधु ! आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा यह साधु उद्देश्य सफल हो।

यशो०—महाराजाधिराज ! अब विलंब करने का काम नहीं आज रात को ही सेना सहित हरिगुप्त को प्रस्थान करना होगा।

सम्राट—अच्छी बात है। हरिगुप्त ! प्रस्तुत हो जाओ और आज रात को ही सेना सहित नगर परित्याग करो।

हरिगुप्त प्रणाम करके विदा हुए। सम्राट् ने विनयसेन को बुलाकर कहा "तुम इसी समय शिविर में जाओ। अंग और तीरभुक्ति की अश्वारोही सेना को आज रात को ही हरिगुप्त के साथ चरणाद्रिगढ़ जाना होगा। आठ सहस्र अश्वारोही और पाँच सहस्र पदातिक दो पहर रात बीते ही प्रस्थान करेंगे, शेष सेना नगर में ही रहेगी। तुम जाकर सेना-नायकों को तैयार होने के लिए कहो।" विनयसेन अभिवादन करके चले गए। सम्राट् ने फिर कहा "रामगुप्त! जिन दो सौ नावों पर मगध के माँझी हैं वे हरिगुप्त के साथ चरणाद्रि जायँगे, उन्हें तैयार होने के लिए कहो।" रामगुप्त प्रणाम करके गए।

रात का तीसरा पहर बीता चाहता है, यह देख हृषीकेश शर्म्मा और नारायण शर्म्मा सम्राट् से विदा होकर अपने अपने घर गए। यशोधवलदेव और कुमार शशांक भी बाहर निकल आए। शयोधवलदेव ने कहा "पुत्र मैं शिविर में जा रहा हूँ। तुम भी सेना यात्रा देखने चलोगे?" युवराज ने कहा "आर्य्य! मैं बहुत थका हुआ हूँ।" यशो-धवलदेव उन्हें विश्राम करने के लिए कहकर चले गए। उनके आँखों की ओट होते ही चित्रा दौड़ी दौड़ी आई और कुमार के गले लगकर कहने लगी "कुमार! तो फिर क्या तुम युद्ध में न जाओगे?" कुमार ने चकित होकर पूछा "क्यों?"

चित्रा—हरिगुप्त न जा रहे हैं।

शशांक—तुमने कैसे सुना?

चित्रा—मैं कोठरी के उधर कोने में छिपी छिपी सब सुन रही थी।

शशांक—चित्रा! तुम अभी सोई नहीं?

चित्रा—मुझे नींद नहीं आती। तुम भी युद्ध में जाओगे, यह सुनकर मेरा जी न जाने कैसा करता है।

शशांक—मैं युद्ध में जाऊँगा, यह बात तो तुम बहुत दिनों से सुनती आती हो।

चित्रा—युद्ध में मनुष्य मारे जाते हैं, यह तो तुमने कभी कहा नहीं था।

मंत्रणा-सभा में आकर कुमार को मृत्यु की बात भूल ही गई थी। जित्रा की बात से फिर उन्हें दुश्चिंता ने आ घेरा। वे चित्रा की बात का कोई उत्तर न देकर सोच विचार में डूब गए! उन्हें चुप देखकर चित्रा ने पुकारा—"कुमार!"

शशांक—क्या है चित्रा?

चित्रा—कहो कि मैं युद्ध में न जाऊँगा।

शशांक—पिता जी की बात भला कैसे टाल सकता हूँ?

चित्रा—तुम्हारे पिता क्या तुम्हें जान बूझकर मरने देंगे?

शशांक—वे जान बूझकर मुझे कैसे मरने देंगे?

चित्रा—तो फिर?

शशांक—तो फिर क्या?

चित्रा—तो फिर तुम्हें मरना न होगा?

कुमार हँस पड़े और बोले "मरना भी क्या किसी के हाथ में रहता है"?

चित्रा ने कुछ सुना नहीं, वह बार बार कहने लगी "अच्छा, कहो कि मैं न मरूँगा"। कुमार ने हँसते हँसते कहा "अच्छा, लो न मरूँगा"।

चित्रा—यह नहीं, तुम मेरी शपथ खाकर कहो।

शशांक—अच्छा तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ, चित्रा! ~~कि मैं~~ बंगदेश के इस युद्ध में न मरूँगा।

चित्रा—कहो कि लौटकर आऊँगा।

शशांक—कहाँ?

चित्रा—मेरे पास, और कहाँ? नहीं, नहीं, इस पाटलिपुत्र नगर में।

शशांक—तुम्हारे सिर की सौगंध खाकर कहता हूँ कि वंगदेश के युद्ध से मैं लौटकर तुम्हारे पास पाटलिपुत्र नगर में आऊँगा।

चित्रा ने अपने मन की बात हो जाने पर कुमार के गले पर से हाथ हटा लिया और दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े महादेवी के शयनागार की ओर गए।

———

चौथा परिच्छेद

संवाद-प्रेरणा

दो पहर रात बीत गई है। नगर के तोरणों पर दूसरे पहर का बाजा बज रहा है। राजधानी में बिलकुल सन्नाटा है। एक पतली गली में एक छोटी-सी दूकान पर तेल का एक दिया जल रहा है। दूकान पर बैठी सहुवानी पान चबा रही है और एक पुरुष के साथ धीरे-धीरे बातचीत भी करती है। पुरुष कह रहा है "अब मैं यहाँ और अधिक न रहूँगा; देश को जाऊँगा। बहुत दिन हो गए; अब और विलंब करूँगा तो प्रभु रुष्ट होंगे।" रमणी रूठने का भाव बनाकर कह रही है "पुरुष जाति ऐसी ही होती है। यदि देश का ऐसा ही प्रेम था तो परदेश में आए क्यों? मुझसे इतनी बातचीत क्यों बढ़ाई?"

पुरुष—मल्लिका ! तुम रूठ गईं। मैं क्या तुम्हारा विरह बहुत दिनों तक सह सकूँगा ? कभी नहीं। एक बरस के भीतर ही लौट आऊँगा।

रमणी—तुम्हारी बात का कोई ठिकाना नहीं।

पुरुष—मैं तुम्हारे सिर की सौगंध खाकर कहता हूँ कि अगली शरद पूर्णिमा तक आ जाऊँगा। इसमें रत्ती भर भी झूठ न समझना।

रमणी उसकी बात को अनसुनी करके दूसरी ओर मुँह फेरे बैठी थी। पुरुष काठ के एक पाटे पर बैठा था। मान दूर होता न देख वह आसन पर से उठा और रमणी की ओर बढ़ा। इतने में गली में किसी के चलने का शब्द सुनाई पड़ा। पुरुष सहमकर अपने आसन पर आ बैठा। रमणी भी अपना मुँह पुरुष की ओर फेरकर बैठी। एक सैनिक ने दूकान पर आकर रमणी से कहा "मल्लिका ! मेरे यहाँ तुम्हारा जो कुछ निकलता हो उसे चुकाने आया हूँ। तुम्हारी दूकान अब तक खुली हुई है। मैं तो समझता था कि तुम दूकान बंद करके सोई होगी, मुझे बहुत पुकारना पड़ेगा।" रमणी ने हँसते-हँसते कहा "देखना मल्लिका को एक बारगी भूल न जाना, कभी-कभी स्मरण करना। उधार चुकाने की इतनी जल्दी क्या थी, सबेरे आकर चुकाते।"

सैनिक—मुझे रात को ही नगर छोड़कर जाना होगा। सेनापति आकर हम लोगों को तैयार होने के लिए कह गए हैं। दो पहर रात गए ही जाने की बातचीत थी, पर कई कारणों से विलम्ब हो गया। अब तीन पहर रात बीतने पर प्रस्थान होगा।

रमणी—खड़े ही रहोगे ? थोड़ा बैठ न जाओ।

सैनिक—बैठने का समय नहीं है; अभी और कई दूकानों पर जाना है।

रमणी—तब फिर यहाँ आने का क्या प्रयोजन था ? जब लौट कर आते तब उधार चुकाते।

सैनिक—न, न मल्लिका, रूठो मत, मैं आज बहुत हड़बड़ी में हूँ, बैठ नहीं सकता। तुम्हारा कितना निकलता है, बतलाओ।

रमणी—अरे, कितना क्या ? सब मिला कर पन्द्रह-सोलह द्रम्म* होगा।

सैनिक ने अपने टेंट से एक स्वर्ण मुद्रा निकाल कर फेंक दी। रमणी ने उसे दीपक के उजाले के पास ले जाकर देखा और चकित होकर बोली "अरे, यह तो दीनार† है। नया दीनार। तुम कहाँ से पा गए ?"

सैनिक—किसी बात की चिन्ता न करो, जाली नहीं है, राजकोष से मिला है। यात्रा की आज्ञा के साथ ही तीन मास का वेतन सब को मिल गया है।

रमणी—कहाँ जाना होगा ?

सैनिक—यह नहीं बता सकता; बताने का निषेध है।

रमणी अपना मुँह फेरे हुए सैनिक के आगे चार द्रम्म फेंक कर बोली "अच्छा तो जाओ।" सैनिक ने कहा "जाऊँ कैसे ? तुम तो रूठी जाती हो।"

रमणी—मेरे रूठने से तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है। जब तुम इतना तक नहीं बता सकते कि कहाँ जाते हो तब मेरे रूठने की तुम्हें क्या चिन्ता ?

सैनिक—मुझ पर इतना कोप न करो। स्थान बताने का बहुत कड़ा निषेध है, पर तुमसे तो किसी बात का छिपाव नहीं है, तुम्हारे कान में कहे जाता हूँ।

---

*द्रम्म प्राचीन काल का चाँदी का सिक्का है।

†दीनार स्वर्णमुद्रा, जिसका मूल्य १५ से २० द्रम्म तक होता था।

सैनिक ने रमणी के कान के पास मुँह ले जाकर कुछ कहा। पास बैठे हुए पुरुष ने कुछ भी न सुना। अन्त में रमणी ने 'जाओ' कह कर सैनिक को ढकेल दिया। वह रुपए उठा कर हँसता-हँसता चला गया। पुरुष चुपचाप अपने आसन पर बैठा रहा। जब सैनिक चला गया तब रमणी फिर पहले की तरह मुँह फेर कर बैठी। पुरुष यह देख हँस कर बोला "है! फिर वही बात।"

स्त्री चुप रही। पुरुष फिर उठ कर स्त्री के पास पहुँचा और उसका माथा छू कर शपथ खाने लगा। वह प्रसन्न होकर उसकी ओर मुँह करके बैठी। सहुआनी पाठकों की पूर्व परिचिता वही परचून वाली है जिसके यहाँ यज्ञ वर्म्मा के पुत्र अनन्त वर्म्मा ने आश्रय लिया था। महादेवी जिस समय प्रासाद में विचार करने बैठी थीं तब महाप्रतीहार विनय सेन इसी को पकड़ लाए थे। रमणी का मान भंजन हो चुकने पर दोनों वार्तालाप में प्रवृत्त हुए। पुरुष ने ढंग से उस सैनिक की बातचीत चला कर उसका परिचय जान लिया, किन्तु वह सैनिक कहाँ जायगा, इस विषय में कुछ न पूछा। सैनिक के चले जाने के प्रायः दो दण्ड पीछे वह पुरुष भी अपने आसन से उठा। रमणी ने पूछा "अब तुम कहाँ चले?"

पुरुष—दक्षिण तोरण के पास मैं अपने एक मित्र के घर एक बहुमूल्य वस्तु भूल आया हूँ। यदि इसी समय जाकर पता न लगाऊँगा तो फिर न मिलेगी।

रमणी—अब इतनी रात को जाना ठीक नहीं।

पुरुष—क्यों?

रमणी—मार्ग में चोर-डाकू मिलेंगे।

पुरुष—मेरे पास अस्त्र है।

रमणी—बहुत सावधान होकर जाना। रात को लौटोगे न?

पुरुष—अवश्य लौटूँगा।

दूकान से उठ कर वह पुरुष एक पतली गली से होता हुआ राजपथ पर आ निकला और दक्षिण की ओर जल्दी-जल्दी चलने लगा। कुछ दूर चलने पर जब उसने अच्छी तरह समझ लिया कि कोई पीछे-पीछे नहीं आ रहा है, तब वह पश्चिम की ओर मुड़ा। कई पतली अँधेरी गलियों से होता हुआ वह पश्चिम तोरण पर पहुँचा। उसने देखा कि फाटक अभी खुला है, मार्ग के किनारे बहुत से दीपक जल रहे हैं और अश्वारोही सेना के दल पर दल तोरण से होकर नगर के बाहर निकल रहे हैं। उसने यह भी देखा कि प्रतीहार लोग और किसी को नगर के बाहर नहीं जाने देते। तोरण के इधर उधर बहुत से नागरिक सेना की यात्रा देख रहे हैं। उस पुरुष ने भीड़ में से एक व्यक्ति से पूछा "भाई, कह सकते हो कि ये लोग कहाँ जा रहे हैं?" उसने कहा "न, यह कोई नहीं जानता।" वह भी भीड़ में मिलकर सेना की यात्रा देखने लगा। अश्वारोहियों का एक दल निकल गया, उसके पीछे कई सेनानायक धीरे धीरे जाते दिखाई पड़े। उनमें से एक नवयुवक ने पास के एक पुराने सेनानायक से पूछा "इस समय चरणाद्रि दुर्ग में सेना भेजने की क्या आवश्यकता है, कुछ समझ में नहीं आता"। वह प्रवीण सेनानायक कुछ हँसकर बोला "इसीसे लोग कहते हैं कि बालकों के सामने कोई गुप्त बात नहीं कहनी चाहिए। इतनी ही देर में सेनापति की आज्ञा भूल गए?" वह पुरुष अँधेरे में तोरण के एक कोने में छिपा हुआ यह बात सुन रहा था। सेनानायकों के निकल जाने पर अश्वारोहियों का दूसरा दल आया। उसके आते ही वह व्यक्ति अँधेरा पकड़े हुए पूर्व की ओर जाने लगा।

तीन पहर रात जाते जाते वह पुरुष कपोतिक संघाराम के तोरण के भीतर घुसा। पहर बीतने पर नगर के तोरणों पर से बाजे की ध्वनि

सुनाई देने लगी। संघाराम के भीतर के विहारों*में भी पूजा के शंख और घंटे की ध्वनि हो रही थी। संघाराम में दल के दल भिक्खु और उपासिकाएँ एकत्र हो रही थीं। उस पुरुष को एक भिक्खु ने पहचाना और पूछा "क्यों नयसेन! इतनी रात को कहाँ से आ रहे हो?" उसने कोई उत्तर न देकर पूछा "महास्थविर कहाँ हैं!" भिक्खु ने धीरे से कहा "वज्रतारा के मंदिर में"। वह पुरुष उसे छोड़कर भीड़ में मिल गया।

संघाराम के बीचो बीच बुद्धदेव का बड़ा मंदिर था। उसके दक्खिन लोकनाथ का मंदिर था। लोकनाथ विहार के ईशान कोण पर वज्रतारा का मंदिर था। मंदिर के भीतर अष्टधातु के अष्टदल पद्म के ऊपर देवी की एक धातुप्रतिमा थी। कमल के प्रत्येक दल पर धूपघंटा, वज्रघंटा आदि देवियों की मूर्त्ति थी। बड़ो धूमधाम से इन नवों देवियों की पूजा हो रही थी। एक भिक्खु धूपतारा की आरती कर रहा था। मंदिर के एक कोने में कुशासन पर बैठे महास्थविर बुद्धघोष पूजन की विधि बोल रहे थे। मंदिर के द्वार पर उपासक उपासिकाओं की भीड़ खड़ी थी। वह पुरुष द्वार पर मार्ग न पाकर झाँकी के पास गया। वहाँ से उसने देखा कि महास्थविर खिड़की के पास ही बैठे हैं। उस पुरुष ने झाँककर देखा कि पूजन में श्वेत पुष्प ही चढ़ रहे हैं, केवल दो चार लाल देवी-फूल (रक्त जवा) इधर उधर दिखाई पड़ते हैं। वह खिड़की परसे हटकर फिर मंदिर के द्वार पर आया और उसने एक भक्त से एक देवीफूल लिया। खिड़की के पास जाकर उसने फूल महास्थविर के ऊपर फेंका। महास्थविर ग्रंथ पढ़कर पूजन की विधि बोल रहे थे। पोथी पर लाल फूल पड़ते देख उन्होंने

*विहार = बौद्ध मंदिर।

सिर उठाकर देखा। खिड़की पर एक मनुष्य खड़ा देख उन्होंने फूल फिर खिड़की की ओर फेंका। इसके पीछे एक भिक्खु को बुलाकर वे बोले "पाठ में कुछ व्याघात पड़ गया, तुम बैठकर पाठ करो।" वह भिक्खु आसन पर आ जमा और महास्थविर मंदिर के बाहर निकले। महास्थविर को उठते देख वह व्यक्ति खिड़की के पास से हट गया और भीड़ में जा मिला।

महास्थविर को बाहर आते देख उपासक उपासिकाओं ने मार्ग छोड़ दिया। वे किसी ओर न देख धीरे धीरे चले। भीड़ में से निकल उस पुरुष ने महास्थविर को प्रणाम किया। वे आर्शीर्वाद देकर फिर चलने लगे। इसी बीच उस पुरुष ने उनके कान में न जाने क्या कहा। उन्होंने कहा "तितल्ले की कोठरी में चलो"। वह पुरुष फिर भीड़ में मिल गया। महास्थविर संघाराम के भीतर गए।

संघाराम के तीसरे तले की एक कोठरी में महास्थविर बुद्धघोष आसन पर बैठे हैं। कोठरी का द्वार बंद है। भीतर घृत का एक दीपक जल रहा है। देखने से तो जान पड़ता है कि महास्थविर जप कर रहे हैं। पर सच पूछिये तो वे उत्सुक होकर उस पुरुष का आसरा देख रहे हैं। आधी घड़ी पीछे कोठरी का किवाड़ किसीने खटखटाया। महास्थविर ने उठकर किवाड़ खोले, वह पुरुष भीतर आया। महास्थविर ने सावधानी से किवाड़ फिर भिड़ाकर उससे पूछा "नयसेन! इतनी रात को क्यों आए? कोई नया समाचार है?"

नय०—विशेष समाचार न होता तो इतनी रात को कष्ट न देता। अभी बहुत सी अश्वारोही सेना पश्चिम तोरण से होकर चरणाद्रि गई है।

महा०—कितने अश्वारोही रहे होंगे?

नय०—मैं अच्छी तरह देख न सका, पर पाँच सहस्र से ऊपर जान पड़ते थे।

महा०—सेनापति कौन था ?

नय०—इसका पता तो नहीं लगा सका ।

महा०—संवाद कहाँ भेजना चाहिए ?

नय०—कान्यकुब्ज या प्रतिष्ठानपुर ।

महा०—अच्छी बात है ।

नय०—पर संवाद भेजना सहज नहीं है, क्योंकि इस समय नगर से कोई बाहर नहीं निकलने पाता ।

महा०—तब तो चिंता की बात है अच्छा तुम बैठो, मैं कोई उपाय सोचता हूँ ।

महास्थविर के सामने एक वेदी के ऊपर एक घंटा रखा था । उसे उठाकर उन्होंने दो बार बजाया । क्षण भर भी नहीं हुआ था कि बाहर से किसी ने किवाड़ खटखटाया । नयसेन ने उठकर किवाड़ खोला । एक वृद्ध भिक्खु ने कोठरी में आकर वृद्ध को प्रणाम किया । महास्थविर बोले "जाकर देखो तो मृगदाव के आचार्य बुद्धश्री चले गए कि अभी हैं ।" भिक्खु प्रणाम करके बाहर गया और फिर थोड़ी देर में लौट कर बोला "आचार्य बुद्धश्री अभी संघाराम में ही हैं ।" महास्थविर ने उन्हें बुला लाने के लिए कहा ।

भिक्खु के कोठरी से बाहर चले जाने पर महास्थविर ने नयसेन से कहा "चरणाद्रिगढ क्यों जा रहे हैं, कुछ समझ में नहीं आता ।"

नय०—मैंने तो संयोग से एक सैनिक के मुँह से यह बात सुनी । सुनते ही मैं पश्चिम तोरण की ओर दौड़ा । वहाँ आकर देखा कि सच-मुच बहुत से अश्वारोही जा रहे हैं । वहीं से मैं सीधे आपके पास संवाद देने आ रहा हूँ ।

महा०—जब से यशोधवल आए हैं तब से इधर कोई संवाद मुझे नहीं मिल रहा है । नगर में, शिविर में, राज भवन में हमारे सैकड़ों

गुप्तचर हैं, पर उनमें से एक भी कोई संवाद लेकर मेरे पास नहीं आया। सम्राट्* के पास भी मैंने एक निवेदन भेजा है कि संघ के कार्य में बड़ी बाधा पड़ रही है, उसका भी कुछ फल नहीं। बात यह है कि महादेवी अभी जीवित हैं।

महास्थविर की बात पूरी भी न हो पाई थी कि पूर्वोक्त भिक्खु एक और बुड्ढे और दुबले-पतले भिक्खु को साथ लिए कोठरी में आया। साथ आए हुए भिक्खु ने महास्थविर को प्रणाम किया। उन्होंने कहा "आचार्य! तुम्हें एक विशेष कार्य से इसी समय बाहर जाना होगा। एक संवाद है जिसे प्रतिष्ठानपुर या कान्यकुब्ज पहुँचाना होगा। आज रात को बहुत से अश्वारोही चरणाद्रि की ओर गए हैं, यह बात स्थाण्वीश्वर के किसी सेनानायक के कान में डालनी होगी। प्रतीहार आज रात को किसी को नगर के बाहर नहीं जाने देते हैं, पर संवाद लेकर आज रात को ही जाना चाहिए। तुम किसी युक्ति से रात ही को प्रस्थान कर सकते हो?"

आचार्य—मैं चेष्टा करके देखता हूँ।

महा०—किस मार्ग से जाओगे?

आचार्य—स्थल मार्ग से जाना तो सम्भव नहीं, नदी के मार्ग से निकलने का प्रयत्न करूँगा।

महा०—बहुत ठीक। नयसेन! तुम गंगा तट तक आचार्य को पहुँचा आओ।

आचार्य बुद्धश्री और नयसेन महास्थविर को प्रणाम करके कोठरी से बाहर निकले।

———

*थानेश्वर के प्रभाकरवर्द्धन।

पाँचवाँ परिच्छेद

सखी-संवाद

एक पहर दिन चढ़ चुका है। शरद ऋतु की धूप अभी उतनी प्रचंड नहीं हुई है। पाटलिपुत्र के राजपथ पर ओहार से ढकी एक पालकी वेग से पूर्व की ओर जा रही है। नगर के जिस भाग में सेठ और महाजन बसते थे वहाँ की सड़क बहुत पतली थी। राजभवन की पालकी और आगे पीछे दंडधर देखकर नागरिक सम्मान दिखाते हुए किनारे हट जाते थे। फिर भी कभी कभी पालकी को रुक जाना पड़ता था क्योंकि रथ, छकड़े और घोड़े आते जाते मिल जाते थे। बीच बीच में पालकी के भीतर बैठी हुई स्त्री कहारों को मार्ग भी बताती जाती थी। इस प्रकार कुछ दूर चलने पर स्त्री की आज्ञा से पालकी रखी गई। पालकी के भीतर से घूँघट डाले एक स्त्री बाहर निकली। उसे देख दो दंडधर पास आ खड़े हुए। उनमें से एक बोला "आप उतर क्यों पड़ीं ? महाप्रतीहार ने तो आज्ञा दी थी कि सेठ के अंतःपुर के द्वार तक पालकी ले जाना"।

स्त्री—इसका कुछ विचार न करो और न यह बात महाप्रतीहार से कहने की है। मैं सेठ के घर पालकी पर बैठ कर न जाऊँगी। एक बार जिसकी मैं दासी रह चुकी हूँ अब राजभवन में दासी हो जाने के कारण उसके यहाँ राजारानी बनकर पालकी पर तो मुझसे जाते नहीं बनेगा। पालकी और कहार यहीं रहें, हाँ, तुम में से कोई दो आदमी मेरे साथ चले चलें।

इतना कहकर वह स्त्री आगे बढ़ी। कुछ दूर जाकर वह एक अट्टालिका के भीतर घुसी, और दोनों दंडधरों को द्वार पर ठहरने के लिए कहती गई। घर के आँगन में एक दासी हाथ में झाड़ू लिए खड़ी थी। वह स्त्री को भीतर आते देख पास आकर पूछने लगी बहू जी! कहाँ से आ रही हो?" स्त्री ने हँसकर घूँघट हटा दिया और कहा "अरे वाह, बसंतू की माँ! इतने ही दिनों में मनुष्य मनुष्य को भूल जाता है? इस घर में कितने दिन एक साथ रही, तीन ही बरस में ऐसी भूल गई मानों कभी की जान पहचान ही नहीं"। दासी के हाथ से झाड़ू छूट पड़ा, वह चकपका कर आनेवाली स्त्री का मुँह ताकती रह गई, फिर बोली "अरे कौन, तरला? पहचानूँ कैसे, भाई, तू जिस ठाट बाटसे आई है उसे देख तुझे कौन पहचान सकता है? मैं तो समझी कि कोई सेठानी यहाँ मिलने के लिए आई है। तेरे संबंध में तो बड़ी बड़ी बातें यहाँ सुनने में आती हैं। तू इस समय बड़े लोगों में हो गई है, राजभवन की दासी हो गई है; तेरा इस समय क्या कहना है! रूपयौवन का गर्व कहीं समाता नहीं है। अब अपने पुराने मालिक का घर तेरे ध्यान में क्या आने लगा?"

तरला—बसंतू की माँ! देखती हूँ कि झगड़ा करने की तेरी बान अब तक नहीं गई। अरे! तेरा रूप यौवन नहीं रहा तो क्या किसी का न रहे?

बसंतू की माँ—अरे बापरे बाप! मुँह जली राज भवन में जाकर दासी क्या हुई है कि धरती पर पाँव ही नहीं पड़ते हैं। मेरा रूप यौवन रहा या न रहा, तुझको क्या?

तरला—रहा या नहीं रहा, यह तो तू आप पानी में अपना मुँह देख कर समझ सकती है।

ब० माँ—तू ही अपना मुँह जाकर पानी में देख, मुझे क्या पड़ी है ? मुँह जली घर छोड़ कर गई फिर भी स्वभाव न छूटा। सवेरे-सवेरे यहाँ लड़ने आई है।

ज्यों-ज्यों बसंतू की माँ का क्रोध बढ़ता गया त्यों-त्यों उसका स्वर भी ऊँचा होता गया। उसे सुन कर अंतःपुर से किसी युवती ने पूछा "बसंतू की माँ! किसके साथ झगड़ा कर रही है?" बसंतू की माँ ने सुर सप्तम तक चढ़ा कर उत्तर दिया "यह है, तुम्हारी तरला, बड़ी चहेती तरला।" फिर प्रश्न हुआ "क्या कहा?" बसंतू की माँ गला फाड़ कर बोली "अरे तरला, तरला; सदा यौवन के उमंग में रहने वाली तरला। अब सुना?"

अंतःपुर से एक कृशांगी रमणी ने आकर तरला का हाथ थाम लिया और कहने लगी "अरी वाह री, राजरानी! इतने दिनों पीछे सुध हुई।" तरला ने प्रभु कन्या को प्रणाम करके कहा "बहिन! ऐसी बात न कहो।" युवती ने उदास स्वर से कहा "तू इस घर का मार्ग ही भूल गई थी क्या, तरला?"

तरला—बहिन! जो कुछ हुआ सब तुम्हारे ही लिए तो।

युवती ने आँचल से आँसू पोंछे और तरला का हाथ पकड़ कर अंतःपुर के भीतर ले गई। बसंतू की माँ ने अपना गर्जन क्रमशः धीमा करते-करते झाड़ू फिर हाथ में लिया और वह अपने काम में लग गई। तरला ने अपने पुराने अन्नदाता के घर में जाकर सबको यथा योग्य प्रणाम किया और फिर उनसे बातचीत करने लगी। यूथिका कुछ काल तक तो चुपचाप बैठी रही, फिर तरला का हाथ पकड़ कर उसे अपनी कोठरी में ले गई और किवाड़ भिड़ा लिए। तरला भूमि पर ही बैठने जाती थी पर सेठ की बेटी ने उसे जोर से खींच कर पलंग पर बिठाया और उसके गले में हाथ डाल कर बोली "तरला! अब मेरा क्या,

होगा ?" तरला ने हँस कर कहा "विवाह।" यूथिका ने उसका मुँह चूम कर पूछा "कब ?"

तरला—अभी।

यूथिका—किसके साथ ?

तरला—क्यों ? मेरे साथ।

यूथिका—तेरे साथ ब्याह तो न जाने कब का हो चुका है।

तरला—तो फिर अब और क्या होगा ? क्या दो के साथ करोगी ?

यूथिका—तेरे मुँह में लगे आग, तुझे जब देखो रसरंग ही सूझा रहता है। बोल ! क्या मैं अब यों ही मरूँगी ?

तरला—मरे तुम्हारा बैरी। तुम मर जाओगी तो सेठ के कुल में रासलीला कौन करेगा ?

यूथिका—रासलीला करेंगे यमराज। तरला, सच कहती हूँ अब मैं मरा ही चाहती हूँ। देखती हूँ कि मेरे दिन अब पूरे हो गए। तीन बरस बीत गए; इस बीच एक क्षण के लिए भी उनके साथ देखादेखी नहीं हुई। अब अंतिम बार देख लेती, यही बड़ी भारी इच्छा है।

यूथिका से और आगे कुछ बोला न गया, उसका गला भर आया। वह अपनी वाल्यसखी की गोद में मुँह छिपाकर रोने लगी ! तरला ने किसी प्रकार उसे समझाकर शांत किया और कहा "छिः बहिन, इतनी अधीर क्यों होती हो ? वे छूट गए हैं, कुशल आनंद से हैं। तुम्हारे ही लिए इतना सब करके मैंने उन्हें छुड़ाया है। इस समय वे श्रीयशोधवलदेव के सब से अधिक विश्वासपात्र हैं। महानायक उन्हें बहुत चाहते हैं। यह सब समाचार मैं तुम्हारे पास पहले भेज चुका हूँ।

यूथिका—ये सब बातें तो मैं सुन चुकी हूँ। पर उनका छूटना तो इस समय विष हो रहा है। पिता जी कहते हैं कि स्त्री के लिए जिसने संघ का आश्रय छोड़ दिया, पवित्र कषाय वस्त्र त्याग दिया उसे

मैं कन्यादान नहीं दे सकता।

तरला—यह मैं सुन चुकी हूँ।

यूथिका—तब फिर क्या होगा ?

तरला—घबराओ न।

यूथिका—तुझे पता नहीं है, पिता जी भीतर ही भीतर मेरे सर्वनाश का उपाय कर रहे हैं। वे मेरे विवाह की कई जगह बातचीत कर रहे हैं। यदि उन्होंने मेरा विवाह और कहीं कर दिया तो मैं प्राण दे दूँगी। अब फिर मैं उन्हें देख सकूँगी या नहीं कह नहीं सकती। पर इतनी बात जाकर उनसे कह देना कि यह शरीर अब दूसरे का नहीं हो सकता, दूसरा इसे छूकर कलंकित नहीं कर सकता। प्राण रहते तो पिता जी इसे दूसरे को अर्पित नहीं कर सकते। एक बार उन्हें देखने की बड़ी इच्छा है। तरला ! यदि मैं मर जाऊँ तो उनसे कहना कि तुम्हें देखने का अभिलाष हृदय में लिए ही यूथिका मर गई।

चित्त के वेग से सेठ की कन्या का गला भर आया। तरला से भी कुछ कहते सुनते न बना। वह यूथिका का सिर अपनी गोद में लेकर उसके लंबे लंबे केशों पर अपना हाथ फेरने लगी। बहुत देर पीछे तरला के मुँह से शब्द निकला। उसने कहा "यह बात भी मैं सुन चुकी हूँ। इसके भीतर बंधुगुप्त का चक्र भी चल रहा है, इसका पता यशोधवलदेव को गुप्तचरों से लग चुका है। उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है"। यूथिका ने सिर उठाकर कहा "मैं क्या कर सकती हूँ ?"

तरला—भाग सकती हो ?

यूथिका—किसके साथ ? बड़ा डर लगता है।

तरला—डरो न, मेरे साथ नहीं भागना होगा, तुम्हारे साथ रास रचनेवाले ही तुम्हें आकर ले जायँगे।

यूथिका—दुत।

लज्जा से यूथिका के मुँह पर ललाई दौड़ गई। तरला हँसती हँसती बोली "तो क्या करोगी, न जाओगी?"

यूथिका—पिता जी क्या कहेंगे?

तरला—अब दोनों ओर बात नहीं रह सकती। बोलो, तुम्हारे केवट से जाकर क्या कह दूँ। कह दूँ कि तुम्हारी नाव दलदल में जा फँसी है और दूसरे माँझी ने उस पर अधिकार कर लिया है?

यूथिका—तेरा सिर।

तरला—क्या करोगी, बोलो न।

यूथिका—जाऊँगी।

तरला—मैं भी यही उत्तर पाने की आशा करके आई थी।

यूथिका अपनी सखी को हृदय से लगाकर बार बार उसका मुँह चूमने लगी। अवसर पाकर तरला बोली "अरे उस बेचारे के लिए भी कुछ रहने दो, सब मुझको ही न दे डालो"। यूथिका ने हँसकर उसे एक घूँसा जमाया। तरला बोली "तो फिर अब बिलंब करने का काम नहीं।"

यूथिका—क्या आज ही जाना होगा?

तरला—हाँ! आज ही रात को।

यूथिका—किस समय?

तरला—दो पहर रात गए।

यूथिका—वे किस मार्ग से आएँगे?

तरला—अंतःपुर के उद्यान का द्वार खोल रखना, मैं आकर तुम्हें ले जाऊँगी। बाहर वे घोड़ा लिए खड़े रहेंगे। घोड़े पर चढ़ सकोगी न?

यूथिका—घोड़े पर मैं कैसे चढ़ूँगी।

तरला—तब तो फिर तुम जा चुकीं।

यूथिका—अच्छा तो उनसे जाकर कह दो कि वे जो-जो कहेंगे मैं करूँगी।

तरला—अच्छा, तो फिर मैं आऊँगी।

तरला यूथिका को गले लगा और सेठ के घर के और लोगों से विदा हो अट्टालिका के बाहर निकली।

सेठ के घर के द्वार से निकल तरला ने देखा कि बसंतू की माँ कहीं से लौट कर आ रही है। वह उसे देखते ही हँस कर बोली "बसंतू की माँ, मुझसे रूठ गई हो क्या?" बसंतू की माँ तो पहले से ही खलबलाई हुई थी। जब तक झगड़े में उसकी पूरी जीत न हो जाय तब तक वह चुप बैठने वाली नहीं थी। वह तरला की बात सुन गरज कर बोली "अरे तेरा सत्यानाश हो, सबेरे-सबेरे तुझे कोई काम-धंधा नहीं जो तू घर-घर झगड़ा मोल लेने निकली है?" तरला ने देखा कि बसंतू की माँ के समान कलहकलाकुशल स्त्री से पार पाना सहज नहीं है, व्यर्थ समय खोना ठीक नहीं। उसने बहुत सी मीठी-मीठी बातें कह कर बसंतू की माँ को अपने पराजय का निश्चय करा दिया। इसके पीछे वह दोनों दंडधरों के साथ पालकी की ओर चली गई। बसंतू की माँ भी गर्जन-तर्जन छोड़ कुछ बड़बड़ाती हुई सेठ के घर में घुस गई।

———

छठाँ परिच्छेद

विरहलीला

तरला प्रासाद में लौट कर अंतःपुर की ओर नहीं गई, सीधे यशोधवलदेव के भवन में घुसी। प्रतीहार और दंडधर उसे पहचानते थे इससे उन्होंने कुछ रोक-टोक न की। सम्मान दिखाते हुए वे किनारे हट गए। महानायक के विश्राम करने की कोठरी के द्वार पर स्वयं महाप्रतीहार विनयसेन हाथ में बेंत लिए खड़े थे। उन्होंने तरला का मार्ग रोक कर पूछा "क्या चाहती हो ?" तरला ने उत्तर दिया "महा नायक को एक बहुत ही आवश्यक संवाद देने जाती हूँ।" विनयसेन ने बेंत से उसका मार्ग रोक कर कहा "भीतर महाराजाधिराज हैं, अभी तुम वहाँ नहीं जा सकती।" तरला ने कहा "संवाद बहुत ही आवश्यक है।" विनयसेन ने कहा "तो संवाद मुझसे कह दो मैं जाकर दे आऊँ, नहीं तो थोड़ी देर ठहरो।" एक बार तो तरला के मन में हुआ कि विनयसेन अत्यंत विश्वासपात्र कर्मचारी हैं उनसे यूथिका की बात कह देने में कोई हानि नहीं। पर पीछे उसने सोचा कि ऐसी बात न कहना ही ठीक है। बहुत आगा-पीछा करके वह महाप्रतीहार से बोली "अपराध क्षमा करना। संवाद बहुत ही गोपनीय है, उसे प्रकट करने का निषेध है। मैं तब तक यहीं खड़ी हूँ। जब महाराज बाहर निकलें तो मुझे पुकार लीजिएगा।"

तरला एक खंभे की ओट में जा बैठी और सोचने लगी कि किस उपाय से यूथिका को बाहर लाऊँगी और लाकर कहाँ रखूँगी। बहुत देर सोचते-सोचते जब मन में कुछ ठीक न कर सकी तब वह उठ खड़ी

हुई और उसने यही निश्चय किया कि ऐसी-ऐसी बातें सुलझाना एक सामान्य दासी का काम नहीं, सिर खपाना व्यर्थ है। अपनी बुद्धि को धिक्कारती हुई वह महानायक के स्थान की ओर बढ़ी, पर दो ही चार कदम गई होगी कि उसने देखा कि द्वार पर सम्राट्, यशोधवलदेव, युवराज, कुमार माधवगुप्त और महामंत्री हृषीकेश शर्मा खड़े हैं। तरला उन्हें देख फिर एक खंभे की आड़ में छिप गई।

सम्राट् ने पूछा "तो तुम लोग कब जाना चाहते हो?" यशोधवल देव बोले "कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी को।"

सम्राट्—अच्छी बात है। माधव क्या तुम लोगों के पहले ही जायँगे? मैं तो समझता हूँ कि जब तक चरणाद्रि से कोई संवाद न आ जाय तब तक माधव का प्रस्थान करना उचित नहीं है।

यशो०—महाराज! प्रभाकरवर्द्धन यदि खुल्लमखुल्ला लड़ाई ठान दें तो भी महादेवी के सांवत्सरिक श्राद्ध पर किसी सम्राट्वंशीय पुरुष को जाना ही होगा। मार्ग बहुत दिनों का है। कुमार माधवगुप्त इतनी लंबी यात्रा शीघ्र न कर सकेंगे, उन्हें थानेश्वर पहुँचने में ६—७ महीने लग जायँगे। इससे शीघ्र यात्रा करना ही उचित है। मैं चाहता हूँ वंगदेश की चढ़ाई पर जाने के पहले मैं कुमार को उधर भेज दूँ।

सम्राट् ने लंबी साँस भरकर कहा "अच्छा, यही सही। यात्रा का कोई दिन स्थिर किया है?" यशोधवलदेवने उत्तर दिया "आश्विन के शुक्लपक्ष की किसी तिथि को जाना ठीक होगा"। हृषीकेश शर्म्मा कुछ न सुन सके थे। वे विनयसेन को पुकारकर पूछने लगे "कहो भाई!- क्या ठीक हुआ?" विनयसेन के उत्तर देने के पूर्व ही यशोधवलदेव ने चिल्लाकर कहा "आश्विन शुक्ल पक्ष में कुमार माधवगुप्त को थानेश्वर भेजना स्थिर किया है"। महामंत्रीजी हँसकर बोले "साधु! साधु!"। यह सब हो चुकने पर सब लोग सम्राट् को

अभिवादन करके चले गए; केवल यशोधवल सम्राट् से कहने लगे "महाराज! कल रात को एक गुप्तचर पकड़ा गया है, सुना है?"

सम्राट्—न। कहाँ पकड़ा गया?

यशो०—वह पिछली रात को नाव पर चढ़कर नगर से निकलने का यत्न कर रहा था, पर गौड़ीय नौसेना नाव समेत उसे पकड़ लाई।

सम्राट्—वह क्या मगध का ही रहनेवाला है?

यशो०—हमारे गुप्तचरों ने उसे पहचाना है। उसका नाम बुद्धश्री है। वह मगध का न होने पर भी साम्राज्य की प्रजा है। पिछली रात को जब महाराजाधिराज की आज्ञा से नौसेना प्रस्थान कर रही थी उसी समय साम्राज्य की नावों के साथ वह अपनी नाव मिलाकर नगर त्याग करने का प्रयत्न कर रहा था। पकड़े जाने पर बुद्धश्री कहने लगा कि मैं अंगदेश से वाराणसी जा रहा हूँ, वह मार्ग में ही पकड़ लिया गया है। गुप्तचरों ने संवाद दिया है कि वह इधर दो वर्ष से बराबर कपोतिक संघाराम में महास्थविर बुद्धघोष के पास रहता है। उसका क्या दंड विधान किया जाय?

सम्राट्—क्या दंड देना चाहते हो?

यशो०—वह गुप्तचर है इसमें तो कोई संदेह नहीं। गुप्तचर न होता तो भेस बदलकर रात को चुपचाप नगर से निकलने की चेष्टा क्यों करता? मेरा अनुमान है कि बुद्धघोष ने किसी उपाय से यह पता पाकर कि सेना चरणाद्रिगढ़ जा रही है इस पुरुष के द्वारा थानेश्वर संवाद भेजा था। बुद्धश्री बड़ा भयंकर मनुष्य है। पकड़े जाने के समय उसने दो मनुष्यों को घायल किया और कारागार में बड़ी साँसत सहकर भी अपना भेद नहीं दिया। मैं उसे वही दंड देना चाहता हूँ जो गुप्तचरों को देना चाहिए।

सम्राट्—क्या, प्राणदंड?

यशो०—महाराजाधिराज की जैसी आज्ञा हो।

सम्राट्—क्या कोई और दंड देने से न होगा?

यशो०—वह यदि जीता बचेगा तो आगे चलकर साम्राज्य का बहुत कुछ अनिष्ट करेगा।

सम्राट्—अभी न जाने कितनी नरहत्या करनी होगी। व्यर्थ किसी का प्राण लेने से क्या लाभ?

यशो०—तो फिर महाराजाधिराज की क्या आज्ञा होती है?

सम्राट्—उसे छोड़ देना ठीक न होगा?

यशो०—किसी प्रकार नहीं।

सम्राट्—तो फिर कारागार में डाल दो।

सम्राट् इतना कहकर चले गए! यशोधवलदेव फिर घर के भीतर जाना ही चाहते थे कि तरला खंभे की ओट से निकलकर आई और उसने प्रणाम किया। महानायक ने पूछा "तरला! क्या क्या कर आई?"

तरला ने हँसकर कहा "प्रभु के आशीर्वाद से सब कार्य्य सिद्ध कर आई"।

यशो०—अच्छी बात है। सेठ की लड़की घर से निकलना चाहती है?

तरला—इसी क्षण।

यशो०—तब फिर विलंब किस बात का?

तरला—प्रभु की यदि आज्ञा हो तो आज रात को ही सेठ की कन्या को ले आऊँ।

यशो०—अच्छा, तो फिर तुम्हारे साथ एक तो वसुमित्र जायगा, और कौन कौन जायँगे?

तरला—बहुत से लोगों को ले जाने की क्या आवश्यकता है?

यशो०—एक किसी और विश्वासी आदमी का साथ रहन अच्छा है।

तरला—तो फिर किसको जाना होगा ?

यशो०—तुम अपना किसी को ठीक कर लो।

तरला—भला, मैं आदमी कहाँ पाऊँगी ?

यशोधवलदेव हँसते हँसते बोले "ढूँढ़कर देखो, कोई न कोई मिल जायगा"। इतना कहकर वे कोठरी के भीतर चले गए।

तरला मन ही मन सोचने लगी कि यह क्या पहेली है, मैं आदमी कहाँ पाऊँगी ? महानायक की बात का अभिप्राय न समझ वह ठगमारी सी खड़ी रही। अकस्मात् उसे आचार्य देशानंद का ध्यान आया। वह हँस पड़ी। जब से देशानंद संघाराम से छूट कर आया है तब से बराबर प्रासाद ही में रहता है। यशोधवलदेव ने उसे अभय दान देकर उसके निर्वाह का प्रबंध कर दिया है। देशानंद अपने प्राण के भय से प्रासाद के बाहर कभी पैर नहीं रखता और किसी बौद्ध को देखते ही गाली देने लगता है। वह सदा अपने बनाव सिंगार में ही लगा रहता है। उसने सिर पर लंबे-लंबे केश रखे हैं। कई पत्तियों का लेप चढ़ा कर वह सिर, मूँछ और दाढ़ी के बाल रँगे रहता है। जब कोई उससे उसका परिचय पूछता है तब वह कहता है कि महानायक यशोधवलदेव ने मेरी वीरता देख मुझे अपना शरीर रक्षी बनाया है, इसी से मैं प्रासाद के बाहर नहीं जाता। जब महानायक वंग देश की चढ़ाई पर जायँगे तब मुझे भी जाना होगा। बहुत दिनों पर तरला को अपने पुराने सेवक का ध्यान आया। वह अपनी हँसी किसी प्रकार न रोक सकी। वह झट से यशोधवलदेव के वासस्थान से निकल तोरण की ओर चली। प्रासाद के दूसरे और तीसरे खंड को पार करती वह प्रथम खंड के तोरण पर पहुँची जहाँ प्रतीहारों और द्वारपालों का डेरा था।

तरला ने कई कोठरियों में जा-जा कर देखा, पर देशानंद का कहीं

पता न लगा। उसे न पाकर वह कुछ चिंता में पड़ गई क्योंकि समय बहुत कम रह गया था। दो-चार और कोठरियों में देख कर तरला प्रथम खंड वाले तोरण के बाहर निकल इधर-उधर ताकने लगी। उसने देखा कि खाँई के किनारे एक बड़े पीपल के नीचे देशानंद बैठा है। उसके सामने एक बड़ा सा दर्पण रखा है और वह अपने बाल सँवार रहा है।

प्रासाद में आने के पीछे तरला और देशानंद की देखा-देखी कभी नहीं हुई थी। तरला को देखने की सदा उत्कंठा बनी रहने पर भी देशानंद को यह भरोसा नहीं था कि कभी प्रासाद के अंतःपुर में जाने का अवसर मिलेगा। बहुत दिनों पर तरला को आते देख देशानंद आनंद के मारे आपे से बाहर हो गया। तरला ने उसका स्त्री वेश बना कर उसे मंदिर में बंद कर दिया था, उसके कारण उसका प्राण जाते-जाते बचा था, यशोधवलदेव यदि समय पर न पहुँच जाते तो भिक्खु लोग उसे सीधे यमराज के यहाँ पहुँचा देते, ये सब बातें क्षण भर में वृद्ध देशानंद भूल गया। तरला को देखते ही उसकी नस-नस फड़क उठी। उसे तनमन की सुध न रही। पहले तो वह समझा कि तरला किसी काम से प्रासाद के बाहर जा रही है, पर तरला को अपनी ओर आते देख उसका भ्रम दूर हो गया। अब तो उसे मानलीला सूझने लगी। वह समझ गया कि तरला उसी की खोज में निकली है। वृद्ध सिर नीचा करके अपने पके बालों को सँवारने में लग गया।

तरला ने देशानंद के पास आकर साष्टांग दंडवत की और मुसकराती हुई बोली "बाबाजी! कैसे हैं? दासी को पहचानते हैं?" देशानंद ने कोई उत्तर न दिया, मुँह फेर कर बैठ रहा। तरला समझ गई कि बाबाजी ने मान किया है, मान किसी प्रकार छुड़ाना होगा। वह हँसती हुई देशानंद के और पास जा बैठी। अब तो वृद्ध का चित्त डाँवाडोल हो गया, पर उसने अपना मुँह न फेरा। तरला ने देखा कि

देशानंद को मना लेना बहुत कठिन नहीं है। उसने एक ठंढी साँस भर कर कहा "पुरुष की जाति ऐसी ही होती है, मैं तीन वर्ष से जिसे देखने के लिए मर रही हूँ वह मेरी ओर आँख उठाकर देखता तक नहीं है।" अब तो देशानंद से न रहा गया, वह मुँह फेर कर बोला "तुम—तुम—फिर कैसे?" तरला ने वृद्ध की ओर कटाक्ष करके कहा "अब क्यों न ऐसा कहोगे? तुम्हारे लिए मेरी जाति गई, मान गया, लोकलज्जा गई अब तुम ऐसा न कहोगे तो फिर कलिकाल की महिमा ही क्या रहेगी?" देशानंद चकित होकर कहने लगा "तुम क्या कह रही हो, मेरी समझ में नहीं आता। अब क्या बंधु गुप्त की गुप्तचर बन कर मुझे पकड़ाने आई हो?" तरला ने देखा कि देशानंद का मान कुछ गहरा है। अब तो उसने स्त्रियों का अमोघ अस्त्र छोड़ा। अंचल से वह अपनी आँखें पोंछने लगी। देखते-देखते उसके नील कमल से नेत्रों में जल झलकने लगा। देशानंद घबरा कर उठा और बार-बार पूछने लगा "क्या हुआ? क्या हुआ?"

तरला ने जाना कि इतनी देर पीछे अब मान भंग हुआ। वह देशानंद की बात का कोई उत्तर न देकर रोने लगी। अब तो बुड्ढा एक बारगी पिघल गया। एक दंड पीछे जब तरला ने रोने से छुट्टी पाई तब देशानंद को उसने अच्छी तरह समझा दिया कि उसके मंदिर में बंद होने का कारण वह न थी, अदृष्ट था। तरला ने कहा "मैंने ही तुम्हें छुड़ाने के लिए दूसरे दिन सबेरे यशोधवलदेव को भेजा था। देशानंद को अपने भ्रम का पूर्ण निश्चय हो गया और वह खिल उठा। तरला ने अवसर देख धीरे से कहा "बाबाजी! आज मैं एक बड़े काम के लिए तुम्हारे पास आई हूँ।"

देशा०—कहो, कहो, क्या काम है?

तरला—बात बहुत ही गुप्त रखने की है, पर तुमसे कोई बात छिपाना तो ठीक नहीं। पर देखना किसी पर प्रकट न होने पावे।

देशा०—न, न, भला ऐसा कभी हो सकता है ?

तरला—देखो, आज राजकुमारी अभिसार को जायँगी। मेरे साथ किसी विश्वासपात्र को चलना चाहिए। बोलो, चलोगे ?

देशा०—अकेले ?

तरला—नहीं, नहीं, मैं साथ रहूँगी।

देशा०—तब तो अवश्य चलूँगा।

तरला—राजकुमारी को कुंजकानन में पहुँचा कर हम दोनों को लौट आना होगा। समझ गए न ?

देशानंद बहुत अच्छी तरह समझ गया, कुछ समझना बाकी न रह गया। उसने हँसते-हँसते तरला का हाथ पकड़ा। तरला हाथ छुड़ा दूर जा खड़ी हुई और बोली, "तो मैं रात को आकर तुम्हें धीरे से बुला ले जाऊँगी, जागते रहना।" देशानंद बोला "बहुत अच्छा।"

सातवाँ परिच्छेद

समुद्रगुप्त का गीत

पुराने राजप्रासाद के निचले खंड की एक कोठरी में यदुभट्ट भोजन करके लेटा हुआ है। जान पड़ता है बुड्ढे को झपकी आ गई है क्योंकि यशोधवलदेव कोठरी में आए और उसे कुछ पता न लगा। यशोधवलदेव ने उसकी चारपाई के पास जाकर ज्योंही नाम लेकर

पुकारा वह चकपकाकर उठ बैठा और महानायक को सामने खड़ा देख घबराकर नीचे खड़ा हो गया। महानायक ने पूछा "तुम्हारा भोजन हो गया?" यदु ने कहा "हाँ, धर्मावतार! कभी का। प्रभु ने इतनी दूर आने का कष्ट..."।

यशो०—हाँ! तुमसे कुछ काम है।

यदु०—तो मैं बुला लिया गया होता।

यशो०—बात बहुत गुप्त रखने की है, इसीसे मैं ही टहलता टहलता इधर चला आया।

यदु०—प्रभु! विराजेंगे?

यदु ने एक फटा सा आसान लाकर भूमि पर बिछा दिया। महानायक उस पर बैठ गए और भट्ट से बोले "यदु! तुम्हें एक काम करना होगा"।

यदु०—जो आज्ञा हो, प्रभु!

यशो०—हम लोगों के युद्धयात्रा करने के पहले एक दिन तुम्हें समुद्रगुप्त का गीत सुनाना होगा। तुम्हें स्मरण होगा कि जब हम लोग युवा थे तब यात्रा के पहले तुम गीत सुनाया करते थे।

यदु०—यह तो कोई इतनी बड़ी बात नहीं थी, प्रभु! समुद्रगुप्त की विजययात्रा के गीत मैं सैकड़ों बार गा चुका हूँ।

यशो०—सब कथा तो तुम्हें स्मरण है, न?

यदु०—स्मरण कहाँ तक रह सकती है? अब तो महाराज की आज्ञा से भट्ट चारणों का गाना बंद ही हो गया है; यदि भूल जाऊँ तो आश्चर्य्य ही क्या है? महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की प्रशस्तियाँ तो बहुत लोगों ने लिखी हैं, किसकी गाऊँ?

यशो०—मैं तो समझता हूँ कि हरिषेण की प्रशस्ति सब से अच्छी है। तुम्हें स्मरण है, न?

यदु०—पूरी पूरी। इतने दिनों तक कोई सुननेवाला ही न था। महाराज के निषेध करने पर भी मैंने कई बार युवराज के बहुत कहने से उन्हें गुप्तवंश की कीर्त्तिकथा गाकर सुनाई है। कभी कभी मैंने कहानी के बहाने बहुत सी बातें कह सुनाई हैं। पर महाराज इसके लिए भी एक दिन मुझपर बहुत बिगड़े थे।

यशो०—वे सब दिन अब गए, यदु! अच्छा बताओ, कब गाओगे।

यदु०—आज्ञा हो तो इसी समय सुनाऊँ।

यशो०—केवल मुझे सुनाने से नहीं होगा, यदु! जो लोग अपने जीवन भर में पहले-पहल लड़ाई पर जा रहे हैं उन्हें सुनाना होगा।

यदु०—तो फिर जिन्हें-जिन्हें सुनाना हो उन्हें आप इकट्ठा करें।

यशोधवलदेव ने ताली बजाई। एक प्रतीहार बाहर खड़ा था, उसने कोठरी में आकर प्रणाम किया। यशोधवल ने नरसिंहदत्त को बुलाने की आज्ञा दी। प्रतीहार के चले जाने पर महानायक ने भट्ट से पूछा "यदु! तुम अकेले गा सकते हो न? गंगा तट पर शिविर में चल कर गाना होगा।" यदु ने आनंद में फूल कर कहा "प्रभु किसी बात की चिंता न करें। यदु के कंठ में अब तक बल है, किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं।" थोड़ी देर में प्रतीहार नरसिंह को साथ लिए आ पहुँचा। नरसिंहदत्त के प्रणाम का उत्तर देकर महाकायक ने पूछा "कुमार कहाँ हैं?"

नर०—महादेवी के मंदिर में।

यशो०—उनसे जाकर कहो कि अभी इसी समय शिविर में चलना होगा। यात्रा के पहले मंगल गीत सुनना है। आज यदु भट्ट समुद्रगुप्त की विजय यात्रा का गीत गाएँगे; सब लोग तैयार रहें।

नर०—हम सब लोग अभी युवराज के साथ शिविर में चलते हैं।

नरसिंहदत्त चले गए। महानायक भट्ट से बोले "यदु ! चलो अब हम लोग भी चलें।" यदु भट्ट ने अपना उत्तरीय लिया और दोनों पुराने प्रासाद से चल कर नए प्रासाद में पहुँचे।

तीसरे पहर जब महानायक यशोधवलदेव का रथ गंगा तट पर शिविर के बीच पहुँचा उसके पहले ही युवराज शशांक और उनके साथी वहाँ पहुँच चुके थे। मैदान में सारी अश्वारोही और पदातिक सेना सशस्त्र होकर कई पंक्तियों में खड़ी थी। सब मिला कर बीस सहस्र पदातिक और सात सहस्र अश्वारोही नए-नए अस्त्रशस्त्रों और नए-नए परिधानों से सुसज्जित आसरे में खड़े थे। गंगा में गौड़ देश के माझियों-वाली तीन सौ नावें दस पंक्तियों में खड़ी थीं। महानायक को देखते ही तीस सहस्र मनुष्यों ने एक स्वर से जयध्वनि की। महानायक यशोधवलदेव और यदु भट्ट रथ पर से उतरे। युवराज की आज्ञा से तीनों सहस्र गौड़ीय नाविक भी नावों पर से उतर कर अलग श्रेणीबद्ध होकर खड़े हुए। रामगुप्त, यशोधवलदेव, युवराज शशांक, कुमार माधव-गुप्त, नरसिंहदत्त, माधववर्मा और अनंतवर्मा इत्यादि नायक सेना दल के बीच में खड़े हुए। वृद्ध भट्ट वीणा लेकर सबके सामने बैठा।

वीणा बजने लगी। पहले तो धीरे धीरे, फिर द्रुत, अतिद्रुत झन-कार निकल कर एकबारगी बंद हो गई। फिर झनकार उठी और उसके साथ साथ वृद्ध का गुनगुनाना सुनाई पड़ा। वीणा के साथ गीत का स्वर मिलकर क्रमशः ऊँचा होने लगा। एकत्र जनसमूह चुपचाप खड़ा सुनने लगा। भट्ट गाने लगा।

"यह कौन चला है ? आर्य्यावर्त्त और दाक्षिणात्य को कंपित करता यह कौन चला है ? सैकड़ों नरपतियों के मुकुटमणि जिसके गरुड़ध्वज को अलंकृत कर रहे हैं, समुद्र से लेकर समुद्र तक, हिमालय से लेकर कुमारिका तक सारा जंबूद्वीप जिसकी विजयवाहिनी के भार से काँप उठा है वह कौन है ? महाराजाधिराज समुद्रगुप्त"।

"मागध वीरो ! समुद्रगुप्त का नाम सुना है ? खेत की घास के समान जिसने अच्युत और नागसेन को उखाड़ फेंका, जिसके पदचिह्न का अनुसरण करके सैकड़ों वर्ष पीछे तक मागध सेना निरंतर विजय-के लिए निकलती रही वह समुद्रगुप्त ही थे"।

"सात सौ वर्ष पर मगधराज फिर विजययात्रा के लिए निकले हैं। आर्य्यावर्त्त में रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, नंदी, बलवर्म्मा प्रभृति राजाओं के अधिकार लुप्त हो गए, दिग्विजयाभिलाषी चंद्रवर्म्मा छड़ी खाए हुए कुत्ते के समान भाग खड़े हुए, नलपुर में गणपतिनाग का ऊँचा सिर नीचा हुआ, आर्य्यावर्त्त फिर एक छत्र के नीचे आया। आटविक राजाओं ने सिर झुकाकर सेवा स्वीकार की, सारा आर्य्यावर्त्त जीत लिया गया, अब समुद्रगुप्त की विजयवाहिनी दक्षिण की ओर यात्रा कर रही है"

"महाकोशल में महेंद्र का प्रताप अस्त हुआ, भीषण महाकांतार में व्याघ्रराज ने कुत्ते के समान पूँछ हिलाते हुए दासत्व स्वीकार किया। पूर्व समुद्र के तट पर मेघमंडित महेंद्रगिरि पर स्थित दुर्जय कोट्टु दुर्गाधिप स्वामिदत्त, पिष्टपुरराज महेंद्र, केरल के मंटराज, एरंडपल्ल के दमन ने अपना अपना सिंहासन छोड़ सामंतपद ग्रहण किया"।

"मागध सेना दाक्षणात्य की ओर चली है। सैकड़ों लड़ाइयाँ जीतनेवाले पल्लवराज ने कांचीपुरी में आश्रय लिया, किंतु कांची का पाषाणप्राचीर और शंकर का त्रिशूल भी विष्णुगोप की रक्षा न कर सका। नगर के तोरण पर गरुड़ध्वज स्थापित हो गया। अविमुक्तक्षेत्र में नीलराज, वेंगीनगर में हस्तिवर्म्मा और पलक्क में उग्रसेन ने दाँतों तले तृण दबाकर अपनी पगड़ी महाराजाधिराज के पैरों पर रख दी। पर्वतवेष्ठित देवराष्ट्र में कुबेर और कुस्थलपुर में धनंजय राज्यच्युत हुए। डर के मारे समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल और कर्त्तृपुर के नरपतियों ने अधीनता स्वीकार करके कर दिया"।

"विजयवाहिनी अब मगध लौट रही है। अवंतिका के मालव, आभीर और प्रार्जुन; आटविक प्रदेश के सनकानीक, काक और खरपरिक; सप्तसिंधु के अर्जुनायन, यौधेय और मद्रक गणों ने भी, जिन्होंने कभी राजतंत्र स्वीकार नहीं किया था, महाराजाधिराज के चरणों पर सिर झुकाया।"

"महाराजाधिराज पाटलिपुत्र लौट आए हैं। दैवपुत्रसाहि, साहानुसाहि, शक, मुरुण्ड आदि वर्बर म्लेच्छ राजाओं ने भयभीत होकर अनेक प्रकार के अलभ्य रत्न भेजे हैं। समुद्र पार सिंहलराज का सिंहासन भी काँप उठा है। शत्रुओं की कुलांगनाओं ने सब लोक लज्जा छोड़ विजयी सेना दल की अभ्यर्थना की है। सैकड़ों राजाओं के मुकुटों से रत्न निकाल निकाल कर महाराजाधिराज पाटलिपुत्र नगर के राजपथ पर भिक्षुकों की झोली में फेंकते जा रहे हैं। नृग, नहुष, ययाति, अंबरीष आदि राजाओं ने भी ऐसा दिग्विजय न किया होगा।"

"कलि में अश्वमेध यज्ञ किसने किया? जिन्होंने दासी-पुत्र के वंश को मगध के पवित्र राजसिंहासन पर से हटाया, जिसके भय से वायव्य दिशा के पर्वतों के यवन तक काँपते रहते थे उन्होंने किया। और दूसरा कौन करेगा? किसका अश्व दिगंत से दिगंत तक घूम कर आया है? किसके यज्ञ की दक्षिणा पा कर ब्राह्मण फिर ब्राह्मण हुए हैं? ऐसा कौन है? महाराजाधिराज समुद्रगुप्त।"

गीत की ध्वनि थम गई। सहस्रों कंठों से जयध्वनि उठी। भीषण नाद सुन कर कपोतिक संघाराम की गद्दी में बैठे महास्थविर बुद्धघोष दहल उठे।

फिर गीत की ध्वनि उठी—

"भाइयो! दो सौ वर्ष बीत गए, पर मगध मगध ही है। फिर विजय यात्रा के लिए मगध सेना निकला चाहती है। पूरा भरोसा है

कि तुम प्राचीन मगध का मान, इस प्राचीन साम्राज्य का मान, अपने पुराने महानायक का मान रखोगे। समुद्रवत् मेघनाद के तट पर तुम्हारे बाहुबल की परीक्षा होगी, मेघनाद के काले जल को शत्रुओं के रक्त से लाल करना होगा, वैरियों की वधुओं की माँग पर की सिंदूर रेखा मिटानी होगी। मागध वीरो! सन्नद्ध हो जाओ।"

गीत बंद हुआ। तीस सहस्र कंठों से फिर भीषण जयध्वनि उठी। सेनापति के आदेश से सेनादल शिविर की ओर लौटा। यशोधवलदेव धीरे-धीरे भट्ट के पास जा कर बोले "यदु! हरिषेण का गीत आज उतना अच्छा क्यों न लगा?" यदु ने चकपका कर कहा "मैंने तो भरसक चेष्टा की।" यशोधवलदेव ने कहा "फिर न जाने क्यों नहीं अच्छा लगा? उस दिन स्कंदगुप्त के गीत ने जैसा मर्मस्थल स्पर्श किया था वैसा आज यह गीत न कर सका।" भावी विपत्ति की आशंका से वृद्ध महानायक का हृदय व्याकुल हो उठा। सब लोग शिविर से नगर की ओर लौट पड़े।

आठवाँ परिच्छेद

राजकुमारी का अभिसार

रात के सन्नाटे में तरला ने प्रासाद के बाहर निकल देशानंद की कोठरी के किवाड़ खटखटाए। देशानंद तो जागता ही था, उसने झट उठ कर किवाड़ खोले और कहा "भीतर आ जाओ।" तरला बोली "विलंब बहुत हो गया है, अब भीतर आने का समय नहीं है। जल्दी तैयार होकर आओ।" देशानंद बाहर आ खड़ा हुआ। उसका ठाट-बाट देख तरला चकित हो गई। वह देर तक उसका मुँह ताकती रही। वृद्ध ने मजीठ में रँगा वस्त्र धारण किया था, सिर पर चमचमाती पगड़ी बँधी थी, कटिबंध में तलवार लटक रही थी और हाथ में शूल था। वृद्ध सोचने लगा कि तरला मेरे वीरवेश पर मोहित हो गई है। उसने धीरे से पूछा "मैं कुछ अच्छा लग रहा हूँ?" तरला बोली "अच्छे तो तुम न जाने कितने दिनों से लग रहे हो। यह तो बताओ, यह सब पहनावा तुम्हें मिला कहाँ?"

देशा०—कुछ मोल लिया है, कुछ महानायक ने दिया है।

तरला—रुपया कहाँ मिला?

देशा०—आते समय तुम्हारे लिए संघाराम के भंडार से धन निकाल लाया था।

देशानंद तरला के साथ-साथ चलने लगा। अकस्मात् एक गहरी ठोकर खा कर गिर पड़ा। तरला ने पूछा "क्या हुआ?" देशानंद बोला "कुछ नहीं, पैर फिसल गया था।" पर बात यह थी कि रात को

देशानंद को अच्छी तरह सुझाई नहीं पड़ता था। पर प्राण जाय तो जाय देशानंद भला यह बात कभी तरला के सामने कह सकता था? कुछ दूर चलते-चलते एक पेड़ की मोटी जड़ को न देख देशानंद फिर टकरा कर गिरा। तरला समझ गई कि बुड्ढे को रतौंधी होती है। उसने मन में सोचा, चलो अच्छी बात है। बुढ्डा रात को कुछ देख न सकेगा; सेठ की लड़की को ही राजकुमारी समझेगा। तरला देशानंद को साथ लिए प्रासाद के तोरण के बाहर हुई। यह देख देशानंद बोला "तुम अंतःपुर में तो गई नहीं?" तरला ने हँस कर कहा "तुम्हारी बुद्धि तो चरने गई है। भला इतने लोगों के बीच मैं तुम्हें लेकर अंतः-पुर में जाऊँगी तो तुम्हारी तो जो दशा होगी वह होगी ही, मैं भी प्राण से हाथ धोऊँगी।" देशानंद सिटपिटा गया, पर फिर भी उसने पूछा "तो फिर राजकुमारी कैसे आएँगी?" तरला ने वस्त्र के नीचे से रस्सियों की एक सीढ़ी निकाल कर दिखाई और बोली "राजकुमारी इसी के सहारे नीचे उतरेंगी।" इतने में दोनों राजपथ छोड़ कर सेठ की कोठी के पास पहुँचे। यूथिका के पिता के घर पहुँचते ही तरला पीछे की फुलवारी में घुसी वह यूथिका से फुलवारी की ओर का द्वार खोलने के लिए कह आई थी, पर पास जाकर उसने देखा कि किवाड़ भीतर से बंद हैं।

देशानंद के सहारे तरला दीवार पर चढ़ी और रस्सी की सीढ़ी लटकाकर नीचे उतर गई। देशानंद रस्सी का छोर पकड़े दीवार के उस पार ही खड़ा रहा। थोड़ी देर में तरला लौट आई और बोली "बाबाजी! तुम इस पार आओ। फुलवारी वाले द्वार पर न जाने किसने ताला चढ़ा दिया है, वह किसी प्रकार खुलता नहीं है। देशानंद दीवार पर चढ़ कर तरला के पास गया। बहुत चेष्टा करने पर भी द्वार न खुल सका। अंत में तरला बोली—"बाबाजी! तुम दीवार से लगकर उधर अँधेरेमें छिपे रहो, मैं राजकुमारी के नागर को बुलाने जाती हूँ।"

दो पहर रात बीते चंद्रोदय हुआ। चाँदनी धुँधली रहनेपर भी देशानंद की दृष्टि को बहुत कुछ सहारा था। तरला के आदेशानुसार वह उजाले से हट कर दीवार की छाया में छिप कर खड़ा हुआ। तरला फिर उसी प्रकार दीवार पर चढ़ कर बाहर फुलवारी में उतरी। धीरे-धीरे फुलवारी से निकल कर वह सेठ के घर से लगी हुई एक गली में गई। वहाँ अँधेरे में एक आदमी पहले से छिपा था, उसने पूछा "कौन, तरला ?" तरला बोली "हाँ, जल्दी आइए।"

"घोड़ा लिए चलें ?"

"डर क्या है ?"

"क्या हुआ ?"

"अभी मैं भीतर नहीं जा सकी हूँ। सेठ ने फुलवारी के द्वार पर ताला लगा रखा है।"

तरला फिर फुलवारी की ओर चली, वसुमित्र घोड़े पर पीछे-पीछे चला। दोनों रस्सी के फंदे के सहारे दीवार लाँघ कर सेठ के घर में पहुँचे। वसुमित्र ने भी ताला खोलने का बहुत यत्न किया, पर वह न खुला। यह देख तरला बोली "तो फिर सेठ की बेटी को भी दीवार लाँघनी पड़ेगी, अब और विलंब करना ठीक नहीं। रात बीत चली है। मैं अंतःपुर में जाने का एक और मार्ग जानती हूँ।" वसुमित्र ने उसकी बात मान ली। तरला ने देशानंद से कहा "देखो! बाबाजी! तुम यहीं छिपे रहना, और किसी को आते देखना तो रस्सी की सीढ़ी हटा लेना।" देशानंद ने उत्तर दिया "तुम लोग बहुत देर न लगाना। रात को भूत-प्रेत निकलते हैं, कहीं..." तरला ने हँसकर कहा-"तुम्हें कोई भय नहीं है, मैं अभी लौटती हूँ।" दोनों घर के भीतर घुसे। चलते-चलते वसुमित्र ने पूछा "तरला! तुम्हारे साथ वह कौन है ?"

तरला—नहीं पहचाना ?

वसु०—न।

तरला—इतने दिन एक साथ रहे, फिर भी नहीं पहचानते।

वसु०—बताओ, कौन है ?

तरला—देशानंद।

वसु०—तुम कहती क्या हो ?

तरला—लौटते समय देख लेना।

दोनों धीरे धीरे पैर रखते सेठ की लड़की के शयनकक्ष में गए।

इधर तरला और वसुमित्र घर के भीतर गए उधर देशानंद बड़े संकट में पड़ा। तरला जब वसुमित्र को बुलाने गई थी तभी से वह मन में डर रहा था। पर तरला के सामने वह यह बात मुँह से न निकाल सका। देशानंद ने कोष से तलवार निकालकर सामने रखी, बरछे का फल देखा भाला। इससे उसके मन में कुछ ढाढ़स हुआ। पर थोड़ी देर में जो पीछे फिरकर देखा तो दो एक आम के पेड़ों के नीचे गहरा अँधेरा दिखाई पड़ा। उसके जी में फिर डर समाया। वह धीरे धीरे अंतःपुर के द्वार पर जा खड़ा हुआ। उसने फुलवारी की ओर उचक-कर देखा कि वसुमित्र का घोड़ा ज्यों का त्यों चुपचाप खड़ा है। उसके मन में फिर ढाढ़स हुआ। उसने सोचा कि कोई भूत प्रेत होता तो घोड़े को अवश्य आहट मिलती।

देखते देखते एक दंड हो गया, फिर भी तरला लौटकर न आई। उद्यान में ओस से भींगी हुई डालियाँ धीरे धीरे झूम रही थीं। पत्तों पर बिखरी हुई ओस की बूँदों पर पड़कर चाँदनी झलझला रही थी। देशानंद को ऐसा जान पड़ा कि श्वेत वस्त्र लपेटे एक बड़ा लंबातड़ंगा मनुष्य उसे अपनी ओर बुला रहा है। उसका जी सन हो गया, उसे कुछ न सूझा। बरछा और तलवार दूर फेंक जिधर तरला और वसुमित्र गए थे एक साँस उसी ओर दौड़ पड़ा। थोड़ी दूर पर एक गली थी

जो सीधे अंतःपुर तक चली गई थी। गली के छोर पर एक छोटा सा द्वार था जिसे वसुमित्र भीतर जाते समय खोलता गया था। देशानंद उसी द्वार से भागा भागा सेठ के अंतःपुर में जा पहुँचा। उसे कुछ सुझाई न पड़ा। अँधेरे में वह इधर उधर भटकने लगा।

उधर चार वर्ष पर वसुमित्र और यूथिका का मिलन हुआ। पहले अभिमान, फिर मान, उसके पीछे मिलन का अभिनय होने लगा! तरला द्वार पर खड़ी खड़ी उन दोनों को झटपट बाहर निकलने के लिए बार बार कह रही थी। पर उसकी बात उन दोनों प्रेमियों के कानों में मानों पड़ती ही न थी। यूथिका बीच बीच में यह भी सोचती थी कि पिता का घर सब दिन के लिए छूट रहा है। वह कभी अपनी प्यारी बिल्ली का प्यार करने लगती कभी फिर प्रेमालाप में डूब जाती। कभी पिंजड़े में सोए हुए सुए को चुमकारने लगती, कभी तरला की फिटकार सुनकर पिता का घर सब दिन के लिए छोड़ने की तैयारी करने लगती। इसी में तीन पहर रात बीत गई। नगर के तोरणों पर और देवमंदिरों में मंगलवाद्य बजने लगा। उसे सुनते ही तरला यूथिका का हाथ पकड़ उसे कोठरी के बाहर खींच लाई। वसुमित्र पीछे पीछे चला। सेठ की बेटीने आंसू गिराकर पिता का घर छोड़ा।

तरला ने फुलवारी की दीवार के पास आकर देखा कि देशानंद नहीं हैं। अंतःपुर के द्वार के पास उसका भाला और तलवार पड़ी है। वसुमित्र यूथिका को चुप कराने में लगा था। तरला ने उससे धीरे से कहा "हमारे बाबा जी तो नहीं हैं!" वसुमित्र बोला "बड़ा आश्चर्य है, गया कहाँ?"

इसी समय सेठ के घर में किसी भारी वस्तु के गिरने का धमाका हुआ और उसके साथ ही वसंतू की माँ 'चोर' 'चोर' करके चिल्ला उठी। उसे सुन तरला बोली "भैया जी! बड़ा अनर्थ हुआ। बुड्ढा

अवश्य हम लोगों को ढूँढ़ता ढूँढ़ता अंतःपुर में जा पहुँचा। उसे रात को दिखाई नहीं पड़ता, वह निश्चय किसी के ऊपर जा गिरा। अब चटपट यहाँ से भागो"। तरला की बात पूरी भी न हो पाई थी कि यूथिका न जाने क्या कहकर मूर्च्छित हो गई। यदि वसुमित्र उसे थाम न लेता तो वह गिर जाती। वसुमित्र ने पूछा "तरला, अब क्या किया जाय ?" तरला ने कहा "यूथिका को मैं थामे हूँ, आप चटपट दीवार पर चढ़ जाइए"। तरला ने अचेत यूथिका को थामा। वसुमित्र उछल-कर दीवार पर चढ़ गया और उसने यूथिका को ऊपर खींच लिया। तरला भी देखते देखते यूथिका को थामने के लिए दीवार पर जा पहुँची। वसुमित्र धीरे से उस पार उतर गया और उसने यूथिका को हाथों पर ले लिया। तरला नीचे उतर कहने लगी "भैया जी! झट घोड़े पर चढ़ो और अपनी बहू जी को भी लेलो"। वसुमित्र घोड़े पर बैठा और उसने यूथिकाको गोद में ठहरा लिया। तरला बोली "अब चल दो, घर के सब लोग जाग पड़े हैं। सीधे महनायक की कोठरी में चले जाना, वहाँ सब प्रबंध पहले से है"। वसुमित्र कुछ आगा पीछा करने लगा और बोला "और तुम ?"। तरला ने कहा "मेरी चिंता न करो। यदि मैं भागना चाहूँ तो पाटलिपुत्र में अभी ऐसा कोई नहीं जन्मा है जो मुझे पकड़ ले।" वसुमित्र तीर की तरह घोड़ा छोड़कर देखते देखते अदृश्य हो गया।

इधर बसंतू की माँ का चिल्लाना सुन घर और टोले के सब लोग जाग पड़े। यूथिका के पिता के आदमी दीया जलाकर चोर को ढूँढ़ने लगे। तरला यह रंग ढंग देख धीरे से खिसक गई। सचमुच अँधेरे में देशानंद बसंतू की माँ के ऊपर जा गिरा था। बसंतू की माँ कोई ऐसी वैसी स्त्री तो थी नहीं। वह देशानंद को दोनों हाथों से कसकर पकड़े रही और 'चोर चोर' करके टोले भर का कान फोड़ती रही। घर के लोगों ने जागकर देखा कि सचमुच एक नया आदमी घर में

घुस आया है और बसंतू की माँ उसे पकड़े हुए है। बिना कुछ पूछे-पाछे पहले तो सब के सब मिलकर चोर को मारने लगे। मार खाते खाते घबराकर देशानंद कहने लगा "भाई! मैं चोर नहीं हूँ, मुझे मत मारो। मैं महानायक यशोधवलदेव का शरीररक्षी हूँ, मुझे मत मारो। राजकुमारी अभिसार को आई थीं इससे मुझे संग ले आई थीं"। उसकी बात सुनकर कई लोग पूछने लगे "राजकुमारी कौन?" देशानंद ने कहा "सम्राट् महासेनगुप्त की कन्या और कौन!" उसकी इस बात पर सब के सब हँस पड़े, क्योंकि सम्राट् के कोई कन्या नहीं थी। किसी किसी ने कहा "अरे! यह पक्का चोर है, इसे खूब पीटो और सवेरे ले जाकर नगररक्षकों के हाथ में दे दो"।

पाठक इतने ही से समझ लें कि देशानंद पर कितने प्रकार की मार पड़ी होगी। सवेरा होते ही नगररक्षक आकर उसे कारागार में ले गए। सेठ के आदमी सब नींद से आँख मलते उठे थे, इससे वे फिर अपने अपने स्थान पर जाकर सो रहे। उस रात घरवालों में से किसीको यह पता न चला कि यूथिका घर में नहीं है।

वसुमित्र वेग से घोड़ा फेंकता प्रासाद में आ पहुँचा। मार्ग में शीतल वायु के स्पर्श से यूथिका को चेत हुआ। तोरण पर के रक्षक वसुमित्र को पहचानते थे, इससे उन्होंने कुछ रोक टोक न की। वसुमित्र नवीन प्रासाद के सामने पहुँच घोड़े से उतरा और सीधे यशोधवलदेव की कोठरी में गया। यशोधवलदेव सोए नहीं थे, जान पड़ता था कि उसका आसरा देख रहे थे। उनकी आज्ञा से एक दासी आकर सेठ की कन्या को अंतःपुर में ले गई और वसुमित्र भी महानायक को प्रणाम करके अपने स्थान पर गया।

———

नवाँ परिच्छेद

विजययात्रा ।

आश्विन शुक्लपक्ष के प्रारंभ में महाधर्म्माध्यक्ष नारायण शर्म्मा ने कुमार माधवगुप्त को साथ लेकर स्थाण्वीश्वर की यात्रा की। चरणाद्रि से हरिगुप्त ने समाचार भेजा कि बिना युद्ध के ही दुर्ग पर अधिकार हो गया पर थानेश्वर की सेना अभी तक प्रतिष्ठानपुर में पड़ी हुई है। यशोधवलदेव निश्चिंत होकर वंगदेश की चढ़ाई की तैयारी करने लगे। हेमंत के अंत में पदातिक सेना और नावों का बेड़ा वंग की ओर चला। यह स्थिर हुआ कि पदातिक सेना चलकर गिरिसंकट पर अधिकार जमाए, युवराज शशांक और यशोधवलदेव अश्वारोही सेना लेकर यात्रा करें। उस काल में गौड़ या वंग में घुसने के लिए मंडला के संकीर्ण पहाड़ी पथ पर अधिकार करना आवश्यक था। हज़ार वर्ष पीछे बंगाल के अंतिम स्वाधीन नवाब क़ासिमअली खाँ इसी पहाड़ी प्रदेश में पराजित होकर, और अपना राजपाट खोकर भिखारी हुए थे। गुप्त सम्राटों के समय में जो अत्यंत विश्वासपात्र सेनापति होता था उसी के हाथ में मंडलादुर्ग का अधिकार दिया जाता था। नरसिंहदत्त के पूर्व पुरुषों के अधिकार में बहुत दिनों से यह दुर्ग चला आता था। उनके पिता तक्षदत्त की मृत्यु के पीछे जंगलियों ने मंडलादुर्ग पर अधिकार कर लिया था। सम्राट् ने एक दूसरे सेनापति को दुर्ग की रक्षा के लिए भेजा था, क्योंकि नरसिंहदत्त उस समय बहुत छोटे थे। नरसिंहदत्त ने यशोधवलदेव की आज्ञा लेकर पदातिक सेना के साथ

मंडलागढ़ की ओर यात्रा की। सम्राट् कह चुके थे कि वंगदेश का युद्ध समाप्त हो जाने पर नरसिंहदत्त को उनके पूर्व पुरुषों का अधिकार दे दिया जायगा।

यूथिका को यशोधवलदेव ने महादेवी के पास अंतःपुर में भेज दिया था। उन्होंने स्थिर किया था कि वंगदेश से लौट आने पर उसका विवाह वसुमित्र के साथ होगा, तब तक सेठ की कन्या राज-भवन में ही रहेगी। तरला यशोधवलदेव के बहुत पीछे पड़ी थी कि युद्धयात्रा के पहले ही वसुमित्र और यूथिका का विवाह हो जाय पर उन्होंने एक न सुनी। उन्होंने कहा "नई व्याही स्त्री घर में छोड़ युद्धयात्रा करना योद्धा के लिए कठिन बात है। एक ओर युद्धयात्रा की तैयारी हो रही है दूसरी ओर व्याह की तैयारी करना ठीक नहीं है"। तरला चुप हो रही।

कुछ दिन पीछे संवाद आया कि गिरिसंकट पर अधिकार हो गया, पदातिक सेना ने पहाड़ियों और जंगलियों को मार भगाया। उस पहाड़ी प्रदेश में थोड़ी सी सेना रखकर नरसिंहदत्त ने गौड़ देश की ओर यात्रा की। इतना सुन यशोधवलदेव ने भी शुभ दिन देख कुमार शशांक को साथ ले पाटलिपुत्र से प्रस्थान किया। महाराजा-धिराज की आज्ञा से राजधानी अनेक प्रकार से सजाई गई। पूर्व तोरण से होकर दो सहस्र अश्वारोही सेना के साथ युवराज ने वंगदेश की यात्रा की। माधववर्म्मा और अनंतवर्म्मा उनके पार्श्वचर होकर चले। वृद्ध सम्राट् ने तोरण तक आकर अपने बाल्यसहचर यशोधवल-देव के हाथ में पुत्र को सौंपा। उनकी बाईं आँख फरक रही थी। यशोधवलदेव उन्हें ढाढ़स बँधाकर विदा हुए।

युवराज ठीक समय पर मंडलादुर्ग पहुँच गए। पदातिक सेना लेकर नरसिंहदत्त गौड़देश में जा निकले। वे मार्ग में मंडलादुर्ग को

छोड़ते गए। गौड़ उस समय एक छोटा सा नगर था, एक प्रदेश मात्र की राजधानी था। नावों का बेड़ा जब गौड़ पहुँचा तब गौड़ीय महाकुमारामात्य* ने बड़े समारोह के साथ युवराज की अभ्यर्थना की। घाट की नावों पर रंग विरंग की पताकाएँ फहरा रही थीं, नगर के मार्गों पर स्थान स्थान पर फूलपत्तों से सजे हुए तोरण बने थे। संध्या होते होते दीपमाला से गौड़ नगर जगमगा उठा। गौड़ की बहुत सी सुशिक्षित सेना आपसे आप साम्राज्य की सेना के साथ हो ली। समुद्रगुप्त के वंशधर स्वयं विजययात्रा के लिए निकले हैं यह सुन दल के दल गौड़ीय अमात्य अपनी-अपनी शरीररक्षी सेना लेकर गरुड़-ध्वज के नीचे आ जुटे। युवराज जिस समय गौड़देश से चले उस समय उनके साथ दो सहस्र के स्थान पर दस सहस्र अश्वारोही सेना हो गई।

पौंड्रवर्द्धनभुक्ति की सीमा पार होने पर विद्रोही सामंतों का शासन आरंभ हुआ। निरीह प्रजा ने बड़े आनंद से सम्राट् के पुत्र की अभ्यर्थना की। पदातिक सेना गाँव पर गाँव अधिकार करती चली। दो एक स्थान पर कुछ भूस्वामियों ने मिट्टी के कोट के भीतर से साम्राज्य की सेना को रोकने का प्रयत्न किया, पर यशोधवल ने उनके गढ़ों पर अधिकार करके उन्हें ऐसा कठोर दंड दिया कि अधिकांश महत्तर† और महत्तम‡ अधीन होकर महानायक की शरण में आए। इस प्रकार मेघनाद के पश्चिम तट तक सारा प्रदेश अधिकार में आ गया। पूस के अंत में मेघनाद तट पर सारी पदातिक, अश्वारोही और नौसेना इकट्ठी हुई। बहुदर्शी महानायक ने शरण में आए हुए सामंतों को फिर अपने अपने पदों पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से बहुत दिनों के

---

*शासनकर्त्ता की उपाधि।

†महत्तर = जमींदार।

‡महत्तम = उच्च वर्ग के भूस्वामी, तअल्लुकेदार।

संचित राजस्व का युवराज के सामने ढेर लगा दिया। लाख से ऊपर सुवर्णमुद्रा पाटलिपुत्र भेजी गई। पराजित सामंतों की दशा सुनकर मेघनाद के उस पार के सामंत भी धीरे-धीरे महानायक के पास दूत भेजने लगे।

मेघनाद के पूर्व तट तथा समुद्र से लगे हुए समतट प्रदेश पर जिन सामंत राजाओं का अधिकार था वे अधिकतर महायान शाखा के बौद्ध थे और ब्राह्मणों के घोर विद्वेषी थे। पश्चिम तट के आसपास के सामंत राजा भी बौद्ध थे पर ब्राह्मणों से उन्हें द्वेष नहीं था क्योंकि वे बहुत काल से ब्राह्मणों के साथ रहते आए थे। उनके भाव कुछ उदार थे। उस समय वज्राचार्य्य, शक्रसेन, संघविर बंधुगुप्त आदि बौद्धसंघ के नेता वंगदेश में पहुँच गए थे। उनके उद्योग से विद्रोहियों को थानेश्वर से बहुत कुछ धन और उत्साह मिलता था। कान्यकुब्ज में बुद्धभद्र और स्थाण्वीरश्वर में अमोघरक्षित, शक्रसेन और बंधुगुप्त आर्य्यावर्त्त में एकछत्र बौद्ध राज्य प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रहे थे। वंग और समतट प्रदेश के सामंतों को दूत भेजते देख युवराज ने सोचा कि अब बहुत सहज में वंगदेश पर अधिकार हो जायगा पर व्यवहारकुशल वृद्ध महानायक का ऐसा विश्वास नहीं था। वे जानते थे कि इस मेघनाद के पश्चिम तट पर तो केवल सामंत राजा ही विद्रोही हो गए हैं पर नद के उस पार के सामान्य किसान तक गुप्तसाम्राज्य के विरोधी हैं।

मेघनाद के तट पर शिविर में यशोधवलदेव को संवाद मिला कि उत्तर में कामरूप के राजा खुल्लमखुल्ला विद्रोहियों की सहायता कर रहे हैं। कामरूप के भगदत्तवंशीय राजाओं के साथ गुप्तराजवंश का बहुत दिनों से झगड़ा चला आता था। इस झगड़े के कारण वंग और कामरूप की सीमा पर का बहुत-सा उपजाऊ प्रदेश उजाड़ जंगल हो रहा था। सम्राट् महासेनगुप्त ने युवावस्था में कामरूपराज सुस्थितवर्म्मा को परा

जित करके कुछ काल के लिए शांति स्थापित की थी। सुस्थितवर्म्मा के पुत्र सुप्रतिष्ठितवर्म्मा के राजत्वकाल में इधर गुप्तसम्राट् के साथ कोई झगड़ा न था। पर वंग में युद्ध छिड़ जाने पर कामरूपराज चुपचाप न बैठेंगे, यह बात यशोधवलदेव सम्राट् से कह आए थे। मेघनाद के किनारे सारी सेना पड़ाव डाले यों ही दिन काट रही थी। यशोधवलदेव कामरूपराज की गतिविधि का ठीक-ठीक पता पाए बिना मेघनाद के पार उतरना ठीक नहीं समझते थे। अतः कामरूपराज के प्रत्यक्ष शत्रुताचरण का संवाद पाकर वे एक प्रकार से निश्चिंत हुए।

यशोधवलदेव ने गुप्तचरों के मुँह से सुना कि सुप्रतिष्ठितवर्म्मा के छोटे भाई महाराजपुत्र भास्करवर्म्मा वंगदेश के विद्रोहियों की सहायता के लिए ससैन्य बढ़ रहे हैं। अग्रगामी कामरूपसेना ब्रह्मपुत्र का पच्छिमी किनारा पकड़े जल्दी-जल्दी बढ़ती आ रही है। भास्करवर्म्मा अपने द्वितीय सेनादल के साथ वंगदेश में आ पहुँचे हैं, फिर भी वहाँ के सामंतगण दूत भेज-भेजकर संधि की प्रार्थना कर रहे हैं। यशोधवलदेव ने सेनापतियों के साथ परामर्श करने के लिए मंत्रणासभा बिठाई। मेघनाद के किनारे आम और कटहल के लंबे चौड़े वन में सेना डेरा डाले पड़ी थी। एक बड़े भारी आम के पेड़ के नीचे एक नया पटमंडप खड़ा किया गया। महानायक यशोधवलदेव, युवराज शशांक, नरसिंहदत्त, माधववर्म्मा, वीरेन्द्रसिंह और अनंतवर्म्मा उस स्थान पर इकट्ठे हुए। यशोधवलदेव ने सबको उपस्थित दशा समझाकर पूछा "अब हम लोगोंको क्या करना चाहिए?" युवराज ने तुरंत उत्तर दिया "शत्रु की सेना आकर विद्रोहियों से मिले इसके पहले ही दोनों पर आक्रमण हो जाना चाहिए।" महानायक प्रसन्न होकर बोले "साधु! साधु! पुत्र यही युद्धनीति है। पर यह तो बताओ कि दोनों दलों के मिलने के पूर्व किस उपाय से आक्रमण करके उन्हें पराजित किया जाय।"

"क्यों ? आप सेना को दो दलों में बाँट दीजिए। वंगदेश के लिए कोई दो सहस्र अश्वारोही और नावों का सारा बेड़ा रखकर शेष अश्वरोही और पदातिक सेना का आधा कामरूप की ओर भेज दिया जाय।"

"इस सेना का परिचालन कौन करेगा ?"

"आप की आज्ञा हो तो मैं कर सकता हूँ, अथवा नरसिंह या माधव कर सकते हैं।

"पुत्र! इस युद्ध में तुम्हीं सेनापति होकर जाओ। भगदत्त का वंश यद्यपि समुद्रगुप्त के वंश के जोड़ का नहीं है, पर बहुत प्राचीन राजवंश है। भास्कर वर्मा भी अवस्था में तुम्हारे ही समान तरुण हैं। विद्रोह दमन में अर्थ का लाभ तो है, पर उतना यश नहीं है। तुम आगे बढ़ कर यदि भास्कर वर्मा को पराजित कर सकोगे तो युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो जायगा। सब की सब सेना यदि एक साथ वंग देश पर आक्रमण करेगी तो विद्रोह का दमन करने में अधिक दिन न लगेंगे। यदि किसी कारण से तुम पराजित हुए तो तुम्हारी पृष्ठ रक्षा के लिए मैं पहुँच जाऊँगा। तुम्हारे साथ कौन-कौन जायगा ?"

नरसिंह, माधव, वीरेंद्र, वसुमित्र इत्यादि सब के सब एक स्वर से बोल उठे "मैं जाऊँगा।" पीछे से नितांत नवयुवक अनंत वर्मा भी बोल उठे "प्रभो! मैं भी जाऊँगा?" यशोधवल ने हँस कर कहा "भाई! तुम लोग सब के सब चले जाओगे तो फिर मेरे साथ यहाँ कौन रहेगा ?"

महानायक की इस बात पर सब ने सिर नीचा कर लिया, कोई कुछ न बोला। यशोधवलदेव बोले "सुनो, तुम सब लोग अभी नवयुवक हो। युवराज के साथ किसी पुराने और अनुभवी सैनिक को जाना चाहिए। उनके साथ वीरेंद्र सिंह जायँगे। नरसिंह, माधव और अनंत इन तीनों में से कोई एक और भी जा सकता है।"

बहुत तर्क-वितर्क के पीछे स्थिर हुआ कि नरसिंहदत्त ही कुमार के साथ यात्रा करें। उसी समय पीछे से अनंतवर्मा बोल उठे "प्रभो! मुझे भी आज्ञा दीजिए, मैं भी युवराज के साथ युद्ध में जाऊँगा।" यशोधवलदेव ने पूछा "अनंत! तुम जाकर क्या करोगे?" उनका इतना आग्रह देख युवराज ने उन्हें भी साथ चलने के लिए कहा।

दूसरे दिन बड़े तड़के दस सहस्र पदातिक, आठ सहस्र अश्वारोही और पचास नावें लेकर युवराज ने यात्रा की।

पदातिक नौसेना धीरे-धीरे चलने लगी। युवराज नरसिंहदत्त को शंकरनद के किनारे प्रतीक्षा करने के लिए कह कर अश्वारोही सेना लेकर आगे बढ़े। उस समय कामरूप की सेना सीमा लाँघ कर वंग देश के उत्तर प्रांत के गाँवों में लूट-पाट कर रही थी। पर भास्करवर्मा अब तक शंकरनद के इस पार तक नहीं पहुँच सके थे। इधर युवराज के साथ जो लोग आए थे उनमें से अधिकांश लोग गौड़ के थे और अपना सारा जीवन युद्ध में ही बिता चुके थे। शत्रुसेना को बेखटके लूट-पाट में लिप्त देख युवराज और वीरेंद्र सिंह गौड़ीय सामंतों के परामर्श के अनुसार सारी सेना लेकर उस पर टूट पड़े। कामरूप सेना इधर-उधर कई खंडों में होकर लूट पाट कर रही थी। उसके सेना-पतियों को युवराज के चलने का संवाद मिल चुका था पर वे इतनी जल्दी सीमा पार करके आ धमकेंगे इस बात का उन लोगों को स्वप्न में भी ध्यान न था। अकस्मात् इतने अश्वारोहियों से घिर कर कामरूप सेना बार-बार परास्त हुई। जो सेना बची वह लूट का सारा धन छोड़ छाड़ कर भागी। सेनापतियों ने बहुत यत्न किया पर सेना एकत्र न हुई।

अंत में परास्त कामरूप सेना शंकरनद के किनारे फिर इकट्ठी हुई। पर बार बार हार खाते खाते वह इतनी व्याकुल हो गई कि वीरेंद्रसिंह

केवल दो सहस्त्र अश्वारोही लेकर उसे शंकरनद के पार भगा आए। भास्करवर्म्मा ने दूत के मुँह से सुना कि स्वयं युवराज शशांक बड़ी भारी सेना लेकर कामरूप पर चढ़ाई करने आ रहे हैं। वे जल्दी जल्दी बढ़ने लगे। मार्ग में भागते हुए सैनिकों के मुँह से उन्होंने अपनी सेना के हारने की बात सुनी। शंकरनद के किनारे पहुँचकर उन्होंने देखा कि जितने घाट हैं सब पर मागध सेना डटी हुई है, बिना युद्ध के पार जाना असंभव है।

एक लाख से ऊपर सेना लेकर युवराज भास्करवर्म्मा ने शंकरनद के उत्तर तट पर स्कंधावार स्थापित किया। वे वीर और वीरपुत्र थे। वे उसी समय जिस प्रकार से हो नद पार करना चाहते थे। पर युद्ध-निपुण सेनापतियों के बहुत समझाने पर वे रुक गए। उन्होंने कहा कि बहुत दूर से चलकर आने के कारण सेना थकी हुई है। पराजित सेना ने आकर यह बात फैला रखी है कि मगध साम्राज्य की सेना दुर्जय है और युवराज शशांक में कोई अद्‌भुत दैवशक्ति है। शंकरनद बहुत चौड़ा न होने पर भी गहरा और तीव्र वेग का है। इसे पार करना सहज नहीं है। जब कि उस पार शत्रुसेना का अधिकार है तब अपनी सेना को बिना विश्राम दिए पार उतारने की चेष्टा करना ठीक नहीं है। युवराज भास्करवर्म्मा तरुण होने पर भी धीर, शांत और युद्धविद्या में दक्ष थे। वृद्ध सेनापतियों की बात मान उन्होंने शंकरनद के किनारे ही पड़ाव डाला।

उस पार सहस्रों डेरे खड़े होते देख युवराज शशांक समझ गए कि भास्करवर्म्मा सुयोग देख रहे हैं। तीन दिन तीन रात दोनों पक्ष की सेनाएँ तट पर पड़ी एक दूसरे के आक्रमण का आसरा देखती रहीं। चौथे दिन बड़े सबेरे मागध सेना ने उठकर देखा कि उस पार डेरों की संख्या कुछ कम हो गई है। शशांक समझ गए कि कामरूप

की सेना नद उतरने की चेष्टा कर रही है, और युद्धविद्याविशारद भास्करवर्म्मा अपनी सेना को बहुत से खंडों में बाँटकर एक ही समय में अनेक स्थानों से उसे उतारने का यत्न करेंगे। युवराज और वीरेंद्र-सिंह चिंता में पड़ गए। बात यह थी कि नरसिंहदत्त सेना लेकर अब तक न पहुँच सके थे।

दोनों ने लेखा लगाकर देखा कि घायल और निकम्मी सेना को छोड़ साढ़े सात हजार अश्वारोही बच रहे हैं। इस सेना को दो भागों में बाँटकर युवराज और वीरेंद्रसिंह कामरूप की एक लाख सेना को रोकने के लिये तैयार हुए। वीरेंद्रसिंह और गौड़ीय सामंतों ने बहुतेरा समझाया पर युवराज शशांक ने युद्धक्षेत्र से हटना स्वीकार न किया। वीरेंद्रसिंह आदि ने समझ लिया कि मुट्ठी भर सैनिक लेकर कामरूप की इतनी बड़ी सेना का सामना करना पागलपन है और इसका परिणाम मृत्यु है। उन लोगों ने यशोधवलदेव के पास एक अश्वारोही और नरसिंहदत्त के पास एक सामंत को चटपट भेजा। नरसिंहदत्त पदातिक सेना लिए अभी चालीस कोस पर थे और यशोधवलदेव का शिविर मेघनाद के तट पर था। शंकरनद से शिविर एक महीने का मार्ग था।

सामंतों ने जब देखा कि युवराज किसी प्रकार युद्धक्षेत्रसे न हटेंगे तब वे भी उनके साथ मरने के लिए प्रस्तुत हुए। प्रधान-प्रधान सामंत, नायकों के हाथ में सैन्य परिचालन का भार देकर, युवराज के शरीर-रक्षी दल में जा मिले। सौ शरीर-रक्षियों के स्थान पर तीन सौ शरीर-रक्षी साथ लेकर युवराज शिविर से निकल पड़े। विदा होते समय आँख में आँसू भरे वीरेंद्र सिंह युवराज का हाथ थाम कर बोले "कुमार! यदि लौट कर मुझे इस स्थान पर न देखना तो जान लेना कि वीरेंद्र सिंह जीता नहीं है। यदि कभी देश लौट कर जाना तो महानायक से कहना कि महेंद्र सिंह का पुत्र उनकी सेवा में जीवन देकर कृतार्थ हुआ। एक अश्वारोही भी प्राण रहते घाट पर से न हटेगा।"

युवराज चार हजार से भी कुछ कम सवार लेकर पर्वत की ओर चले। उस समय शंकरनद के दोनों ओर घना जंगल था। ब्रह्मपुत्र के संगम से लेकर दो-तीन कोस तक के बीच केवल दो-तीन स्थानों को छोड़ और कहीं से नद पार नहीं किया जा सकता था। युवराज के शिविर से निकलने पर आकाश बादलों से ढक गया। सेना दल धीरे-धीरे नदी का किनारा पकड़े चलने लगा। शिविर से बारह कोस निकल आने पर कामरूप की सेना की आहट मिली। कुछ और बढ़ने पर दिखाई पड़ा कि प्रायः दस सहस्र सेना नद के उस पार एकत्र है। सेना के लोग बन से लकड़ी ला-ला कर सेतु बाँधने का उद्योग कर रहे हैं। उस स्थान पर नद दो चट्टानों के बीच से होकर बहता था, इससे उसका पाट चौड़ा न था। युवराज ने सेना ठहरा कर सामंतों से परामर्श किया। सब ने एक स्वर से कहा "इस स्थान पर तो बहुत थोड़ी सेना लेकर बहुत बड़ी सेना का मार्ग रोका जा सकता है।" उनके उपदेश के अनुसार युवराज उस स्थान पर एक सहस्र अश्वारोही रख कर शेष सेना को लेकर आगे बढ़े।

संध्या हो जाने पर युवराज ने नदीतट पर विश्राम के लिए शिविर खड़ा कराया। साथ में डेरा केवल एक ही था। युवराज ने सामंतों और नायकों सहित उसमें आश्रय लिया। सैनिक लोग पेड़ों के नीचे ठहरकर भीगने लगे। बन में कहीं सूखी लकड़ी भी न मिली कि आग जलाते। रात अधिक बीतने पर मूसलाधार पानी बरसने लगा। माघ का महीना था, टिकने का कहीं ठिकाना न पाकर सेना ने अत्यंत कष्ट से रात काटी। सबेरा होते ही युवराज फिर आगे बढ़े। पानी धार बाँधकर बरस रहा था, सारा बन जल से भर गया था। तुषार सी ठंढी वायु प्रचंड वेग से बह रही थी इससे घोड़ों को दौड़ाना असंभव हो रहा था। इस प्रकार दो पहर तक चल कर युवराज की सेना जंगल के बाहर हुई। नायकों ने देखा कि सामने भारी मैदान है और हरे-भरे खेत दूर

तक फैले हुए हैं। नद का पाट उस स्थान पर चौड़ा था, पर गहराई अधिक नहीं जान पड़ती थी। उस पार के हरे-भरे मैदान में सेना का पड़ाव दिखाई पड़ता था। देखने से पचास सहस्र सेना का अनुमान होता था। युवराज के सेना-नायकों ने थकी-माँदी सेना को नदी तट पर एकत्र किया। भूख से व्याकुल और शीत से ठिठुरे हुए सैनिक घोड़ों पर से उतर युद्ध के लिए खड़े हुए। पर युद्ध करता कौन? उस पार शत्रु के शिविर में तो कहीं कोई मनुष्य दिखाई ही नहीं पड़ता था।

तीसरा पहर बीत जाने पर एक अश्वारोही ने आकर युवराज को संवाद दिया कि कई ग्रामीण उनसे मिलना चाहते हैं। युवराज ने उन्हें सामने लाने के लिए कहा। सैनिक तुरंत कई नाटे और चिपटी-नाक वाले किसानों को सामने लाए। उन्होंने हाथ जोड़ कर निवेदन किया "हजारों घोड़े खेती का सत्यानाश कर रहे हैं। यदि दया करके उन्हें खेतों से हटाने की आज्ञा दी जाय तो हम लोग सैनिकों और घोड़ों के लिए पूरा-पूरा भोजन और दाना-चारा अभी पहुँचा जायँ।" युवराज की आज्ञा से भूखे घोड़े खेतों से हटा लिए गए। ग्रामवासी अनेक आशीर्वाद देते हुए बहुत सा अन्न और चारा लेकर आए। आहार मिलने से घोड़ों और सैनिकों की रक्षा हुई। संध्या होते-होते नद के दोनों तटों पर सहस्रों स्थानों पर अलाव जले। पानी लगातार बरस रहा था। उस दिन भी युद्ध न हुआ।

सैनिकों ने किनारे के जंगल से लकड़ी ला-ला कर बहुत से झोपड़े खड़े किए। दो पहर रात गए युवराज और अनंतवर्मा डेरे से निकल कर लकड़ी के घर में गए। आकाश में अब तक बादल घेरे हुए थे। वायु का वेग बढ़ गया था, पर पानी बहुत कुछ थम गया था। युवराज ने पूछा "अनंत! जान पड़ता है कि नद बढ़ आया है।" अनंत वर्मा देख कर आए और कहने लगे, "हाँ, बहुत बढ़ आया है।" युवराज बोले "अच्छी बात है, तुम यहाँ आओ।"

रात के पिछले पहर वृष्टि बंद हुई, हवा भी रुकी और नद का जल भी धीरे-धीरे घटने लगा। युवराज ने सेना नायकों को युद्ध के लिए प्रस्तुत होने की आज्ञा दी। नद के किनारे रक्षा के लिए अश्वारोहियों का प्रयोजन नहीं था इससे युवराज की आज्ञा से पाँच सौ अश्वारोही शेष सेना के घोड़ों को लेकर वन के भीतर जा रहे। ढाई हजार सेना युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर नदी के तट पर आ खड़ी हुई।

सबेरा होने के पहले ही कामरूप की सेना नद पार करने के लिए उठ खड़ी हुई। स्वयं भास्करवर्मा उस सेना दल का परिचालन करते थे। वे रात को आग जलती देख समझ गए थे कि उस पार शत्रुसेना पहुँच गई है। सूर्योदय के पहले ही उन्होंने सेना को बढ़ने की आज्ञा दी। सहस्रों सैनिक जयध्वनि करते हुए एक साथ नदी के शीतल जल में उतरे।
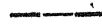
दसवाँ परिच्छेद

शंकरनद का युद्ध

दो दिन पर आज सूर्य देव ने पूर्व की ओर दर्शन दिए हैं। भास्करवर्मा की सेना का अधिकांश नद की बीच धारा में पहुँच चुका है। दूसरी ओर युवराज शशांक अपनी दो सहस्र सेना लिए पत्थर की चट्टान के समान शत्रु को रोकने के लिए निश्चल भाव से खड़े हैं। अश्वारोही सेना के पास धनुष बाण तो रहता नहीं कि वह दूर से शत्रु

सेना की कुछ हानि कर सके। इससे वे चुपचाप डटे रहे। ज्योंही कामरूप की सेना पास पहुँची कि युवराज की सेना जय ध्वनि करती हुई वेग से आगे बढ़ी। जैसे मेघों के संघर्ष से घोर गर्जन होता है वैसे ही दो सेना दलों के संघर्ष से अस्त्रशस्त्रों की भीषण झनकार उठी। कामरूप की सेना आगे न बढ़ सकी, मागध सेना के आक्रमण के आघात से पीछे हटी। किंतु पीछे खचाखच भरी हुई सेना ने उसे फिर आगे बढ़ाया। कामरूप सेना ने फिर पार उतरने का उद्योग किया, पर मागध सेना ने उसे फिर पीछे जल में ठेल दिया। किंतु कामरूप के वीर सहज में हटने वाले नहीं थे। बड़े तीव्र वेग से कई सहस्र सेना एक साथ मुट्ठी भर मागध सेना पर टूटी, पर फिर हार खाकर पीछे हटी। दो सहस्र मागध वीर चट्टान की तरह अड़े रहे। कई सहस्र सेना एक साथ आक्रमण करके भी उन्हें एक पग पीछे न हटा सकी। विजय की आशा छोड़ वे मरने-मारने के लिए खड़े थे। उनके जीते जी उन्हें वहाँ से हटा दे, जान पड़ता था कि ऐसी सेना उस समय पृथ्वी पर न थी।

नद के उस पार हाथी पर बैठे युवराज भास्करवर्मा सेना का परिचालन कर रहे थे। अपनी सेना को बार-बार पीछे फिरते देख क्रोध और क्षोभ से अधीर होकर उन्होंने हाथीवान को हाथी बढ़ाने के लिए कहा। हाथी पानी में उतरा, पर पानी सुड़क कर ही वह अचल होकर खड़ा हो गया। हाथीवान ने बहुत चेष्टा की पर उसे आगे न बढ़ा सका। हाथी अंकुश की चोट खा-खा कर चिग्घाड़ने लगा, पर एक पैर भी आगे न रख सका। भास्करवर्मा हाथी की पीठ पर से कूद पड़े और एक सेना नायक से घोड़ा लेकर उस पर सवार हो गए। इतने ही में सहस्रों वज्रपात के समान ऐसा घोर और भीषण शब्द हुआ कि सब के सब सन्नाटे में आ गए। पक्षी अपने-अपने घोंसलों की ओर पशु जंगल की झाड़ियों को छोड़ इधर-उधर भागने लगे। युवराज भास्कर

वर्मा को पीठ पर लिए घोड़ा नदी का तट छोड़ कर एक ओर भाग निकला। लाख चेष्टा करके भी भास्करवर्मा उसे न फेर सके।

भयंकर शब्द सुन कर दोनों पक्षों की सेना ठक खड़ी रही। उठे हुए खड्ग उठे ही रह गए, लंबे-लंबे भाले लिए गौड़ीय सैनिक चकपका कर चारों ओर ताकने लगे। युद्ध थम गया। सैनिकों ने चकित होकर देखा कि नद में कुछ दूर पर पहाड़ के समान खड़ा जल वेग से बढ़ता चला आ रहा है, सैकड़ों पेड़,पशु, पक्षी धारा में पड़ कर बहे चले आ रहे हैं। डरके मारे गौड़ीय सेना कगार पर जा खड़ी हुई। देखते-देखतें जल समूह आ पहुँचा। क्षण भर में कामरूप की विशाल सेना न जाने क्या हो गई। गौड़ीय सेना ने जहाँ तक हो सका शत्रु के सैनिकों का उद्धार किया। जल बराबर बढ़ता हुआ देख युवराज ने सैनिकों को घोड़ों पर सवार हो जाने की आज्ञा दी। देखते-देखते नद के दोनों ओर की भूमि दूर तक जलमग्न हो गई। उस पार केवल दो या तीन सहस्र सेना बच गई थी, वह भी भाग खड़ी हुई। गौड़ीय सेना ऊँची भूमि पर जा टिकी।

पहले घाट पर युवराज जो सहस्र अश्वारोही छोड़ आए थे वे यथा साध्य सेतु बाँधने में वाधा दे रहे थे। इतने में बाढ़ आकर पुल को बहा ले गई। दोनों पक्षों की सेना ने ऊँची भूमि का आश्रय लेकर प्राण बचाए। दूसरे दिन सवेरे जब युवराज की सेना आकर उनके साथ मिली तब नदी के उस पार कोई नहीं दिखाई पड़ता था। बात यह थी कि भास्करवर्मा के साथ की सेना का भागना सुन कर उस स्थान पर जो सेना थी वह भी रात को ही भाग गई थी।

वीरेंद्रसिंह शत्रु सेना के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर कामरूप की सेना ने नद पार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। बाढ़ का जल जिस समय अकस्मात् आकर फैल गया, और सैकड़ों सैनिकों की मृत देह आ-आ कर किनारे पर लगने लगी उस समय कामरूप की

सेना अपने युवराज को इधर-उधर ढूँढ़ने लगी। चौथे दिन सबेरे दूर पर कलरव और जयध्वनि सुन कर वीरेंद्रसिंह युद्ध के लिए तैयार हुए। वे समझे कि युवराज की जो थोड़ी सी सेना थी वह खेत रही और भास्करवर्मा अब उन पर आक्रमण करने आ रहे हैं। पर जय ध्वनि जब और पास सुनाई पड़ी तब उन्होंने सुना कि सम्राट् महासेन-गुप्त के नाम पर जयध्वनि हो रही है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। देखते-देखते युवराज की सेना शिविर में आ पहुँची। साढ़े सात सहस्र कंठों की जय ध्वनि नद के पार तक गूँज उठी। उस पार भास्करवर्मा का सेनापति समझा कि कामरूप की सेना हार गई। वह चटपट अपने साथ की सेना सहित भाग खड़ा हुआ। युवराज के मुँह से युद्ध की सारी व्यवस्था सुन वीरेंद्र सिंह समझ गए कि जय नहीं हुई है, भगवान् ने रक्षा की है।

शंकरनद के युद्ध के एक सप्ताह पीछे संवाद आया कि नरसिंहदत्त पदातिक सेना लेकर पहुँच गए हैं और कल तक शिविर में आ जायँगे। नद का जल थमते ही वीरेंद्र सिंह ने उस पार के शत्रु शिविर पर अधिकार किया। नरसिंहदत्त के आगमन का समाचार पाकर युवराज ने अधिकांश सेना लेकर शंकरनद के उत्तर तट पर शिविर स्थापित किया।

दूसरे दिन पहर दिन चढ़ते-चढ़ते पदातिक सेना आ पहुँची और नद पार करके उत्तर तट पर उसने पड़ाव डाला। बार-बार के पराजय और आकस्मिक विपत्ति से घबरा कर भास्करवर्मा की बची-बचाई सेना तितर-बितर होकर भागी। सेना का छत्रभंग देख उन्होंने बहुत चेष्टा की पर फिर सेना एकत्र न हुई। शंकरनद के युद्ध के एक मास पीछे पचीस सहस्र सेना लेकर भास्करवर्मा युवराज शशांक पर आक्रमण करने के लिये चले। शशांक उस समय भी शंकरनद के तट पर ही जमे रहे। वे कामरूप राज्य पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे थे पर सेना

की संख्या बहुत थोड़ी बता कर नरसिंहदत्त और वीरेंद्रसिंह ने उन्हें रोक रखा।

शिविर से थोड़ी ही दूर पर सेना ने अड्डा जमाया। नरसिंह की पदातिक सेना पर्वत की चोटियों और संकीर्ण पथों पर अधिकार जमा कर बैठी। वीरेंद्र सिंह और शशांक अश्वारोही सेना लेकर पर्वत की घाटी में जा छिपे। भास्करवर्मा जब घाटी पार करने के लिए बढ़े नरसिंहदत्त ने अपनी पदातिक सेना लेकर उन्हें कई बार पीछे हटा दिया। कामरूप सेना हार कर पीछे हट रही थी इतने में शशांक और वीरेंद्र सिंह के अश्वारोही उस पर बिजली की तरह जा पड़े। भास्कर वर्मा की सेना ठहर न सकी, तितर-बितर हो गई। कई प्रभु-भक्त सामंतों ने जब देखा कि युद्ध अब समाप्त हो गया तब वे भास्करवर्मा को जबरदस्ती हाथी पर बिठा कर रणभूमि छोड़ कर भागे।

युवराज शशांक और वीरेंद्रसिंह ने भागती हुई शत्रु सेना का पीछा करके हजारों सैनिकों को बंदी किया। सैकड़ों वीर मारे गये। पच्चीस सहस्र की चौथाई सेना भी कामरूप लौट कर न गई। युद्ध समाप्त हो जाने पर कर्तव्य निश्चित करने के लिए युवराज ने मंत्रणा सभा बुलाई। शंकरनद के किनारे भास्कर वर्मा के शिविरों में युवराज, वीरेंद्र सिंह, नरसिंहदत्त और गौड़ देश के सामंत लोग एकत्र हुए। शशांक ने पूछा "अब क्या करना चाहिए? कामरूप पर चढ़ाई करना उचित होगा या नहीं?"

वीरेंद्र०—यही मुट्ठी भर सेना लेकर? असंभव!

नरसिंह०—अठारह सहस्र सेना लेकर तो एक लाख सेना भगा दी गई और कामरूप पर चढ़ाई करना असंभव है?

वीरेंद्र०—तुम लोग पागल हुए हो? पर्वतों से घिरे हुए कामरूप देश पर चढ़ाई एक लाख-सेना लेकर भी नहीं हो सकती और नीलाचल पर आक्रमण करने के लिए तो नावों का बहुत बड़ा बेड़ा भी चाहिए।

शशांक—मैं यशोधवल को लिख भेजता हूँ, वे वसुमित्र के साथ सारी नौसेना भेज देंगे।

वीरेंद्र०—वंगदेश का क्या किया जायगा? पीछे शत्रु छोड़कर आगे दूरदेश में बढ़ना रणनीति के विरुद्ध है।

गौड़ देश के सामंतों ने एक स्वर से वीरेंद्रसिंह की बात का समर्थन किया; उन्होंने कहा "कामरूव पर चढ़ाई करने का मुख्य उद्देश्य तो सफल हो गया। जो सेना वंगदेश में विद्रोहियों को सहायता देने जाती थी वह तो एक प्रकार से निर्मूल हो गई। अब जब तक भास्करवर्म्मा फिर से नई सेना न खड़ी करेंगे वे युद्ध के लिए नहीं आ सकते। अब इस समय चटपट लौटकर वंगदेश के विद्रोह का दमन करना चाहिए"।

शशांक ने विवश होकर कामरूप की चढ़ाई का संकल्प त्याग दिया। यह स्थिर हुआ कि एक सेनानायक दो सहस्र अश्वारोही और दो सहस्र पदातिक लेकर भास्करवर्म्मा की गतिविधि पर दृष्टि रखने के लिए ब्रह्मपुत्र के तट पर रहे, शेष सेना लौट चले। मंत्रणासभा विसर्जित होने पर वीरेंद्रसिंह ने कहा "कुमार! मैंने भास्करवर्म्मा के शिविर में एक पेटी के भीतर कई रत्न पाए हैं, अब तक आपको दिखाने का अवसर नहीं मिला था"। युवराज और नरसिंहदत्त बड़ा आग्रह प्रकट करते हुए वीरेंद्रसिंह के डेरे में गए। वीरेंद्रसिंह ने कपड़े के एक बेठन के भीतर से एक छोटा सा चाँदी का डिब्बा निकालकर दिखाया और पूछा "इसके भीतर क्या है कोई बता सकता है?" युवराज बोले "न। डिब्बे के ऊपर कुमार भास्करवर्म्मा का नाम तो दिखाई पड़ता है"। वीरेंद्रसिंह ने डिब्बा खोलकर उसके भीतर से कई फटे हुए भोजपत्र बाहर निकाले। उन्हें देख कुमार बोल उठे "ये तो चिट्ठियाँ जान पड़ती हैं। किसकी हैं?"

"पढ़कर देख लीजिए"।

युवराज पढ़ने लगे—

"आशा नहीं है। हमारी सेना शीघ्र चरणाद्रिगढ़ पर आक्रमण करेगी। माधव आज कल यहाँ आए हैं। देखना, यशोधवल और शशांक लौटकर न जाने पाएँ। मामा के जीते मैं प्रकाश्यरूप में शत्रुताचरण नहीं कर सकता।

प्रभाकरवर्द्धन"

पत्र पढ़ते पढ़ते युवराज शशांक का रंग फीका पड़ गया। यह देख वीरेंद्रसिंह बोले "कुमार! अभी दो पत्र और हैं"। युवराज ने बड़ी कठिनता से अपने को सँभालकर दूसरा पत्र हाथ में लिया और पढ़ने लगे—

"महाराज ग्रहवर्म्मा.........

लाख सुवर्ण मुद्राएँ मिलीं.........

स्थाण्वीश्वर से महाराजाधिराज का एक पत्र आया है। यदि किसी उपाय से शशांक की हत्या करा सकें तो युद्ध अभी समाप्त हो जाय। फिर यशोधवल हम लोगों के हाथ से निकलकर नहीं जा सकता।

आशीर्वादक

महास्थविर बंधुगुप्त"

"तो बंधुगुप्त आजकल वंगदेश में है"

"अवश्य। यह पत्र महानायक के हाथ में देना चाहिए"

"अभी एक अश्वारोही भेजो"।

"न। हम लोग अपने साथ ले चलेंगे। और एक पत्र है, देखिए"।

युवराज फिर पढ़ने लगे—

"इस समय पाटलिपुत्र में दो तीन सहस्र से अधिक सुशिक्षित

सेना नहीं है। आप यदि युवराज को पराजित कर सकें तो चटपट पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दें। चरणाद्रि के उधर स्थाण्वीश्वर की सेना तैयार है।

आशीर्वादक

कपोतिक महाविहारीय महास्थविर बुद्धघोष।

पत्र पढ़कर कुमार उदास हो गए और चिंता करने लगे। वीरेंन्द्रसिंह और नरसिंहदत्त उन्हें समझा बुझाकर शिविर में ले गए। दूसरे दिन युवराज और वीरेंद्रसिंह नरसिंहदत्त को वहीं छोड़ मेघनाद तटस्थ शिविर की ओर लौट पड़े।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

अदृष्ट गणना

पाटलिपुट के नए राजभवन के आँगन की फुलवारी में एक पुराना शिवमंदिर था। एक दिन प्रातःकाल मंदिर के बाहर बैठकर एक युवती गीली धोती पहने महादेव की पूजा कर रही थी। युवती तन्वी थी और उसका वर्ण तपाए सोने का सा था। उसके भीगे कपड़े से होकर उसकी गोराई फूटी पड़ती थी। कटि के नीचे तक पहुँचते हुए घने घुँघराले काले भँवर केश हवा के झोंकों से लहरा लहराकर माथे पर से वस्त्र हटा हटा देते थे। युवती एक हाथ से वस्त्र थामे हुए एकाग्रचित्त से पूजा कर रही थी। अर्घ्य, चंदन, पुष्प, बिल्वपत्र

और नैवेद्य विधिपूर्वक चढ़ाकर सुंदरी घुटना टेक और हाथ जोड़ मनाने लगी—

"भगवन्! युद्ध में जय प्राप्त हो। महानायक कुशलपूर्वक लौट आएँ, युवराज शशांक युद्ध में विजय प्राप्त करके कुशल मंगल से राजधानी में आएँ, और—और—"

पीछे से न जाने कौन बोल उठा "और सेठ वसुमित्र कुशल मंगल से पूर्ण यौवन सहित आकर यूथिका को गले लगाएँ। कैसी कही? न कहोगी"।

युवती ने चकपकाकर पीछे ताका, देखा तरला खड़ी है। वह कब धीरे धीरे दबे पाँव आई युवती को पता न लगा। उसकी बात सुनकर उसके मुँह पर लाली झलक पड़ी। देखते देखते गोल कपोलों पर की ललाई सारे शरीर में दौड़ गई। छबि देखकर तरला मोहित हो गई। वह बोल उठी "हाय! हाय! इस समय नायक पास नहीं है। उसके भाग्य में ही नहीं कि यह अपूर्व शोभा देखे"। युवती ने कुंदकली से दांतों से लाल लाल ओठ दबाकर घूँसा ताना और फिर महादेव को प्रणाम किया। तरला फिर बोल उठी "हे महादेव बाबा! मेरे मन में जो है उसे लाज के मारे कह नहीं सकती हूँ। मेरे हृदय का रत्न कुशल-मंगल से लौट आए तो हम दोनों एक साथ कृष्ण चतुर्दशी को विधिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे।"

यूथिका ने महादेव को प्रणाम कर तरला की ओर ताक कर कहा "तू मर भी।" तरला हँसते-हँसते बोली "तुम्हारा शाप यदि लगता तो मैं नित्य न जाने कितनी बार मरती। पर मैं मर जाऊँगी तो नायक पकड़ कर कौन लाएगा?"

"देख तरला! तू अब बहुत बढ़ती चली जा रही है। भला, महादेवी सुनेंगी तो मन में क्या कहेंगी?"

"महादेवी मानो तुम्हारी सब करतूत नहीं जानतीं।"

"जानें या न जानें। तू बार-बार यह सब बकती है मुझे बड़ी लाज आती है।"

"मन की बात खोल कर कहने ही में इतना पाप लग गया। तुम्हारी बात तो अब घर-घर फैल गई है। मैं तुम्हें एक बड़ा अच्छा तमाशा देखने के लिए बुलाने आई थी, पर तुम्हारी छवि देख कर सब कुछ भूल गई। क्या कहें, इस समय सेठ का लड़का न जाने कहाँ है। बेचारा कहीं शिविर में पड़ा होगा।"

तरला की बात पर यूथिका को आँखें भर आईं, पर वह अपनी अवस्था छिपाने के लिए बोली "क्या दिखाएगी? बोल।" तरला ने कहा "जल्दी आओ। श्यामा मंदिर में एक और कोई तुम्हारे ही समान पूजा करने बैठा है।" दोनों फुलवारी के बाहर निकलीं।

गंगा द्वार पर भागीरथी के किनारे श्यामा देवी का मंदिर था। पत्थर के पुराने मंदिर के भीतर पुजारी बैठा पूजा कर रहा है। बाहर महादेवी हाथ जोड़े खड़ी हैं। मंदिर के द्वार के सामने चित्र-विचित्र खंभों का मंडप है जिसमें पट्ट वस्त्र धारण किए कई युवती और किशोरी स्त्रियाँ खड़ी हैं। मंडप के एक कोने में एक युवती बैठी देवी फूल में लाल चंदन लगा-लगा कर एकाग्र चित्त से पूजा कर रही थी। उसके सामने जया के फूलों का ढेर लगा हुआ था। यूथिका और तरला ने श्यामा मंदिर के आँगन में आकर उसको देखा। दोनों धीरे-धीरे दबे पाँव जाकर उसके पीछे खड़ी हो गईं। युवती उस समय पूजा समाप्त करके हाथ जोड़ कर मना रही थी "हे देवि! कुमार कुशलक्षेम से लौट आएँगे तो मैं अपना रक्त निकालकर तुम्हें चढ़ाऊँगी। यही माँगती हूँ कि कुमार कुशल मंगल से विजयी होकर लौटें और उनके साथ भैया, अनंतवर्म्मा, माधववर्म्मा, यशोधवलदेव और वीरेंद्रसिंह सबके सब भले चंगे लौटें। कोई मरे न, यदि किसी का मरना आवश्यक ही हो तो मैं तुम्हारे चरणों में अपने

को बलि चढ़ाने के लिए तैयार हूँ। अब मुझे मरने से डर नहीं लगता है। बार बार यही भिक्षा चाहती हूँ कि कुमार शीघ्र घर लौटें"।

तरला पीछे से बोल उठी "चित्रादेवी! किसको कुमार कुमार कहकर पुकार रही हो ?" चित्रा चौंककर उठ खड़ी हुई और उसने देखा कि तरला और यूथिका पीछे खड़ी हैं। लज्जा से दबकर चित्रा भाग खड़ी हुई। उसके पैरों की आहट सुनकर महादेवी ने पूछा "कौन है ?" तरला ने उत्तर दिया "चित्रादेवी हैं"।

महादेवी—चित्रा तो बैठी पूजा न कर रही थी, उठकर भागी क्यों ?

तरला—वे पूजा समाप्त करके देवी से कुछ मना रही थीं इतने में हम लोग पहुँच गईं। उनका मनाना हम लोगों ने कुछ सुन लिया, इसीपर वे भागीं।

महा०—क्यों ? वह क्या मना रही थी ?

तरला—वे मना रही थीं कि कुमार यदि कुशलक्षेम से लौट आएँगे तो मैं अपना रक्त चढ़ाकर महाकाली की पूजा करूँगी।

तरला की बात सुनकर महादेवी हँस पड़ीं। गंगा, यूथिका आदि भी हँसते हँसते लोट गईं। महादेवी की आज्ञा से लतिका चित्रा को ढूँढ़ने गई। महादेवी ने पूछा "यूथिका कहाँ है ? वह आज मेरे पास नहीं आई"। चित्रा की मनौती सुनकर यूथिका की आँखें डबडबा आई थीं। वह अपने प्रिय के ध्यान में मग्न हो रही थी। वह अपनी मनौती की बात मन में सोच रही थी और भीतर ही भीतर अपने प्रिय के मंगल की प्रार्थना कर रही थी। तरला और महादेवी की एक बात भी उसके कान में नहीं पड़ी। हँसी ठट्ठा सुनकर सेठ की बेटी का ध्यान भंग हुआ। महादेवी के फिर पूछने पर यूथिका लज्जा से दब गई। तरला ने उत्तर दिया "यहीं तो बैठी हैं"।

यूथिका ने धीरे से उठकर महादेवी को जाकर प्रणाम किया।

उसको लजाई देख महादेवी ने पूछा। "तुम आज आई क्यों नहीं, क्या हुआ है ?" यूथिका कोई उत्तर न देकर पैर के अँगूठे की ओर देखने लगी। तरला आगे बढ़कर बोली "देवि ! श्रेष्ठिकन्या महादेव के मंदिर में पूजा कर रही थीं"।

महा०—यूथिका, इतनी लजाई क्यों है ?

तरला—चित्रादेवी की सी बात इनको भी है।

यूथिका ने लजाकर और भी सिर झुका लिया। इतने में लतिका चित्रा का हाथ पकड़े उसे खींचती हुई ले आई। महादेवी ने उससे पूछा "चित्रा ! तू क्या मना रही थी ?" चित्रा लज्जा के मारे कुछ बोल न सकी। महादेवी उसे अपने पास खींच कर बोलीं "लजाने की क्या बात है ? मुझसे धीरे से कह दो, कोई सुनेगा नहीं।" चित्रा महादेवी की गोद में मुँह ढाँक कर सिसकने लगी। महादेवी ने उसे शांत करके तरला से पूछा "तरला ! ये तो सब की सब बड़ी भारी भक्तिन हो गईं तुम्हारा साथ अब कौन देगा ? तरला मुस्कराती हुई बोली "मेरा साथ देंगे यमराज।" लतिका महादेवी के पास उनके कान में धीरे से बोली "नहीं माँ, इनका एक और साथी है, उसका नाम है वीरेंद्रसिंह ! तरला ने एक दिन अपनी कोठरी की दीवार पर वीरेंद्रसिंह का नाम लिखा था पर मुझे देखते ही उसे मिटा दिया।" यद्यपि यह बात धीरे से कही गई थी पर सब ने सुन ली और बड़ी हँसी हुई। तरला सकुच कर पीछे जा खड़ी हुई। इतने में एक दासी ने आकर कहा "महादेवी ! महाप्रतीहार विनयसेन श्रीमती का दर्शन चाहते हैं।" महादेवी ने कहा "उन्हें यहीं बुला लाओ।"

क्षण भर में विनयसेन मंदिर के आँगन में आ पहुँचे और उन्होंने सिर झुका कर प्रणाम किया। महादेवी ने पूछा "विनय, कहो क्या है ?"

विनय०—महादेवी की आज्ञा से महामंत्रीजी ने एक ज्योतिषी भेजा है।

महादेवी—ज्योतिषीजी कहाँ हैं ?

विनय०—उन्हें मैं गंगा द्वार के बाहर बिठा आया हूँ।

महादेवी—उन्हें यहाँ ले आओ।

विनयसेन प्रणाम करके चले गए और थोड़ी देर में एक वृद्ध ब्राह्मण को साथ लिए लौट आए। ब्राह्मण देवता श्यामा मंदिर के सामने एक कुशासन पर बैठे। महादेवी ने सामने जाकर उन्हें प्रणाम किया। ब्राह्मण ने उन्हें अपना हाथ दिखाने के लिए कहा। बहुत देर तक महादेवी का हाथ देख कर ब्राह्मण ने कहा "देवी! आपको थोड़े ही दिनों में कुछ कष्ट होगा, पर वह कष्ट बहुत दिनों तक न रहेगा।"

महादेवी—मेरा पुत्र तो कुशल-मंगल से घर लौट आएगा न।

गणक ने भूमि पर कई रेखाएँ खींचीं, फिर थोड़ी देर पीछे वे बोले "युवराज युद्ध में विजय प्राप्त करके लौटेंगे। उन्हें गहरी चोट आएगी, पर उस चोट से उनका कुछ होगा नहीं।"

"कितने दिनों में लौटेंगे ?"

"अभी बहुत दिन हैं।"

"मेरे जीते जी तो लौट आएँगे न ? मैं उन्हें देखूँगी न ?"

"हाँ, हाँ ! आप राजमाता होंगी।"

महादेवी संतुष्ट होकर ज्योतिषीजी की विदाई का प्रबंध करने के लिए अंतःपुर में गईं। अवसर पाकर तरला यूथिका का हाथ पकड़े उसे खींचती-खींचती ज्योतिषी के पास ले आई और कहने लगी "महाराज ! इस स्त्री का कहीं विवाह नहीं होता है, देखिए तो इसका विवाह कभी होगा"।

ज्योतिषी ने यूथिका का हाथ देखकर कहा "होगा"।

"कब"

"पाँच बरस में"

यूथिका ने कंठ से बहुमूल्य जड़ाऊ हार उतारकर ज्योतिषीजी के सामने रख दिया। ब्राह्मण देवता बहुत प्रसन्न होकर बोले "बेटी! तुम राजरानी होगी। इसके उपरांत चित्रा का हाथ देखकर ज्योतिषी ने कहा "तुम एक रात के लिए राजरानी होगी"। लतिका का हाथ देखकर उन्होंने कहा तुम्हारा विवाह किसी परदेसी के साथ होगा। लतिका और चित्रा ज्योतिषी की बात ठीक ठीक न समझ उदास खड़ी रहीं।

यूथिका तरला का हाथ पकड़ कर उसे ज्योतिषी के पास ले आई। ज्योतिषी जी बहुत देर तक उसका हाथ देखकर बोले "तुम्हें कुछ दिनों तक तो कष्ट रहेगा, पर आगे चलकर तुम एक बड़े भारी सेनानायक की पत्नी होगी"। तरला हँसकर बोली "महाराज! आप कुछ पागल तो नहीं हुए हैं, भला मैं एक दासी होकर सेनानायक की पत्नी कैसे हो जाऊँगी?"

इतने में महारानी विदाई लेकर आ पहुँचीं। ज्योतिषी जी आशा से कहीं अधिक द्रव्य पाकर प्रसन्नमुख विदा हो रहे थे। इसी बीच गंगा, लतिका आदि मंडप के एक कोने में जा छिपीं। यूथिका ने भी सिर पर का वस्त्र नीचे सरका लिया। महादेवी ने चकित होकर देखा कि पीछे प्रांगण के द्वार पर सम्राट् खड़े हैं। महासेनगुप्त ने पूछा "देवि! क्या हो रहा है?"

महादेवी—ज्योतिषी से फल विचरवा रही हूँ।

"क्या फल बताया?"

"शशांक युद्ध में विजय प्राप्त करके लौटेंगे।"

महासेनगुप्त ने आगे जाकर अपना हाथ बढ़ाया और ज्योतिषीजी

से देखने के लिए कहा। ज्योतिषीजी हाथ देख ही रहे थे कि सम्राट् ने पूछा "मेरे जीवनकाल में शशांक लौटकर आ जायँगे या नहीं ?" ज्योतिषी सम्राट् का हाथ देखते देखते कुछ अधीर से हो पड़े और भूमि पर बैठकर रेखाएँ खींचने लगे। सम्राट् ने फिर पूछा "क्या हुआ ?" ज्योतिषी जी ने कुछ सहमकर उत्तर दिया "कुछ समझ में नहीं आता है"।

सम्राट् सिर नीचा किए उदास-मन मंदिर के आँगन के बाहर गए।

———

बारहवाँ परिच्छेद

मेघनाद तट का युद्ध

शंकर के तट पर युवराज की दुरवस्था का संवाद पाकर यशोधवल-देव ने दो सहस्र अश्वारोहियों के साथ वसुमित्र को युवराज की सहायता के लिए भेजा। उन्होंने स्वयं मेघनाद के उस पार आक्रमण किया और बिना किसी विघ्न बाधा के मेघनाद के पूर्वीय तट पर शिविर स्थापन किया। पहले तो दो तीन लड़ाइयों में विद्रोहियों ने बड़े साहस के साथ यशोधवल का मार्ग रोका। जलयुद्ध का अभ्यास न होने के कारण मागध सेना घबरा उठी। बड़ी कठिनता से गौड़ नाविकों ने मगध सेना का मान रखा। युद्ध की अवस्था देख यशोधवलदेव को कुछ आशंका हुई। पदातिक सेना को शिविर में छोड़ तीन सहस्र गौड़ीय

सेना की सहायता से उन्होंने एक ग्राम पर अधिकार किया। युद्ध विद्या में अनभ्यस्त ग्रामवासी जिस प्रकार पग पग पर बाधा दे रहे थे उससे यशोधवलदेव ने सोचा कि इस प्रकार तो सैकड़ों वर्ष में भी वंगदेश पर अधिकार न हो सकेगा।

यशोधवल इधर इस संकट में पड़े थे कि उधर शंकरनद के युद्ध का संवाद वंगदेश में पहुँचा। विद्रोही सामंत राजा कामरूप की सेना का आसरा देख रहे थे। जब उन्होंने देखा कि अब इधर कामरूप से कोई सहायता नहीं मिल सकती तब वे सब के सब महानायक की शरण में आए। अब रही उनकी प्रजा। बंधुगुप्त, शक्रसेन और जिनेंद्र-बुद्धि की उत्तेजना से वंगदेश के बौद्ध निवासियों ने अधीनता स्वीकार नहीं की। यह देख सामंत राजा बड़े असमंजस में पड़े। उन्होंने अपना अपना प्रदेश और घरबार छोड़ यशोधवलदेव के शिविर में आकर आश्रय लिया।

युद्ध छिड़ गया। भास्करवर्म्मा के पराजित होकर लौट जाने पर भी बंधुगुप्त स्थाण्वीश्वर से सहायता का बचन पाकर युद्ध चलाने लगे। किंतु नेताओं के अभाव से अशिक्षित विद्रोही सेना बार बार पराजित होने लगी। मागध सेना उत्साहित होकर युद्ध करने लगी। गाँव पर गाँव, नगर पर नगर अधिकृत होकर उजाड़ होने लगे। पर बौद्ध प्रजा वशीभूत न हुई। बहुदर्शी यशोधवलदेव ने सोचकर देखा कि इस प्रकार के युद्ध से कोई फल न होगा। देश को उजाड़ने से न उनका और न सम्राट् का कोई लाभ होगा। तब वे सामंत राजाओं की सहायता से संधि का प्रयत्न करने लगे।

संधि न हो सकी। बंधुगुप्त के बहकाने से प्रजा ने कहला भेजा कि हम सब लोग तो थानेश्वर की प्रजा हैं, पाटलिपुत्र की अधीनता नहीं स्वीकार कर सकते।

वसंत के आरंभ में फिर युद्ध का आयोजन होने लगा। इसी बीच युवराज अपनी सेना सहित आकर यशोधवलदेव के साथ मिले। महानायक का शिविर अत्र धवलेश्वर के तट पर खड़ा हुआ। लंबी यात्रा के पीछे युवराज की सेना विश्राम चाहती थी। यशोधवलदेव की भी इच्छा थी कि कुछ दिन युद्ध बंद रखकर सेना को थोड़ा विश्राम दिया जाय। पर गौड़ के सामंतों ने कहा कि यदि ग्रीष्म के पहले युद्ध समाप्त न हो जायगा तो फिर एक वर्ष और लग जायगा, क्योंकि वर्षाकाल में वंगदेश में युद्ध करना असंभव है।

युद्ध चलने लगा। चैत बीतते बीतते सुवर्णग्राम पर अधिकार हो गया। महानायक और युवराज ने विक्रमपुर पर आक्रमण किया। गौड़ीय सामंतों की सहायता से छोटी बड़ी बहुत सी नावों का बेड़ा इकट्ठा हो गया था। पदातिक सेना को भी धीरे धीरे जलयुद्ध का अभ्यास हो गया था। अश्वारोही सेना को शिविर में रखकर महानायक, युवराज, वीरेंद्रसिंह, वसुमित्र और माधवर्म्मा ने नावों को बहुत से दलों में बाँटकर विद्रोहियों पर चारों ओर से आक्रमण किया। विद्रोही सेना घबराकर पीछे हटने लगी।

वैशाख लगते ही युद्ध प्रायः समाप्त हो चला था। विजय प्राप्त करके युवराज बड़े वेग से दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे। अकस्मात् विद्रोहियों की एक सहस्र से अधिक नौसेना मेघनाद के तट पर उनपर टूट पड़ी। युवराज के साथ बीस नावें और चार सौ सैनिक थे। वीरेंद्रसिंहकी सेना उस समय वहाँ से पंद्रह कोस पर थी और यशोधवलदेव का शिविर वहाँ से दस दिन का मार्ग था। प्रस्थान के समय महानायक ने विद्याधरनंदी नाम के एक वृद्ध सामंत को युवराज के साथ कर दिया था। उन्होंने कुमार से धीरे धीरे पीछे हट चलने को कहा। पर उनके परामर्श पर ध्यान नहीं दिया गया। युवराज और अनंतवर्म्मा युद्ध करने पर तुले हुए थे। उन्होंने स्थिर

किया कि पिछली रात को शत्रुसेना पर छापा मारा जाय क्योंकि जब तक किसी उपाय से शत्रुव्यूह का भेद न किया जायगा तब तक लौटना नहीं हो सकता।

सुनसान मैदान में जैसे मरते हुए पशु को देख दूर दूर से गिद्धों का झुंड आकर उसके मरने की प्रतीक्षा में चारों ओर घेरकर बैठता है उसी प्रकार विद्रोही सेना युवराज को चारों ओर से घेरकर आसरा देख रही थी। क्षण क्षण पर उसकी संख्या बढ़ती जाती थी। गाँव गाँव से छोटी बड़ी नावों पर विद्रोहियों का दल शत्रु की समाप्ति करने के उल्लास में उमड़ा चला आता था। विलंब करना अच्छा न समझ युवराज ने सबेरा होते होते उनपर धावा कर दिया, पर उद्देश्य सफल न हुआ—शत्रुव्यूह का भेद न हो सका।

तीसरा पहर होते होते तट पर सेना इकट्ठी करके युवराज ने सबसे विदा ली और कहा "यदि शत्रुव्यूह का भेद हो गया तब तो फिर देखादेखी होगी, नहीं तो नहीं। प्रत्येक नाव शत्रुव्यूह भेदकर निकलने का प्रयत्न करे, कोई किसीका आसरा न देखे" युवराज के बहुत निषेध करने पर भी अनंतवर्म्मा और विद्याधरनंदी उनकी नाव पर हो रहे। बीस रणदक्ष नाविक नौका लेकर चले। बड़े प्रचंड वेग से बीसों नावों ने शत्रुव्यूह पर धावा किया। उस वेग को न सँभाल सकने के कारण विद्रोहियों का नौकादल पीछे हटा, पर व्यूहभेद न हुआ।

युवराज की आज्ञा से नौकादल लौट आया; सुशिक्षित अश्वारोहियों के समान मुट्ठी भर मागधसेना ने फिर शत्रुव्यूह पर आक्रमण किया। सब के आगे युवराज की नाव थी जिस पर खड़े होकर युवराज हाथ में परशु लिए युद्ध कर रहे थे। इस बार व्यूहभेद हुआ। प्रवल वेग न सह सकने के कारण अशिक्षित ग्रामवासी अपनी अपनी नावें लेकर भाग खड़े हुए। बिजली की तरह युवराज की नाव शत्रुव्यूह के

चारों ओर घूम रही थी। परशु की तीक्ष्ण धार खाकर सैकड़ों विद्रोही काल के मुख में जा पड़े। बाणों से जर्जर होकर विद्याधरनंदी नाव पर मूर्च्छित पड़े थे। अनंतवर्म्मा और दस नाविक युवराज की पृष्ठ-रक्षा पर थे।

युवराज जिधर विद्रोहियों की नौका देखते उधर ही टूट पड़ते। वे या तो नाव सहित डुबा दिए जाते अथवा आत्म-समर्पण करते। इस प्रकार व्यूहभेद हो गया, शत्रुपक्ष का बेड़ा तितर बितर हो गया, बहुत सी नावें भाग खड़ी हुईं। संध्या होते होते युद्ध प्रायः समाप्त हो चला। युवराज ने देखा कि एक स्थान पर विद्रोहियों की कई एक नावें इकट्ठी होकर युद्ध कर रही हैं और गौड़ीय नाविक उन्हें किसी प्रकार पराजित नहीं कर सकते हैं। युवराज ने तुरंत नाविकों को उधर बढ़ने की आज्ञा दी। उन्हें देख गौड़ीय नाविक दूने उत्साह से युद्ध करने लगे। एक के पीछे एक नावें डूबती जाती थीं, पर युवराज ने चकित होकर देखा कि बचे हुए शत्रु किसी प्रकार आत्मसमर्पण नहीं कर रहे हैं।

युद्ध के कलकल, अस्त्रों की झनकार, और घायलों की पुकार के बीच युवराज ने सुना कि कोई चिल्लाकर कह रहा है "शक्र! युवराज की नाव अब पास आ रही है"। युवराज ने भय और आश्चर्य्य से देखा कि नावों के जमघट के बीच एक छोटी सी नाव पर दो बौद्ध भिक्खु खड़े हैं। उनमें से एक को तो उन्होंने पहचाना। वह वज्राचार्य्य शक्रसेन था। देखते देखते दूसरे भिक्खु ने एक शूल छोड़ा, जिसके लगते ही कुमार का एक नाविक नदी के जल में गिर पड़ा। पीछे से अनंतवर्म्मा ने चिल्लाकर कहा "सावधान!"

उनकी बात पर कुछ ध्यान न देकर युवराज ने अपनी नाव बढ़ाने की आज्ञा दी। उन्होंने नाव पर से देखा कि दूसरे भिक्खु ने उनपर ताककर शूल फेंका। उन्होंने अपने वर्म्म को सामने किया पर शूल उन्हें छू तक न गया, नाव से दस हाथ दूर पानी में जा पड़ा।

इतने में वाणों से घायल होकर एक और नाविक मारा गया। युद्ध अब प्रायः समाप्त हो चुका था। केवल दो नावें प्राणों पर खेल भिक्खुओं की रक्षा कर रही थीं। युवराज की आज्ञा से सब नावों ने एक साथ उनपर आक्रमण किया। युवराज ने सुना कि दूसरा भिक्खु कह रहा है "शक्र! तुम कर क्या रहे हो?" शक्रसेन बोला "मेरे अंग वश में नहीं हैं, हाथ नहीं उठता है"। सुनते ही दूसरे भिक्खु ने युवराज को ताककर शूल चलाया। पर शूल युवराज को लगा नहीं,। अनंतवर्म्मा चट दौड़कर आगे हो गए और शूल के आघात से मूच्छित होकर नाव पर गिर पड़े।

युवराज की नाव अब भिक्खुओं की नाव के पास पहुँच गई थी, इससे वे अनंत को जाकर देख न सके। हाथ में खड्ग लेकर दूसरा भिक्खु बड़े वेग से युवराज की ओर झपटा। युवराज ने बचाव के लिए अपना परशु उठाया। परशु यदि भिक्खु के सिर पर पड़ता तो वह वहीं ठंढा हो जाता पर एक वर्म्मधारी सैनिक ने उसे अपने ऊपर रोक लिया। परशु ने वर्म्म को भेदकर सैनिक का सिर उड़ा दिया। इतने में दूसरे भिक्खु का खडग युवराज के शिरस्त्राण पर पड़ा जिससे वे अचेत होकर मेघनाद के जल में गिर पड़े। उनके गिरने के साथ ही वज्राचार्य्य जल में धड़ाम से कूद पड़ा।

संध्या के पहले ही से ईशान कोण पर बादल घेर रहे थे। जिस समय युवराज अचेत होकर मेघनाद के काले जल में गिरे उसी समय बड़े जोर से आँधी और पानी आया। दोनों पक्ष युद्ध छोड़कर आश्रय ढूँढने लगे। शत्रु और मित्र की खोज करने का समय किसी को न मिला।

तेरहवाँ परिच्छेद

धीवर के घर

शीतला नदी के किनारे आम और कटहल के पेड़ों की घनी छाया के बीच एक छोटा सा झोपड़ा है। झोपड़े के गोबर से लीपे हुए आँगन में बैठी एक साँवली युवती जल्दी जल्दी जाल बुन रही थी। उसके सामने बैठा एक गोरा गोरा युवक चकित होकर उसके हाथ को देख रहा था। झोपड़े को देखने से जान पड़ता था कि वह किसी मछुवे का घर है। चारों ओर छोटे बड़े जाल पड़े थे। एक ओर सूखी मछलियों का ढेर लगा था। नदीतट पर उजली बालू के बीच दो तीन छोटी छोटी मछली मारने की नावें पड़ी थीं। आसपास और कोई बस्ती नहीं थी। चारों ओर जल ही जल था; बीच बीच में हरे हरे पेड़ों का झापस था। युवती साँवली होने पर भी बड़ी सुंदरी थी। उसके अंग अंग साँचे में ढले से जान पड़ते थे। युवती बड़े बाँकपन के साथ गरदन टेढ़ी किए दोनों हाथों से झट झट जाल बुनती जाती थी और बीच बीच में कुछ मुसकरा कर चाह भरी दृष्टि से पास बैठे युवक की ओर ताकती भी जाती थी। उस दृष्टिपात का यदि कुछ अर्थ हो सकता था तो केवल हृदय का अनिवार्य वेग, चाह की गहरी उमंग, प्रेम की अवर्णनीय व्यथा ही हो सकता था। युवक की अवस्था बीस वर्ष से ऊपर न होगी। उसका रूप अलौकिक था। वैसा रूप धीवर के घर कभी देखने में नहीं आ सकता। धूप से तप कर उसका शरीर तामरस के समान हो रहा था। मैला वस्त्र लपेटे धूल पर बैठा वह ऐसा देख पड़ता था जैसा राख से लिपटा हुआ अंगारा। सिर उसका मुड़ा हुआ था, सारे अंगों

पर अस्त्रों की चोट के चिह्न थे, माथे पर बाईं ओर जो घाव था वह अभी अच्छी तरह सूखा तक न था। धीवर के घर ऐसा रूप कभी किसी ने नहीं देखा। इसी से वह धीवर की बेटी रह-रह कर टकटकी बाँध उसकी ओर देखती रह जाती और वह युवक अजान बालक के समान भोलेपन के साथ उसकी हाथ की सफाई और फुरती देखता था।

इतने में एक और युवक धीरे-धीरे उनके पीछे आ खड़ा हुआ। उन दोनों को इसका कुछ भी पता न लगा। आए हुए पुरुष के एक हाथ में लंबा भाला और दूसरे हाथ में भींगा हुआ जाल था। थोड़ी देर तक तो वह युवक-युवती के हाव-भाव देखता रहा, फिर पूछने लगा "भव, क्या कर रही है?" युवती ने चौंक कर ऊपर ताका और बोली "तेरे क्या आँख नहीं है, देखता नहीं है कि मैं क्या कर रही हूँ?" उस पुरुष ने भाले को अच्छी तरह थाम कर कहा "देखता तो हूँ, पर समझता नहीं हूँ।"

भव—तब फिर खड़ा क्या है? चला जा।

पुरुष—मैं न जाऊँगा। बुड्ढा कहाँ है?

"घर में सो रहा है।"

वह पुरुष झोपड़े की ओर बढ़ा। यह देख युवती उसे पुकार कर बोली "नवीन! नवीन! उधर कहाँ जाते हो?"

"बुड्ढे को बुलाने।"

"वह बहुत थक कर सोया हुआ है, उसे जगाना मत।"

युवक लौट आया। पर युवती ने उसकी ओर आँख उठा कर देखा तक नहीं। वह चुपचाप अपना जाल बुनती रही। थोड़ी देर आसरा देख अंत में उसने युवती को पुकारा "भव?" कोई उत्तर नहीं

"भव!"

"क्या है?"

"चलो नाव पर थोड़ा घूम-फिर आएँ।"

"मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"इतने दिन तो अच्छा लगता था।"

"मैं बहुत बकवाद करना नहीं चाहती।"

जाल बुनने में भूल पड़ गई। दो ओर चित्त बँट जाने से उसका ध्यान उचट गया था। नवीन ने पूछा "तुझे नाव पर चढ़ कर घूमना बहुत अच्छा लगता है, इसी से मैं तुझे बुलाने आया हूँ, चल न।"

"तेरे साथ बाहर निकलने से लोग भला-बुरा कहेंगे, मैं न जाऊँगी।"

"इतने दिन भला-बुरा नहीं कहते थे, आज भला-बुरा कहेंगे।"

"यह सब मैं कुछ नहीं जानती।"

यही कह कर और चिड़चिड़ा कर उसने जाल हाथ से फेंक दिया और वहाँ से चली गई। युवक भी उदास होकर झोपड़े के आँगन से चला गया।

जब युवती ने देखा कि वह युवक चला गया तब वह फिर लौट आई।

पहला युवक ज्यों का त्यों बैठा था। उसने युवती से पूछा "भव! नवीन चला क्यों गया?"

"वह रूठ गया।"

"रूठ गया क्या?"

भव हँसते-हँसते उसकी देह पर लोट गई। युवक चकपका कर उसकी ओर ताकता रह गया। भव ने पूछा "पागल! तू क्या कुछ भी नहीं जानता?"

"न।"

"रूठना किसको कहते हैं?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"चाहना किसको कहते हैं ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"मैं तुझे चाहती हूँ।"

"मैं क्या जानूँ ?"

"तब तू क्या जानता है ?"

"मैं तो कुछ भी नहीं जानता।"

भव हँसते-हँसते लोट पड़ी। थोड़ी देर पीछे उसने फिर पूछा "पागल! तू इतने दिनों तक कहाँ था ?" युवक ने उत्तर दिया "मैं तो नहीं जानता।"

"तेरा घर-बार कहाँ है ? तेरा क्या कहीं कोई नहीं था ?"

"था तो, भव! ऐसा जान पड़ता है मेरा कहीं कोई था। पर कहाँ किस अंधकार में, यह मुझे दिखाई नहीं पड़ता।"

"पागल! थोड़ा सोच कर देख—तो कि कहाँ।"

"मैं नहीं सोच सकता, सोचने से सिर चकराता है।"

"अच्छा, जाने दे।"

"भव! तुम नवीन के साथ घूमने क्यों नहीं गई ?"

"मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"पहले तो बहुत अच्छा लगता था।"

"तू तो पागल है। तेरे मुँह कौन लगे ? अच्छा बोल, तू घूमने चलेगा ?"

"चलूँगा।"

"तुझे नाव पर घूमना अच्छा लगता है ?"

"हाँ, मुझे बहुत अच्छा लगता है। मुझे ऐसा जान पड़ता है

कि नदी के जल में मेरा कुछ खो गया है, यदि मैं जाकर ढूँढ़ूँ तो मिल जायगा; इसी से और अच्छा लगता है"।

"तब चलो"।

"नवीन को बुला लूँ"

"क्या करने को ?"

"वह तो नित्य जाता है"।

"अब न जायगा"।

"क्यों ?"

"मैं तेरी सब बातों का कहाँ तक उत्तर दूँगी ? चलना हो तो चल"।

युवक इच्छा न रहने पर भी उठा। युवती काछा काछकर बालू पर से एक नाव खींचकर जल में ले गई। युवक नाव पर जा बठा। भव दोनों हाथों से डाँड़ चलाने लगी। नाव धारा की ओर चली। नाव के अदृश्य हो जाने पर आम के कुंजों में से निकलकर नवीन बाहर आया। जब तक नाव दिखाई पड़ती रही तब तक वह किनारे खड़ा रहा। नाव के अदृश्य हो जाने पर वह धीरे धीरे झोपड़े की ओर लौटा। इतने में करार पर से किसी ने पुकारा "नवीन"। नवीन बोला "कहिए"।

"भव कहाँ है ?"

"नाव पर घूमने गई है"।

"तुम नहीं गए ?"

"नहीं"।

"उसके साथ कौन गया है ?"

"पागल"।

"अच्छा, तुम इधर आओ। बाबा जी आए हैं"।

नवीन ने जल्दी जल्दी घाट के ऊपर चढ़कर देखा कि कटहल के एक पेड़ के नीचे कषाय वस्त्र धारण किए एक वृद्ध बैठे हैं। उसने उन्हें भक्तिभाव से प्रणाम किया। वृद्ध ने पूछा "वह कहाँ है?"

नवीन—कौन ?

वृद्ध—वही तुम्हारा अतिथि।

"भव के साथ नाव पर घूमने गया है"।

"वह कैसा है?"

"भला चंगा है"।

"पहले की बातों का उसे कुछ स्मरण है?"

"कुछ भी नहीं। वह ज्यों का त्यों पागल है"।

"अच्छी बात है। तो अब मैं जाता हूँ, फिर कभी आऊँगा"।

वृद्ध चले गए। जिसने नवीन को पुकारा था वह पूछने लगा "नवीन! तू क्यों नहीं जाता है?" नवीन बोला "मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है"। दोनों बैठे बहुत देर तक बातचीत करते रहे। दो घड़ी रात बीते भव गीत गाती गाती पागल को लिए लौटी। नवीन तब तक वहीं बैठा था, पर भव उससे एक बात न बोली। वह उठकर धीरे धीरे चला गया।

चौदहवाँ परिच्छेद

अनंतवर्म्मा का विद्रोह

मेघनाद के किनारे रेत पर दो सैनिक दिन डूबने के पहले बैठे बातचीत कर रहे हैं। सामने दूर तक फैला हुआ पड़ाव है। सहस्रों डेरे नदीतट की भूमि छेके हुए हैं। पेड़ों के नीचे आग जला जलाकर सैनिक रसोई बना रहे हैं।

पहला सैनिक बोला "भाई! अब तो जी नहीं लगता। देश की ओर कब लौटना होगा, नहीं कह सकता। युवराज यदि बच गए होते तो लौटने की कोई बातचीत कही जा सकती"।

"हा! क्या सर्वनाश हुआ! अब गुप्तसाम्राज्य डूबा।"

"लक्षण तो ऐसे ही दिखाई पड़ते हैं। महानायक कहते हैं कि माधवगुप्त तो प्रभाकरवर्द्धन के क्रीतदास होकर रहेंगे, वे साम्राज्य न चला सकेंगे।"

"सम्राट् के पास संवाद गया है?"

"अवश्य गया होगा"।

"तुमने युवराज की मृत्यु का वृत्तांत सुना है?"

"हाँ सुना है। युवराज की नाव पर के माझी अनंतवर्म्मा और विद्याधरनंदी को लेकर लौटे हैं, उन्हीं के मुँह से सुना है"।

"उन लोगों ने क्या कहा?"

"उन लोगों ने कहा कि एक दिन बहुत सी विद्रोही सेना ने आकर युवराज की सेना को घेर लिया। विद्याधरनंदी ने पीछे लौट चलने

का परामर्श दिया। पर कुमार ने एक न सुनी, उन्होंने अकस्मात् धावा कर दिया"।

"तब फिर ? तब फिर ?"

"बीस नावें और तीन चार सौ सैनिक लेकर युवराज ने सौ से अधिक नावों पर आक्रमण किया। आश्चर्य्य की बात यह है कि विद्रोही पूर्णरूप से पराजित होकर भागे। युद्ध प्रायः समाप्त हो चुका था। उस समय कुमार ने देखा कि कुछ दूर पर विद्रोहियों की दस बारह नावें जमकर बराबर युद्ध कर रही हैं और किसी प्रकार पराजित नहीं होती हैं। उन्होंने उनपर आक्रमण कर दिया। दोनों पक्ष के बहुत से लोग मरे। विद्याधरनंदी और अनंतवर्म्मा घायल होकर गिर पड़े। इतने में बड़े जोर से आँधीपानी आया। कौन किधर गया इसका किसी को पता न रहा। तभी से युवराज नहीं मिल रहे हैं। कोई कहता है वे युद्ध में मारे गए, कोई कहता है जल में डूब गए, जितने मुँह उतनी बातें हैं"।

"संवाद सुनकर यशोधवलदेव ने क्या कहा ?"

"पहले तो उन्हें संवाद देने का किसी को साहस ही नहीं होता था। युद्ध के तीन दिन पीछे जब विद्याधरनंदी को चेत हुआ तब वे महानायक से मिले। अनंतवर्म्मा तब भी अचेत पड़े थे। आज तीन दिन हुए कि यशोधवलदेव ने जल तक नहीं ग्रहण किया और न शिविर के बाहर निकले हैं। वीरेंद्रसिंह, वसुमित्र, माधववर्म्मा आदि सेनानायक भी उनसे भेंट नहीं कर सकते हैं। शंकरनद के किनारे नरसिंहदत्त के पास भी संवाद गया है, वे भी आते होंगे"।

"भाई, सम्राट् सुनेंगे तो उनकी क्या दशा होगी ? यशोधवल किस प्रकार अपना मुँह पाटलिपुत्र में दिखाएँगे ?"

धीरे धीरे संध्या का अँधेरा फैल गया। दोनों सैनिकों के पीछे से न जाने कौन बोल उठा "पाटलिपुत्र में क्या मुँह दिखाऊँगा यही तो

समझ में नहीं आता"। दोनों सैनिकों ने चौंककर पीछे ताका, देखा तो महानायक यशोधवलदेव! उनसे कुछ दूर पर प्रधान प्रधान सेना-नायक सिर नीचा किए खड़े हैं। महानायक के सिर पर उष्णीष नहीं है, वे नंगे सिर हैं। उनके लंबे श्वेतकेश वायु के झोंकों से इधर उधर लहरा रहे हैं। देखने से जान पड़ता था कि महानायक को आगे पीछे की कुछ भी सुध नहीं है, वे उन्मत्त से हो गए हैं। बड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। उसके उपरांत महानायक बोल उठे "सुनो वीरेंद्र! अभी तक तो मैं पागल नहीं हूँ, पर अब हो जाऊँगा। जब मैं उन्मत्त हो जाऊँ, नंगा होकर नाचने लगूँ तब मुझे पाटलिपुत्र ले जाना। अभागे महासेनगुप्त यदि तब तक जीते बचें तो उनसे कहना कि यशोधवलदेव के पाप का प्रायश्चित्त हो गया। प्राचीन धवलवंश का उच्छेद करके भी पाप से उसका पेट नहीं भरा था इससे वह अंधे की लकड़ी और बूढ़े के सहारे को लेकर भाग्य से जूआ खेलने गया था।

"सुनो वसुमित्र! मागध सेना के सामान्य सैनिक भी कह रहे हैं कि वृद्ध यशोधवलदेव पाटलिपुत्र में कौन सा मुँह दिखाएँगे। ठीक है! मैं अपने बाल्यसखा महाराजाधिराज से उनके पुत्र की मृत्यु की बात कैसे कहूँगा? ज्योतिषियों के मुँह से अनिष्ट फल सुनकर वे सदा अपने पुत्र की चिंता में दुखी रहते थे। मैं उन्हें बहुत समझा बुझाकर उनके नयनों का तारा खींच लाया। उस समय तो कुछ नहीं सूझता था पर अब मैं देख रहा हूँ कि यशोधवल युद्ध करने नहीं आया था, भाग्य से खिलवाड़ करने आया था"।

वीरेंद्रसिंह कुछ कहना ही चाहते थे कि यशोधवलदेव ने फिर कहना आरंभ किया "मुझे कोई समझाने बुझाने न आना। दूधमुहें बालक को लेकर मैं मृत्यु के साथ खेल करने आया था। उस समय मुझे

नहीं सूझता था कि मैं क्या करने जा रहा हूँ, मेरी आँखों पर परदा पड़ गया था। पुत्रप्रेम में व्याकुल सम्राट् ने तोरण तक आकर मेरे हाथ में कुमार को सौंपा था। बाईं आँख का फरकना देख उन्होंने मुझसे कहा था कि युद्ध का परिणाम चाहे जो हो, शशांक को लौटा लाना। वे समझते थे कि मैं उनकी आँख की पुतली निकाले लिए जा रहा हूँ। मेरे निकट महासेनगुप्त सम्राट् नहीं हैं, मगध के महाराजाधिराज नहीं हैं वाल्यबंधु हैं। पुत्रशोक में मैं उन्हें भूल गया था। फिर जब अपने पुत्र का शोक भूला तब उनके पुत्र की हत्या करने के लिए पाटलिपुत्र आया।

"शशांक की हत्या मैंने ही की। उन्हें इस बात का पूरा भरोसा था कि यशोधवल के जीते जी मेरा एक बाल तक कोई बाँका नहीं कर सकता। शंकरनद के किनारे इसी विश्वास पर उन्होंने एक लाख सेना का सामना किया, वंग देश में मुट्ठी भर सैनिक लेकर विद्रोह दमन करने गए। वे जानते थे कि यशोधवल सौ कोस पर भी रहेगा तो भी किसी प्रकार की विपद आने पर झट से पहुँच कर मुझे अपनी गोद में ले लेगा। अब शशांक नहीं हैं। मैं उनकी रक्षा न कर सका। मैंने उन्हें युद्ध करने की शिक्षा तो दी, पर अपनी रक्षा करने की शिक्षा नहीं दी।

"युद्ध समाप्त हो गया, पर उसके साथ ही युवराज शशांक भी•••"

काँपते-काँपते वृद्ध महानायक बालू पर बैठ गए। नायक और सामंत लोग उन्हें सँभालने के लिए आगे बढ़े, पर महानायक ने उन्हें रोक कर कहा "अभी मुझे ज्ञान है, जब मैं ज्ञान शून्य हो जाऊँगा तभी चुपचाप बैठूँगा। कीर्तिधवल को मैंने खोया, उसे सह लिया; शशांक को खोया है, इसे भी सहूँगा। तब फिर तीन दिन तक पड़ा मैं क्या सोचता रहा जानते हो? पुत्रहीना माता से क्या कहूँगा? वृद्ध महा-

सेनगुप्त से क्या कहूँगा ? सबसे बढ़ कर तो यह कि किस प्रकार समुद्रगुप्त के सिंहासन पर प्रभाकरवर्द्धन को बैठते देखूँगा ?"

दोनों सैनिक कठपुतली बने उन्मत्तप्राय महानायक की अवस्था देख रहे थे। दूर पर रेत में खड़ी कई सहस्र मागध सेना चुपचाप आँखों में आँसू भरे वृद्ध की बात सुन रही थी। अकस्मात् अंधकार में करुण कंठ से किसी ने पुकारा "युवराज ! कहाँ हो ? मैं अभी बहुत अशक्त हूँ, आँखों से ठीक सुझाई नहीं पड़ता है। युवराज शशांक ! कहाँ जा छिपे हो ? निकल आओ। तुम्हारे लिए जी न जाने कैसा कर रहा है, बड़ी व्याकुलता हो रही है।"

कंठस्वर सुनकर माधववर्म्मा बोल उठे 'कौन, अनंत ?" क्षीण कंठ से कोई बोला "कौन, युवराज ? कहीं दिखाई नहीं पड़ते हो। अब तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं रह सकता। अब छिपे मत रहो, निकल आओ। एक बार मैं आँख भर देख लूँ, फिर चाहे छिप जाना"।

अनंतवर्म्मा धीरे धीरे महानायक की ओर बढ़े। महानायक स्थिर न रह सके। वे चट बोल उठे "अनंत ! कुमार कहाँ हैं ?" उनका स्वर पहचानकर अनंत ने कहा "कौन, महानायक ? युवराज कहाँ हैं ? मुझे अभी अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ता है"। वृद्ध ने उन्हें अपनी गोद में भर लिया। अनंत ने चकित होकर पूछा "महानायक ! युवराज कहाँ हैं ?" महानायक का गला भर आया, किसी प्रकार वे बोले "मैं भी तो उन्हीं को ढूँढ़ रहा हूँ।" अंनत ने और भी अधिक विस्मित होकर कहा "युवराज क्या आपको भी नहीं दिखाई पड़ते हैं ?" माधव वर्मा ने धीरे-धीरे पास आकर अनंत का हाथ थाम लिया और कहा, "अंनत ! यहाँ आओ।" अंनत वर्मा ने व्याकुल होकर पूछा, "माधव ! युवराज कहाँ हैं ?" यशोधवल बालकों

की तरह रो पड़े और बोले "अंनत ! तुम्हारे युवराज हम सबको छोड़ कर चले गए। जान पड़ता है, अब फिर न आएँगे।"

अनंत धीरे-धीरे महानायक की गोद से उठे। एक बार चारों ओर उन्होंने आँख दौड़ाई, फिर बोले "तो अब युवराज नहीं हैं। इसीसे कोई मुझसे युद्ध की ठीक-ठीक बात नहीं कहता था।" इतने में यशोधवलदेव बोल उठे "तुम सब लोग पाटलिपुत्र लौट जाओ। मैं यहीं बंग देश में ही रहूँगा।" उनकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि अनंत वर्मा गरज कर बोले "महानायक ने क्या कहा ? पाटलिपुत्र लौट जायँ ? सम्राट् को कौन मुँह दिखाएँगे ? महादेवी के आगे जाकर क्या कहेंगे ? श्यामा के मंदिर में मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि जीते जी युवराज का साथ न छोड़ूँगा। किंतु मैं जीता खड़ा हूँ, और युवराज नहीं हैं। अब कौन मुँह लेकर पाटलिपुत्र जाऊँगा ?"

युवक ने झट से तलवार खींच कर अपने मस्तक से लगाई और कहा "मैं खड्ग छूकर कहता हूँ कि जब कभी युवराज लौटेंगे तभी अनंत वर्मा पाटलिपुत्र लौटेगा, बीच में नहीं।" शपथ कर चुकने पर अनंत वर्मा ने तलवार नीचे की और उस पर पैर रख कर उसके दो खंड कर डाले। इसके उपरांत वे घुटने टेक महानायक के सामने बैठ गए और हाथ जोड़ कर बोले "देव ! मौखरि विद्रोही हो गया है, आप सेनापति हैं वह आपके आदेश का पालन न करेगा। उसे बंदी करने की आज्ञा दीजिए।" अकस्मात् सहस्रों कंठों से जयध्वनि हो उठी। मागध सेना क्षुब्ध होकर अपने शरीर तक की सुध भूल इधर-उधर जय ध्वनि करने लगी, उन्मत्तों के समान एक दूसरे के गले मिलने लगी, और शपथ खाने लगी कि यदि युवराज न आएँगे तो कोई घर लौट कर न जायगा।

उस समय एक-एक करके माधव वर्मा, वसुमित्र, वीरेंद्र सिंह इत्यादि सेना नायकों ने आगे बढ़ कर कहा "हम सब के सब विद्रोही

है, कोई पाटलिपुत्र न लौटेगा।" वृद्ध यशोधवलदेव चुप—उनकी आँखों से लगातार आँसुओं की धारा छूट रही थी। अनंत वर्मा के घाव से तनाव पड़ने के कारण रक्त की धारा बह चली जिससे वे अचेत होकर महानायक के पैरों के पास गिर पड़े।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

धीवर की बेटी

नदी के किनारे अमराई की छाया में भव बैठी गीत गा रही है और वही गोरा गोरा पागल युवक उसके पास बैठा मुग्ध होकर सुन रहा है। संध्या होती चली आ रही है। दक्षिण दिशा से शीतल वायु मेघनाद की तरंगों को स्पर्श करती हुई तटदेश को स्निग्ध कर रही है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि सारा संसार उस अप्सराविनिंदित कंठ से निकला हुआ संगीतसुधा पान करने में भूला हुआ है।

गीत थम गया, जगत् के ऊपर से मोहजाल हटा, पेड़ों पर पक्षी बोल उठे। मेघनाद की तरंगें किनारों पर थपेड़े मारने लगीं। युवक चौंक उठा और बोला "बंद क्यों हो गई?" युवती बोली "गाना पूरा हो गया"।

"पूरा क्यों हो गया?"

"इसका तो कोई उत्तर नहीं"।

"क्यों ?"

"तू तो बड़ा भारी पागल है"।

"अब ! मुझे तुम्हारा गाना बहुत अच्छा लगता है"।

"क्या कहते हो ! फिर तो कहो"।

"तुम्हारा गाना बहुत मधुर लगा है"।

"पागल ! क्या तुम मुझे चाहते हो ?"

"चाहता हूँ"।

"क्यों ?"

"तुम्हारा गाना बहुत मधुर है"।

"बस, इसी लिए ?"

"क्या जानूँ"।

युवती लंबी साँस भरकर उठी। युवक ने चकित होकर पूछा "अब आज क्या और गीत न गाओगी ?" युवती बोली "संध्या हो गई है, अब घर चलें"।

"संध्या तो नित्य होती है"।

"मैं भी तो नित्य गाती हूँ"।

"तुम्हारा गाना सुनने की इच्छा सदा बनी रहती है"।

युवती कुछ हँसकर बैठ गई और पूछने लगी "पागल ! अच्छा, बताओ तो तुम कौन हो"।

"मैं पागल हूँ"।

"तुम क्या सब दिन से पागल हो ?"

"सब दिन क्या ?"

"तुम तो बड़े भारी पागल हो। तुम्हारे ध्यान में क्या पहले की कुछ भी बातें नहीं आती हैं ?"

"बहुत थोड़ी सी, सो भी एक छाया के समान। ऐसा जान पड़ता है कि मेरा कहीं कोई था, पर कहाँ यह नहीं ध्यान में आता"।

"तुम यहाँ कैसे आए, कुछ जानते हो ?"

"न"।

"जानने की इच्छा होती है ?"

"न, तुम गाओ"।

"क्या गाऊँ ?"

"वही चंदावाली गीत"।

युवती गुनगुनाकर गाने लगी। शुक्ल पंचमी की धुँधली चाँदनी उस सघन कुंज के अंधकार को भेदने का निष्फल प्रयत्न कर रही थी पर मेघनाद के काले जल की तरंगों पर से पलटकर वह उस साँवली सलोनी युवती को विद्युल्लता सी झलका रही थी। धीवर कन्या का कंठ अत्यंत मधुर था। जो गीत वह गा रही थी बड़ा सुहावना था। युवक टकटकी बाँधे उसके मुँह की ओर ताक रहा था और मन ही मन एक अपूर्व सुख का अनुभव कर रहा था। अकस्मात् गाना बंद हो गया। युवती ने पूछा "तुम्हें चाँदनी अच्छी लगती है, पागल ?"

"अच्छी लगती है"।

"तुम मुझे चाहते हो ?"

"चाहता हूँ"।

"क्यों ?"

"नहीं जानता, जिस दिन से तुम आई हो उसी दिन से चाहता हूँ"।

धीवर की बेटी उसपर मर रही थी। उस असामान्य रूप लावण्य की दीप्ति पर वह पतंग की तरह गिरा चाहती थी। बूढ़े दीनानाथ ने

बहुत दूर से अनाथ बालक नवीन को लाकर इस लिए पाला पोसा था कि उसके साथ अपनी कन्या भव का व्याह कर देगा। इससे इधर भव को नवीन की अवज्ञा करते देख उसे बहुत दुःख होता। वह बीच बीच में भव को समझाता बुझाता, पर वह उसकी एक न सुनती थी। जिस दिन से पागल आया है उसी दिन से वह एकदम बदल सी गई है। वह घर का काम धंधा छोड़ दिन रात पिंजड़े से छूटे हुए पक्षी के समान कभी जल में, कभी वन में इधर उधर फिरा करती है। बूढ़े धीवर की वही एक संतान थी इससे वह उसे डाँट डपट नहीं सकता था। नवीन भी चुपचाप सहकर रह जाता और घर का जो कुछ काम-काज होता कर जाता था।

भव ने फिर पूछा "पागल ! अच्छा बताओ तो तुम कौन हो ?" उत्तर मिला "क्या जानूँ"।

"बाबा जी कहते थे तुम राजपुत्र हो"।

"राजपुत्र क्या ?"

"राजा का बेटा"।

"राजा क्या ?"

"बाबा जी आवें तो पूछूँगी"।

"बाबा जी कौन ?"

"जो तुमको यहाँ लाए हैं।"

"वे कौन हैं ?"

"वे एक महात्मा हैं, पेड़ पर चढ़ कर यहाँ आते हैं"।

"क्या वे ही हमको यहाँ लाए हैं ?"

"हाँ ! तुम लड़ाई में मारे गए थे। उन्होंने नाव पर लेकर तुम्हें बचाया था, पर आँधी में नाव उलट गई और तुम फिर पानी में जा रहे। बाबा मछली मारने गए थे, वे तुम्हें निकाल लाए।"

"मैं तो यह सब नहीं जानता।"

"जानोगे कैसे ? तुम तो उस समय अचेत थे।"

"बाबा जी कहाँ गए ?"

"तुम्हें मेरे घर रखकर वे पेड़ पर बैठकर आकाश में उड़ गए"।

"अब फिर कब आएँगे ?"

"नहीं कह सकती। पर आएँगे अवश्य"।

"तब फिर क्या हुआ ?"

"अपनी देह में देखो तो क्या है ?"

"क्या है ?"

"ये सब चिन्ह कैसे हैं ?"

"मैं कुछ नहीं जानता"।

"बाबा जिस समय तुम्हें निकालकर लाए थे तुम्हारे शरीर भर में घाव ही घाव थे। नवीन ने चिकित्सा करके तुम्हें अच्छा किया है"।

युवक कुछ काल तक चुप रहकर बोला "मुझे किसी बात का स्मरण नहीं है"।

इतने में पीछे से नवीन ने पुकारा "भव ! बूढ़ा तुम्हें बुलाता है"। भव ने पूछा "किस लिए ?"

नवीन—यह मैं नहीं जानता।

भव—तो फिर मैं नहीं आती।

युवक ने कहा "भव ! क्या तुम न जाओगी ? नवीन दुखी होगा, बुड्ढा चिढ़ेगा"। भव ने कहा "चाहे जो हो, मैं न जाऊँगी"।

युवक—तब फिर क्या करोगी ?

भव—गाना सुनोगे ?

युवक—सुनूँगा।

युवती गाना छेड़ा ही चाहती थी कि पीछे से बुड्ढे ने आकर पुकारा "भव ! इधर आ"।

भव—मैं अभी न आऊँगी।

वृद्ध—न आएगी ?

भव—न।

वृद्ध—गाना गाने ही से पेट भर जायगा ?

भव—हाँ, भर जायगा।

वृद्ध ने चिढ़ कर कहा "अच्छा तो वहीं मर।" युवक उठ कर बोला "भव! अब घर चलो।"

भव—गाना न सुनोगे ?

युवक—नहीं, बुड्ढा बहुत चिढ़ गया है।

भव और कुछ न कह कर युवक का हाथ थामे घर लौटी।

———

सोलहवाँ परिच्छेद

महासेनगुप्त की भविष्यद्वाणी

मेघनाद का युद्ध हुए पाँच बरस हो गए। यशोधवलदेव और सामंत लौटे नहीं।

वीरेंद्र सिंह गौड़ देश में, वसुमित्र वंग देश में, माधव वर्मा समतट प्रदेश में, नरसिंहदत्त राढ़ि देश में तथा यशोधवलदेव और अनंत वर्मा मेघनाद के तट पर पड़ाव डाले पड़े थे। इसी बीच पाटलिपुत्र से संवाद आया कि सम्राट् महासेनगुप्त का, अंतकाल उपस्थित है वे यशोधवलदेव को देखना चाहते हैं।

वृद्ध महानायक ने भिन्न-भिन्न स्थानों के नायकों के पास दूत भेजे, पर सब ने कहला भेजा कि हम लोग अपनी इच्छा से पाटलिपुत्र न जायँगे, बंदी बना कर भेजे जा सकते हैं। यशोधवलदेव बड़ी विपत्ति में पड़े। दूत बार-बार कहने लगा कि यदि विलंब होगा तो सम्राट् से भेंट न होगी। कोई उपाय न देख यशोधवलदेव लौटने को तैयार हुए।

सम्राट् को युवराज की मृत्यु का संवाद बहुत पहले मिल चुका था। जिस समय उन्होंने यह दारुण संवाद सुना था वे वज्राहत के समान मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े थे। तब से उन्हें किसी ने सभा में नहीं देखा। वे अंतःपुर के बाहर न निकले। धीरे-धीरे जीवनी शक्ति वृद्ध के जीर्ण शरीर-पंजर से दूर होती गई। मगध साम्राज्य के अमात्यों ने समझ लिया कि सम्राट् अब शीघ्र इस लोक से चला चाहते हैं।

देखते-देखते पाँच बरस बीत गए। माधव गुप्त स्थाण्वीश्वर से लौट आए हैं। नारायण शर्मा ने कहा है कि नए युवराज (माधवगुप्त) प्रभाकरवर्द्धन और उनके दोनों पुत्रों के अत्यंत प्रिय पात्र हैं। चरणाद्रिगढ़ में सेना का रखना आवश्यक नहीं समझा गया इससे हरिगुप्त सेना सहित बुला लिए गए। यशोधवलदेव वंग देश में बैठे बैठे साम्राज्य का कार्य चला रहे थे। पाटलिपुत्र में हृषीकेश शर्मा, नारायण शर्मा और हरिगुप्त उनके आदेश के अनुसार काम करते थे। माधवगुप्त धीरे-धीरे बल और प्रभाव प्राप्त करते जाते थे। उनके व्यर्थ हस्तक्षेप करने से कभी-कभी बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती थी। यह सब सुन कर यशोधवलदेव बड़ी चिंता में दिन काटते थे।

बुझता हुआ दीपक सहसा भभक उठा। मरने के पहले महासेनगुप्त को चैतन्य प्राप्त हुआ। उन्होंने यशोधवलदेव को देखना चाहा। पाँच बरस पर यशोधवल देव पाटलिपुत्र लौटे। महानायक वंगदेश पर विजय प्राप्त करके लौट रहे हैं यह सुनकर पाटलिपुत्रवासियों ने बड़े उल्लास

और समारोह से उनका स्वागत करना चाहा, पर महानायक ने कहला भेजा कि महाराजाधिराज मृत्युशय्या पर पड़े हैं ऐसी दशा में किसी प्रकार का उत्सव करना उचित न होगा। इतना सब होने पर भी नगर के तोरणों और राजपथ पर सहस्रों नागरिकों ने इकट्ठे होकर जयध्वनि द्वारा उनका स्वागत किया। यशोधवलदेव सिर नीचा किए चुपचाप प्रासाद के तोरण में घुसे।

तीसरे तोरण पर महाप्रतीहार विनयसेन उनका आसरा देख रहे थे। यशोधवलदेव को उनसे विदित हुआ कि सम्राट् के प्राण निकलने में अधिक विलंब नहीं है। वृद्ध यशोधवल के पैर थरथरा रहे थे। वे किसी प्रकार अंतःपुर में पहुँचे। लतिका उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ी, पर उनकी आकृति देख सहमकर पीछे हट गई। महानायक ने सम्राट् के शयनागार में प्रवेश किया।

उन्होंने द्वार ही पर से सुना कि महासेनगुप्त क्षीण स्वर से पूछ रहे हैं "क्यों? यशोधवल कहाँ हैं?" वृद्ध महानायक भवन के भीतर पहुँचे। वे अपने बाल्यबंधु का हाथ थामकर बैठ गए। आँसुओं के उमड़ने से उन्हें कुछ सुझाई नहीं पड़ता था, आवेग से गला भरा हुआ था। सम्राट् ने कहा "छि! यशोधवल, रोते क्यों हो? यह रोने का समय नहीं है। तुम्हें अब तक देखा नहीं था इसीसे प्राण इस जीर्ण पंजर को छोड़ निकलता नहीं था"। सम्राट् के सिरहाने महादेवी पत्थर की मूर्ति बनी बैठी थीं। उन्होंने सम्राट् का गला सूखते देख उनके मुँह में थोड़ा सा गंगाजल दिया।

महासेनगुप्त फिर बोलने लगे "सुनो यशोधवल! शशांक मरे नहीं हैं। ज्योतिष की गणना कभी मिथ्या नहीं हो सकती। मेरा पुत्र अंग, वंग और कलिंग का एकछत्र सम्राट् होगा। उसके बाहुबल से स्थाण्वीश्वर का सिंहासन काँप उठेगा"। यशोधवलदेव कुछ कहा चाहते थे

पर सम्राट् फिर बोलने लगे "सुनते चलो, तर्क वितर्क का समय नहीं है। शशांक लौटेंगे, पर मेरे भाग्य में अब उनका मुँह देखना नहीं लिखा है। शशांक के लौटने पर उन्हें सिंहासन पर बिठाना। विनय!" महाप्रतीहार विनयसेन सामने आए। सम्राट् ने कहा "झटपट गरुड़-ध्वज लाओ। हृषीकेश कहाँ हैं?" विनयसेन ने उत्तर दिया "दूसरे घर में हैं"। विनयसेन गरुड़ध्वज लाने गए। सम्राट् ने कहा "यशोधवल! अब मैं मरता हूँ। जब तक शशांक लौटकर न आएँ तब तक राज्यभार न छोड़ना, नहीं तो माधव साम्राज्य का सत्यानाश कर देगा"।

गरुड़ध्वज हाथ में लिए विनयसेन आ पहुँचे। सम्राट् महादेवी की सहायता से उपधान का सहारा लेकर बैठे और बोले "यशोधवल! गरुड़ध्वज छूकर शपथ खाओ कि जबतक शशांक न आजाँयगे तब तक राज्य का भार न छोड़ेंगे"।

यशोधवलदेव ने गरुड़ध्वज छूकर शपथ खाई। सम्राट् ने फिर कहा देवि! तुम सहमरण का विचार कभी न करना। तुम्हारा पुत्र लौटकर आएगा। जब पुत्र सिंहासन पर बैठ जाय तब चिता पर बैठना"। महादेवी ने सम्राट् के चरण छूकर शपथ खाई। तब सम्राट् ने प्रसन्न होकर अमात्यों को बुलाने की आज्ञा दी।

थोड़ी देर में हृषीकेश शर्म्मा, हरिगुप्त, रामगुप्त, रविगुप्त, और माधवगुप्त शयनागार में आए। महासेन गुप्त उस समय शिथिल पड़ गए थे। बुझने के पहले एक बार वृद्ध का जीवन-प्रदीप फिर जग उठा। वे बोले "नारायण! मेरा क्षीण स्वर हृषीकेश के कानों तक न पहुँचेगा। मैं जो कुछ कहता हूँ उन्हें समझा दो। यह क्षत्र, दंड और सिंहासन तुम लोगों के हाथ सौंपता हूँ। शशांक जीवित हैं और अवश्य लौटकर आएँगे। उनके लौटने पर उन्हें सिंहासन पर बिठाना। जब तक वे

न लौटें माधवगुप्त राजप्रतिनिधि होकर सिंहासन पर बैठें। तुम लोग गरुड़ध्वज छूकर शपथ करो कि जो कुछ मैंने कहा है सबका पालन होगा"।

अमात्यों ने एक एक करके गरुड़ध्वज स्पर्श करके शपथ खाई। इसके उपरांत सम्राट् ने माधवगुप्त से कहा "माधव! तुम भी शपथ करो"। माधव गुप्त को इधर उधर करते देख यशोधवलदेव ने कुछ कड़े स्वर से कहा "कुमार! सम्राट् आदेश कर रहे हैं"। सम्राट् बोले "शपथ करो कि बड़े भाई के लौट आने पर तुम बिना कुछ कहे सुने झट सिंहासन छोड़ दोगे। शपथ करो कि कभी बड़े भाई के साथ विरोध न करोगे"। माधवगुप्त ने धीमे स्वर से सम्राट् के मुँह से निकली हुई बात दोहराई। यशोधवल बोले "महाराजाधिराज! यशोधवल का एक और अनुरोध है। कुमार इस बात की शपथ खायँ कि वे कभी स्थाण्वीश्वर के आश्रित न होंगे।

सम्राट् ने थोड़ा सिर उठाकर कहा "माधव! शपथ करो"। काँपते हुए हाथों से गरुड़ध्वज छूकर माधवगुप्त ने शपथ खाई "आपत्काल में भी मैं कभी स्थाण्वीश्वर का आश्रय न लूँगा"। इस बात पर मानों भवितव्यता अदृश्य होकर हँस रही थी।

सम्राट् के आदेश से लोग उन्हें गंगाघाट पर ले गए। तीसरे पहर आत्मीय जनों के बीच, अभिजातवर्ग के सामने सम्राट् महासेनगुप्त ने शरीर छोड़ा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

नवीन का अपराध

देखते-देखते पाँच बरस निकल गए। गौर वर्ण युवक धीवर के घर रहते-रहते धीवरों की चाल-ढाल पर चलने लगा। वह अब बड़ी फुरती से नाव खेने लगा, पानी में जाल छोड़ने लगा। उसके जी में डर या शंका का नाम न था इससे माझियों के बीच वह बल और साहस के लिए विख्यात हो गया। पर उसका नाम ज्यों का त्यों रहा, उसमें कुछ फेर-फार न हुआ। सब लोग उसे "पागल" ही कह कर पुकारते थे। दीनानाथ उसे बहुत चाहता था। नवीन को छोड़ धीवरों में वह और सबका प्रेमपात्र हो गया। इन पाँच बरसों के बीच कोई उसकी खोज-खबर लेने न आया। अज्ञातकुलशील युवक धीरे-धीरे माझियों में मिल गया।

नवीन ने सेवा-यत्न करके उसे अच्छा किया था अवश्य पर भव का उस पर अनुराग देख वह उससे बहुत जलता था। वह अपने पालन कर्ता दीनानाथ के संकोच से कभी मुँह फोड़ कर कुछ कहता तो न था पर डाह के मारे भीतर ही भीतर जला करता था। बड़े कष्ट से वह अपने हृदय की आग दबाए रहता था, पर वह इस बात को जानता था कि किसी न किसी दिन वह आग भड़क उठेगी जिसमें पड़ कर दीनानाथ का सब कुछ भस्म हो जायगा।

एक दिन नवीन ने देखा कि नदी के किनारे एक पेड़ की डाल पर बैठी भव पागल के साथ घुलघुल कर बातचीत कर रही है। देखते

ही उसके शरीर में आग लग गई। भव का ऐसा व्यवहार वह न जाने कितने दिनों से देखता आता था, पर वह देख कर भी नित्य अपने को किसी प्रकार सँभाल कर काम-काज में लग जाता था। पर आज वह आपे के बाहर हो गया। सिर से पैर तक वह आग-बबूला हो गया, उसके रोम-रोम से चिनगारियाँ छूटने लगीं। नवीन कहीं से लोहे का एक अंकुश उठा लाया था। उसे हाथ में लिए वह एक पेड़ की आड़ में छिप रहा।

थोड़ी देर में दीनानाथ की पुकार सुन कर भव वहाँ से चली गई। पागल एक पेड़ की जड़ पर बैठा-बैठा पानी थपथपाने लगा। नवीन ने पास जाकर पुकारा "पागल !"

"क्या है ?"

"इधर आ।"

पागल कुछ न कह कर पास आ खड़ा हुआ। नवीन बोला "तू क्या करता था ?"

"भव के साथ बैठा था।"

"क्यों बैठा था ?"

"न बैठता तो भव रूठ जाती।"

"तू क्या भव को चाहता है ?"

"हाँ ! चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"भव का गाना बड़ा अच्छा लगता है।"

"मैं तुझे मार डालूँगा।"

"क्यों मारोगे, नवीन ?"

"तू भव को प्यार करता है इसी लिए।"

"मैं तो तुम्हें भी प्यार करता हूँ।"

"झूठ कहता है ।"

"नहीं, नवीन ! तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ ।"

"तो फिर भव को क्यों प्यार करता है ?"

"क्या एक को प्यार करके फिर दूसरे को नहीं प्यार करना होता ?"

"नहीं ।"

"मैं तो नहीं जानता ।"

"तो फिर मैं तुझे मार डालूँगा ।"

"मारोगे क्यों, नवीन ?"

नवीन से कोई उत्तर न बन पड़ा, वह बहुत देर तक चुपचाप खड़ा रहा, फिर बोला—

"तो फिर तू अस्त्र लेकर आ, मैं तेरे साथ लड़ूँगा ।"

"क्यों ?"

"हम दोनों में से किसी एक को मरना होगा ।"

"और दोनों बचे रहें तो ?"

"भव को दो आदमी नहीं प्यार कर सकते ।"

"मैं तुमसे न लड़ूँगा ।"

"क्यों ?"

"तुमने मेरे प्राण बचाए हैं ।"

"तो इससे क्या ? मैं तुझे मारूँगा । तू न लड़ेगा ?"

"न । तुमने मुझे बचाया क्यों था ?"

"यह सब मैं कुछ नहीं जानता । मैं तुझे मारूँगा ।"

"तो फिर मारो ।"

नवीन बड़े फेर में पड़ा । मारने को तो उसने कहा, पर उसका हाथ न उठा । वह चुपचाप खड़ा रहा । यह देख पागल बोला—

"नवीन ! तुम मुझे मारो, मैं कुछ न कहूँगा ।"

"क्यों ?"

"तुमने मुझे बचाया है।"

"इससे क्या हुआ ?"

"न जाने कौन मुझसे कहता है कि तुम्हें नहीं मारना चाहिए।"

नवीन और कुछ न कह सका। पागल उसका हाथ थाम कर कहने लगा "नवीन ! भव को प्यार करने से तुम इतना चिढ़ते क्यों हो ?"

नवीन चुप।

होनहार टलता नहीं। उसी समय वन के भीतर से भव ने पुकारा "पागल ! पागल ! कहाँ हो ?" उसके पुकारने में चाह भरी आकुलता टपकती थी। उसे सुनते ही नवीन के हृदय की दबती हुई आग एक-बारगी भड़क उठी। उसने अपने के बहुत सँभालना चाहा, पर रोक न सका। भव ने फिर पुकारा "पागल ! तुम कहाँ हो ?" आग में घी पड़ा। नवीन ने अंकुश उठाकर पागल के सिर पर मारा। युवक पीड़ा से कर्राहकर भूमि पर गिर पड़ा। नवीन भागा।

भव दूर पर थी, पर उसने पागल का कराहना सुना। वह दौड़ी हुई आई और देखा कि पेड़ के नीचे रक्त में सना पागल पड़ा है। वह जोर से चिल्ला कर पागल के ऊपर गिर पड़ी। चिल्लाना सुन झोपड़े से दीनानाथ दौड़ा आया। दोनों ने युवक को चेत में लाने की बड़ी चेष्टा की, पर वह अचेत पड़ा रहा। अंत में वे उसे उठा कर झोपड़े में ले गए।

अठारहवाँ परिच्छेद

खोए हुए का पता

"तुम कौन हो ?"

"पागल ! मुझे नहीं पहचानते ? मैं भव हूँ ।"

"हाँ पहचानता हूँ, तुम भव हो । अनंत कहाँ है ?"

झोपड़े में एक मैले बिस्तर पर पड़ा पूर्व परिचित युवक भव से यही पूछ रहा था । आज तीन दिन पर उसे चेत हुआ है । भव ताड़ का पंखा लिए उसे हाँक रही थी । उसने चकित होकर पूछा "पागल ! अनंत कौन ?"

"तुम नहीं जानती । विद्याधरनंदी कहाँ है ?"

भव समझी कि पागल यों ही बक रहा है । वह अपने पिता को पुकार कर कहने लगी कि "बाबा, बाबा ! देखो तो पागल क्या कह रहा है ।"

दीनानाथ नदी के किनारे खड़ा देख रहा था कि बहुत बड़ी-बड़ी नावें मेघनाद के उस पार से उसके झोपड़े की ओर चली आ रही हैं । युवक ने फिर कहा "तुम अनंत को बुला दो, मैं युद्ध का संवाद जानने के लिए बहुत घबरा रहा हूँ ।" इतने में दीनानाथ के साथ एक वृद्ध और एक युवक झोपड़े में आया । झोपड़े के द्वार पर बहुत से लोगों के आने का शब्द सुनाई पड़ा । भव चकपकाकर ताकती रह गई ।

युवा पुरुष बिस्तर पर पड़े युवक को देखते ही चारपाई के किनारे घुटने टेक कर बैठ गया और कोष से तलवार खींच सिर से लगा कर बोला "महाराजाधिराज की जय हो ! प्रभु, मुझे पहचानते हैं ?"

"क्यों नहीं पहचानता ? तुम वसुमित्र हो। अनंत कहाँ हैं ?"

"वे कुशल से हैं। श्रीमान् का जी कैसा है ?"

"अच्छा है। युद्ध का क्या समाचार है ?"

"युद्ध में महाराज की विजय हुई। श्रीमान् उठ सकते हैं ?"

शशांक के चारपाई पर से उठने के पहले ही आए हुए वृद्ध ने पास आकर पूछा "शशांक ! मुझे पहचानते हो ?" उत्तर मिला "पहचानता हूँ। तुम वज्राचार्य्य शक्रसेन हो।" दीनानाथ ने आगे बढ़ कर कहा "इन्हीं ने तुमको—आपको—पाँच बरस हुए नदी से निकाल कर बचाया था।" शशांक ने विस्मित होकर पूछा "वज्राचार्य्य ने ? पाँच बरस पहले ? वसुमित्र ! मैं कहाँ हूँ ?"

"श्रीमान् इस समय बंग देश में हैं।"

भव पत्थर की मूर्ति बनी चुपचाप यह सब अद्भुत लीला देख रही थी। शशांक को उठते देख वह भी उठ खड़ी हुई। शशांक झोपड़े के द्वार पर आकर खड़े हुए। बाहर और नदी के किनारे कई सहस्र सैनिक खड़े थे। उनमें से प्रत्येक युवराज के अधीन किसी न किसी युद्ध में लड़ा था। जिन्होंने उन्हें देख पाया वे देखते ही जयध्वनि करने लगे। जो कुछ दूर पर खड़े थे और जो नाव पर थे वे भी जयध्वनि करने लगे। सहस्रों कंठों से एक स्वर से शब्द उठा "महाराजाधिराज की जय हो।" शशांक चौंक पड़े और घबराकर वसुमित्र से पूछने लगे "वसुमित्र ! ये लोग मुझे महाराजाधिराज क्यों कह रहे हैं ?"

वसु०—प्रभु ! थोड़ा स्थिर होकर विराजें, मैं सारी व्यवस्था कहता हूँ।

शशांक—नहीं वसुमित्र ! मैं शांत नहीं रह सकता। बताओ, क्या हुआ है।

वसु०—मेघनाद के युद्ध में आप घायल होकर नदी में गिर पड़े। वज्राचार्य शक्रसेन आपको निकाल कर इस धीवर के घर ले आए। वे बीच-बीच में आपको देख जाते थे। बंधुगुप्त ने यह सुन कर उन्हें कारागार में बंद कर दिया। वज्राचार्य कारागार से भाग कर मेरे पास आए। इस प्रकार आज पाँच बरस पर श्रीमान् का पता लगा। अब तक हम लोग देश लौट कर नहीं गए। केवल महानायक यशोधवलदेव महाराजाधिराज के अंतिम समय—

शशांक बोल उठे "अंतिम समय? क्या पिताजी अब नहीं हैं?"

वसु०—महाराजाधिराज महासेनगुप्त का परलोकवास हो गया।

शशांक—वसुमित्र! मरते समय पिताजी को मेरा ध्यान आया था? पिताजी क्या यह सुन चुके थे कि मैं युद्ध में मारा गया?

वसु०—प्रभु! लोगों के मुँह से सुना है कि महाराजाधिराज ने अंतिम समय में महानायक को पास बुला कर कहा था कि आप जीवित हैं। गणना के अनुसार आपकी आयु अभी बहुत है। महाराज को पूरा विश्वास था कि आप जीते-जागते हैं और लौटेंगे। इसीसे उन्होंने महादेवी जी को सहमरण से रोक लिया। इस वृद्धावस्था में भी महा नायस सारा राजकार्य चला रहे हैं—

शशांक—हाय! पिताजी।

पिता की मृत्यु का संवाद सुन कर शशांक बालकों के समान रोने लगे। थोड़ी देर में शोक का वेग कुछ थमने पर उन्होंने वज्राचार्य्य शक्रसेन से पूछा "वज्राचार्य्य! बंधुगुप्त कहाँ हैं?"

शक्र०—अब तो जहाँ तक समझता हूँ पाटलिपुत्र में होंगे।

शशांक—उन्हें मेरा कुछ पता लगा है।

शक्र०—मैं तो समझता हूँ, नहीं। पर इतना वे अवश्य जानते हैं कि आप जीवित हैं। इससे दाँव पाकर आपको मारने का विचार है।

शशांक—मुझे क्यों मारेंगे ? वसुमित्र ! महानायक कहाँ हैं।

वसु०—पाटलिपुत्र में। वे स्वर्गीय महाराजाधिराज की आज्ञा से सब राजकार्य्य चला रहे हैं। पर कुछ दिन हुए स्थाण्वीश्वर से एक अमात्य आए हैं। वे ही आज कल माधवगुप्त के प्रधान मंत्री हैं।

शशांक—तो क्या महानायक सब राजकार्य छोड़ बैठे हैं ?

वसु०—उन्हें विवश होकर छोड़ना पड़ा है।

शशांक—तो क्या नरसिंह को भी मंडला का अधिकार नहीं मिला ?

वसु०—वे पाटलिपुत्र इस लिए नहीं लौटे कि चित्रा को कौन मुँह दिखाएँगे।

शशांक—चित्रा—चित्रादेवी।

वसु०—प्रभु ! चित्रादेवी कुशल-मंगल से हैं।

शशांक—चित्रा का विवाह हुआ ?

वसु०—विवाह ? यह श्रीमान् कैसी बात कहते हैं। वे तो विधवा के समान अपने दिन काट रही हैं और आपका आसरा देख रही हैं।

शशांक—तुम्हारी यूथिका की तरह ?

वसुमित्र ने लजा कर सिर नीचा कर लिया। शशांक ने फिर पूछा "नरसिंह कहाँ हैं ?"

"वे राढ़ देश में हैं। उन्होंने भी माधवगुप्त की अधीनता नहीं स्वीकार की"।

"वसुमित्र ! तुम बार बार माधवगुप्त का नाम क्यों लेते हो ? क्या तुम उन्हें सम्राट् नहीं मानते ?"

"प्रभु ! मैं भी विद्रोही हूँ। जब से महाराजाधिराज का स्वर्गवास हुआ है तब से मैंने एक कौड़ी पाटलिपुत्र नहीं भेजी है। आपके साथ जितने लोग यहाँ वंगदेश में आए थे उनमें से एक महानायक यशोधवलदेव ही माधवगुप्त की आज्ञा में हैं और कोई नहीं। राढ़ में

नरसिंहदत्त, समतट में माधववर्म्मा, वंगदेश में मैं—ये सब के सब इस समय विद्रोही हैं। मंडला में जमकर अनंतवर्म्मा ने जंगलियों की सहायता से माधवगुप्त की सेना पर खुल्लमखुल्ला आक्रमण किया है। दक्षिण मगध भी उन्हींके हाथ में है। मंडला से लेकर रोहिताश्व तक का सारा पहाड़ी प्रदेश उनके अधिकार में है। गौड़ देश में वीरेंद्रसिंह केवल वृद्ध महानायक का मुँह देखककर विद्रोह नहीं कर रहे हैं। रामगुप्त और हरिगुप्त पाटलिपुत्र में पड़े स्थाण्वीश्वर के दास की आज्ञा का पालन कर रहे हैं"।

शशांक ने चुपचाप सारी बातें सुनीं। बहुत देर पीछे वे बोले "वसुमित्र! अब क्या करना चाहिए?"

वसु०—पाटलिपुत्र चलिए।

"अकेले तुम्हारे साथ?"

"साम्राज्य में बंधुगुप्त और बुद्धघोष को छोड़ ऐसा कोई नहीं है जो आपका नाम सुनते ही दौड़ा न आएगा। प्रभु! मैं अभी चारों ओर संवाद भेजता हूँ, एक महीने के भीतर पचास सहस्र पदातिक इकट्ठे हो जायँगे"।

"वसुमित्र! घबराओ न। अभी माधव और नरसिंह के पास संवाद भेजो। माधव को तुरंत सेना लेकर चलने को कहो, और नरसिंह से कहो, कि वे अपनी सेना लेकर गंगा के किनारे रहें। वीरेंद्र और अनंत के पास संवाद भेजने की आवश्यकता नहीं है"।

"क्यों श्रीमान्?"

"मुझे विश्वास है कि मेरे लिये वे सदा तैयार होंगे।"

"अच्छा तो मैं नाव पर जाता हूँ, आप कपड़े बदलें"।

वसुमित्र ने तलवार माथे से लगाकर नए सम्राट् का अभिवादन किया और वज्राचार्य्य के साथ नाव पर लौट गए।

भव अब तक चुपचाप खड़ी थी। वह धीरे धीरे शशांक के पास आई और पूछने लगी "पागल! तुम कौन हो?"

"भव! अब मैं पागल नहीं हूँ, अब मैं राजा हूँ"।

"तो क्या तुम चले जाओगे?"

"हाँ! अभी तो देश को जाऊँगा"।

"कब जाओगे?"

"मैं समझता हूँ, कल ही"।

"हाँ! आज न जाना, मैं तुम्हें आँख भर देखूँगी। फिर तो तुम लौट कर आओगे नहीं"।

भव डबडबाई हुई आँखें लिए झोपड़े से बाहर निकली। शशांक व्यथित हृदय से झोपड़े के सामने खड़े किए हुए डेरे में गए।

दो पहर रात बीते शशांक नदीतट पर डेरे के बाहर निकल कर बैठे हैं। दूर पर आग जल रही है और डेरे के चारों ओर पहरेवाले खड़े हैं। अँधेरी रात में बैठे नए सम्राट् चिंता कर रहे हैं। चिंता की अनेक बातें हैं। इन छ वर्षों के बीच संसार में कितने परिवर्त्तन हो गए हैं, उसकी दशा में कितना उलटफेर हो गया है। पिता नहीं हैं, माधवगुप्त मगध के सिंहासन पर विराजमान हैं, स्थाण्वीश्वर के राजदूत ने आकर यशोधवलदेव को पदच्युत कर दिया है। थोड़ी देर पीछे ध्यान आया कि वसुमित्र कहते थे कि चित्रा का अभी विवाह नहीं हुआ है।

देखते देखते मेघनाद के किनारे से एक व्यक्ति दौड़ा दौड़ा आया और शशांक के पैरों पर लोट कर कहने लगा "पागल! मुझे क्षमा करो। मैंने सुना है कि तुम राजा हो, तुम्हारे हृदय में अपार दया है, तुम मेरा अपराध क्षमा करो"।

सम्राट् ने विस्मित होकर देखा कि कीचड़ लपेटे, भीगा वस्त्र पहने नवीन भूमि पर पड़ा है। उन्होंने आँखों में आँसू भर कर उसे उठा लिया और कहने लगे "नवीन ! क्षमा कैसी, भाई ! तुम उस समय पागल हो गए थे। मैं तो पागल था ही, तुम्हारे हृदय की वेदना को न समझ सका। तुम भव के साथ विवाह करो, भव तुम्हारी है"।

गले से छूट कर नवीन बोला "तुम सचमुच राजा हो, इतनी दया मैंने आजतक कहीं नहीं देखी। राजा ! मैंने सुना है तुम देश जा रहे हो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। मैंने तुम्हारा रक्त बहाया है। जब तक प्रायश्चित्त न करूँगा मेरे मन की आग न बुझेगी। नवीनदास आज से तुम्हारा क्रीतदास हुआ जब तुम देश में जाकर राजा हो जाओगे और मैं जीता रहूँगा तब लौटूँगा"। इतना कह कर नवीन सम्राट् का पैर पकड़ कर बैठ गया। शशांक ने उसे उठा कर फिर गले से लगाया। उनका बहुमूल्य वस्त्र कीचड़ कीचड़ हो गया।

दूसरे दिन सबेरे शशांक ने सेना-सहित यात्रा की। यात्रा के समय दीनानाथ और नवीनदास सहस्रों माँझी ले कर साथ हो लिए। रात को ही भव न जाने कहाँ चली गई, उसका कहीं पता न लगा।

तीसरा खंड

पहला परिच्छेद

पिंगलकेश अतिथि

जाड़े के आरंभ में सूर्य्योदय के पहले मंडला की विकट घाटी पार करके एक अश्वारोही मंडलादुर्ग के सिंहद्वार के सामने आ खड़ा हुआ। पिपीलिकाश्रेणी के समान बहुत से अश्वारोही और पदातिक उसके पीछे पीछे आते थे। अश्वारोही ने गढ़ के फाटक पर खड़े होकर पुकारा "गढ़ में कोई है?" परकोटे पर से एक पहरेवाला बोला "तुम कौन हो?" अश्वारोही ने कहा "हम लोग अतिथि हैं"।

पहरे०—तो यहाँ क्यों आए? अतिथिशाला में जाओ। अश्वारोही ने हँस कर कहा "हम लोग गढ़ के अतिथि हैं अतिथिशाला में क्या करने जायँ?"

पहरेवाले ने चकित होकर कहा "गढ़ का अतिथि तो आज तक मैंने कभी नहीं सुना। यह एक नई बात है"।

अश्वारोही—तुम गढ़पति से जाकर कहो कि गढ़ के एक अतिथि आए हैं, वे गढ़ के भीतर आना चाहते हैं।

पहरे०—गढ़पति अभी सो रहे हैं, मैं अभी उनके पास नहीं जा सकता। तुम्हारे पीछे बहुत से लोग दिखाई पड़ते हैं, वे सब क्या तुम्हारे ही साथ हैं?

अश्वारोही—हाँ।

पहरे०—तो फिर उन्हें यहाँ से हट जाने को कहो, नहीं तो अच्छा न होगा।

अश्वा०—अतिथि होकर हटेंगे कैसे ?

इतने में अश्वारोही के पास बहुत से अश्वारोही और पदातिक आ खड़े हुए। पहरेवाले ने तुरही बजाई। देखते देखते दुर्ग का परकोटा सशस्त्र सैनिकों से भर गया। अश्वारोही ने पूछा "तुम्हारा स्वामी कौन है ?" उत्तर मिला "महाराज अनंतवर्म्मा"।

अश्वा०—उन्हें बुला लाओ।

पहरे०—अपने दल के लोगों को हटाओ नहीं तो हमलोग आक्रमण करते हैं।

अश्वारोही की आज्ञा से उसके साथ के लोग दूर हट गए। थोड़ी देर में एक वर्म्मधारी पुरुष ने परकोटे पर आकर पूछा "तुम कौन हो ?"

अश्वा०—मैं अतिथि हूँ। तुम क्या यज्ञवर्म्मा के पुत्र अनंतवर्म्मा हो ?

"हाँ, पर तुम कौन हो ? तुम्हारा कंठस्वर तो परिचित सा जान पड़ता है।

"कंठस्वर से नहीं पहचान सकते ?"

"नहीं"।

"मुझे पाटलिपुत्र में कभी देखा है"

"देखा होगा, पर इस समय तो नहीं पहचानता"।

"एक दिन थानेश्वर की सेना के शिविर में बंदी होकर पाटलिपुत्र में गंगा के तट पर खड़े थे, ध्यान में आता है ?"

"हाँ आता है। कौन, नरसिंह ?"

अश्वारोही ठठा कर हँस पड़ा और उसने धीरे धीरे अपना शिरस्त्राण हटाया। पीठ और कंधे पर भूरे भूरे केश छूट पड़े जो उदय होते हुए सूर्य्य की किरनें पड़ने से झलझल झलकने लगे। गढ़ के

परकोटे पर वर्म्मधारी योद्धा चिल्ला उठा "पहचान गया युवराज—महाराजाधिराज—"।

उस समय नरसिंहदत्त, वीरेंद्रसिंह, माधववर्म्मा और वसुमित्र आदि प्रधान सेनानायक आकर सम्राट् के आस पास खड़े हो गए। तुरंत दुर्ग का द्वार खुल गया और सब लोग दुर्ग के भीतर गए। दिन भर दुर्ग के भीतर सेना जाती रही। संध्या होने के कुछ पहले विद्याधर-नंदी शेष सेना लेकर पहुँचे। वसुमित्र की बात ठीक निकली। पचास सहस्र से ऊपर सेना शशांक के साथ पाटलिपुत्र की ओर चली थी।

ज्योंही शशांक वंगदेश से बाहर हुए थे कि समतट से माधववर्म्मा आकर उनके साथ मिल गए थे। केवल तीन आदमी थोड़ी सी सेना लेकर भागीरथी के किनारे अब तक गए थे। इससे यह किसीने न जाना कि शशांक पाटलिपुत्र लौट रहे हैं। भागीरथी के तट पर नरसिंह सेना लिए पड़े थे। उनके साथ इतनी सेना देखकर किसीको कुछ आश्चर्य न हुआ। माधवगुप्त जब शपथ भंग करके सिंहासन पर बैठ गए तब साम्राज्य के सब प्रधान अमात्यों की श्रद्धा उनकी ओर से हट गई। उसके पीछे जब स्थाण्वीश्वर के अमात्य द्वारा वृद्ध महानायक यशोधवलदेव का बात बात में अपमान होने लगा तब अभिजातवर्ग के लोग अत्यंत क्षुब्ध हो उठे। भीतर भीतर अत्यंत विरक्त होने पर भी उन्होंने समुद्रगुप्त के वंशधर के प्रति स्पष्ट रूप से अपना असंतोष नहीं प्रकट किया।

महासेनगुप्त की मृत्यु के एक वर्ष के भीतर ही साम्राज्य में बहुत कुछ उलटफेर हो गया है। गौड़ और वंग में शशांक के साथी विद्रोही हुए। अनंतवर्म्मा ने दक्षिण मगध को अपने हाथ में करके मंडलागढ़ पर अधिकार जमाया। प्रभाकरवर्द्धन के अनुरोध से माधवगुप्त ने चरणाद्रि और वाराणसी को अवंतिवर्म्मा को प्रदान किया। यशोधवल-

देव चुपचाप सब अपमान सहते रहे। शशांक के लौटने की आशा दिन दिन उनके चित्त से दूर होती जाती थी। बुद्धघोष, बंधुगुप्त आदि बौद्धसंघ के नेताओं ने खुल्लमखुल्ला ब्राह्मणों पर अत्याचार करना आरंभ किया। उनके अत्याचारों से पाटलिपुत्र के नागरिक एकबारगी घबरा उठे। सैकड़ों देवमंदिरों की संपत्ति छीन ली गई, सहस्रों देवालयों में महादेव और वासुदेव के स्थान पर बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हुईं। अत्याचार से पीड़ित प्रजा ने वृद्ध महानायक की शरण ली, पर वे उसकी रक्षा न कर सके।

धीरे-धीरे राजकोष भी खाली हो चला। चारों ओर से राजस्व का आना बंद हो गया था। वेतन न पाने के कारण सेना अन्न बिना मरने लगी। धीरे-धीरे अभाव असह्य हो गया और वह सेनानायकों की बात पर कुछ भी ध्यान न दे गाँव पर गाँव लूटने लगी। प्रजा भी अपनी रक्षा के लिए उनसे लड़ने लगी। देश में अराजकता छा गई। यशोधवलदेव कठपुतली बने पाटलिपुत्र में बैठे-बैठे साम्राज्य की यह सब दुर्दशा देखने लगे।

प्रभाकरवर्द्धन के पास संवाद पहुँचा कि मगध में विद्रोह हुआ ही चाहता है। वे तो यह चाहते ही थे। समुद्रगुप्त के वंश के रहते आर्यावर्त में कोई उन्हें चक्रवर्ती राजा नहीं मानता था। इसी लिए वे अपने ममेरे भाई की सम्राट् पदवी लुप्त करने की युक्ति निकाल रहे थे। प्रभाकरवर्द्धन मगध की अवस्था सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि घर की लड़ाई से जब मगध राज्य निर्बल हो जायगा, पराजित होकर जब माधवगुप्त आश्रय चाहेंगे उस समय मैं उन्हें करद सामंत राजा बना कर गुप्त वंश से सम्राट् की पदवी सदा के लिए दूर कर दूँगा। मगध की जिस समय यह दशा हो रही थी ठीक उसी समय शशांक वंग देश से मगध को लौटे।

मंडलागढ़ में नए सम्राट् ने मंत्रणासभा बुला कर स्थिर किया कि यशोधवलदेव को बिना जताए पाटलिपुत्र में घुसना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो नगर पर आक्रमण करना चाहिए। अनंतवर्मा ने सूचित किया कि अगहन शुक्ल त्रयोदशी को माधवगुप्त का विवाह है। नरसिंहदत्त और माधववर्मा की सम्मति हुई कि उसी दिन पाटलिपुत्र पर आक्रमण करना चाहिए। शशांक ने सोचा कि पाटलिपुत्र में ऐसा ही कोई वर्णाश्रमधर्मी होगा जो मेरे विरुद्ध अस्त्र उठाएगा। उन्होंने उनकी बात काट कर स्थिर किया कि गुप्त वेश में अपने को वीरेंद्रसिंह के साथ आए हुए गौड़ीय सामंत बतला कर सब लोग नगर में प्रवेश करें और नरसिंहदत्त अधिकांश सेना लेकर नगर के बाहर रहें। केवल दस सहस्र सेना उत्सव में सम्मिलित होने के लिए नगर में प्रवेश करे।

वीरेंद्रसिंह ने गौड़ से यशोधवलदेव को सूचना दे दी थी कि मैं शीघ्र पाटलिपुत्र आऊँगा इससे उनके आने पर किसी को कुछ आश्चर्य न हुआ। दस सहस्र सेना देख कर भी किसी को कुछ संदेह न हुआ। बात यह थी कि सम्राट् के विवाह के उपलक्ष में निमंत्रित भूस्वामी और सामंत लोग अपने दल बल के साथ नगर में आ रहे थे। दस सहस्र सेना एक पक्ष के भीतर नगर में पहुँच गई। अधिकांश सेना नगर के बाहर आस-पास के गाँवों में इधर-उधर छिप रही।

माधवगुप्त उस समय मन का खटका छोड़ उत्सव और नाच रंग में डूबे थे। किसी विघ्न या विपत्ति की आशंका उनके मन में नहीं थी। वे जानते थे कि किसी प्रकार की लड़ाई भिड़ाई होने पर प्रभाकर-वर्द्धन मेरी रक्षा करेंगे। प्रजा यदि बिगड़ जायगी तो वे पूरी सहायता देंगे और यदि आवश्यक होगा तो स्वयं लड़ने के लिए आएँगे।

———

दूसरा परिच्छेद

चित्रा का दिन

पाटलिपुत्र नगर में आज बड़ी चहलपहल है। तोरण तोरण पर मंगल वाद्य बज रहे हैं। राजपथ रंग विरंग की पताकाओं और फूल-पत्तों से सजाया गया है। दल के दल नागरिक रंग विरंगे और चित्र विचित्र वस्त्र पहने ढोल, झाँझ आदि बजाते और गाते निकल रहे हैं। पहर पहर भर पर नगर में तुमुल शंखध्वनि हो रही है। पौरांगनाएँ ऊपर से लावा और श्वेत पुष्प बरसा रही हैं। धूप के सुगंधित धुएँ से छाए हुए मंदिरों में से नगाड़ों और घंटों की ध्वनि आ रही है। आज सम्राट् माधवगुप्त का विवाह है।

दो पहर के समय एक वर्म्मावृत पुरुष प्रधान राजपथ पकड़े राज-प्रासाद की ओर जा रहा है। उसे देख मद्य से मतवाला एक नागरिक बोल उठा "यह देखो! गौड़ की सेना वर्म्म से ढकी हुई विवाह में जा रही है"। उसकी बात पर उसके साथी तालियाँ पीट पीट कर हँसने लगे। सैनिक उसकी ओर फिर कर उससे पूछने लगा "राजभवन का यही मार्ग है?" नागरिक बोला "हाँ! सीधे उत्तर चले जाओ"। सैनिक बढ़ ही रहा था कि इतने में वह नागरिक बोल उठा "भाई! ये चित्रादेवी कौन हैं?" दूसरे नागरिक ने कहा "अरे, तू नहीं जानता। वही मंडलागढ़ के तक्षदत्त की कन्या"।

"कौन! वही जिसके साथ युवराज शशांक के विवाह की बात-चीत थी?"

सैनिक ठिठक कर खड़ा हो गया और पूछने लगा "चित्रादेवी का क्या हुआ ?" नागरिक ने कहा "तुम नगर में कब आए हो ? चित्रादेवी के साथही तो सम्राट् माधवगुप्त का विवाह है, तुम क्या अब तक नहीं जानते ?" सैनिक के सिर में चक्कर सा आ गया, वह गिरते गिरते बचा। पहले नागरिक ने कहा "गौड़ का वीर तो यहीं गिर रहा है"। दूसरा नागरिक बोला "भाई, निमंत्रण है। बिना पैसा कौड़ी के चोखा मद्य मिला, चढ़ा लिया"। सैनिक ने उनकी बात न सुनी। वह मतवाले के समान चलते चलते सड़क से लगी हुई एक बावली के किनारे बैठ गया। जान पड़ता है कि उसे तन मन की सुध न रही।

दिन तो बीत गया, संध्या हो चली, पर वह सैनिक वहाँ से न उठा। उसे मद में चूर समझ कोई उसके पास न गया। रात का पहला पहर बीता। प्रासाद में बड़ी धूम धाम और बाजे गाजे के साथ सम्राट् का विवाह हो गया। उसके पीछे सैनिक को चेत हुआ। उसने शरीर पर से वर्म्म उतारकर बावली में फेंक दिया और एक दूकान से श्वेत वस्त्र मोल लिया। बावली के किनारे एक घने पेड़ की छाया के नीचे अँधेरे ही में बैठे बैठे उसने अपना वेश बदला और फिर प्रासाद की ओर चलने लगा।

प्रासाद में घुसकर वह भीड़ में मिल गया और धीरे धीरे अतःपुर की ओर बढ़ा। उसने एक ऐसा मार्ग पकड़ा जिसे और लोग नहीं जानते थे। इस प्रकार वह नए प्रासाद के अंतःपुर के दूसरे खंड में जा पहुँचा। उत्सव के आमोद प्रमोद में उन्मत्त स्त्रियों और अंतः-पुररक्षियों ने उसे न देखा। गंगाद्वार के पास प्रासाद के जिस भाग के नीचे से गंगा जी बहती थीं सैनिक उसी भाग के दूसरे खंड की छत पर चढ़कर अँधेरे में छिप रहा। अंतःपुर के उस भाग में उस समय

सन्नाटा था, कोई कहीं नहीं दिखाई देता था। उज्ज्वल चाँदनी छिटकी हुई थी। कभी कभी विवाहोत्सव का कोलाहल वहाँ तक पहुँचकर गहरे सन्नाटे में भंग डाल देता था।

एक युवती अंतःपुर के एक भवन से निकलकर छत पर आ खड़ी हुई। युवती की अवस्था अभी बहुत थोड़ी थी, दूर से देखने से वह बालिका जान पड़ती थी। उसका सौंदर्य्य अनुपम था। उसके सर्वांग में बहूमूल्य रत्नालंकार थे जो निर्मल चाँदनी पड़ने से जगमगा उठे। उसके केश छूटे हुए थे। जान पड़ता था कि वह अभी स्नान किए चली आ रही है। उसके शरीर पर अत्यंत बहुमूल्य महीन श्वेत वस्त्र था जो भूमि पर लोटता था। एक दासी ने आकर उसे सँभाला और फिर वह बाल सुखाने चली। युवती अनमनी सी होकर बोली "बाल हवा में सूख जायँगे, तू यहाँ से जा"। दासी चली गई। रमणी छत पर इधर उधर टहलने लगी। थोड़ी देर में एक और दासी ने आकर कहा "महादेवि! सोने का समय हो गया"। रमणी ने पूछा "कितनी रात गई होगी?" दासी ने उत्तर दिया "दो पहर के लगभग"। रमणी ने कहा "मैं अभी न सोऊँगी, तू जा"। दासी विवश हो चली गई।

थोड़ी देर में छिपा हुआ सैनिक अँधेरे में से निकलकर छत पर आ खड़ा हुआ और उसने दूर से पुकारा "चित्रा!" रमणी चौंक पड़ी, फिरकर जो देखती है तो कुछ दूर पर उस निखरी चाँदनी में श्वेतवस्त्रधारी एक पुरुष खड़ा है। पुरुष ने फिर पुकारा "चित्रा!" रमणी को कंठस्वर कुछ परिचित सा जान पड़ा। उन्होंने पूछा "तुम कौन हो?" पुरुष ने उत्तर दिया "चित्रा! मैं हूँ"। रमणी को कुछ डर सा लगने लगा, उसने सकपकाकर कहा "तुम कौन हो? मैं तो नहीं पहचानती"। पुरुष ने कहा "कंठस्वर से भी नहीं पहचानती, चित्रा! अब मैं क्या ध्यान से इतना उतर गया?" उसने सिर

पर से उष्णीष उतार दिया। इतने में एक छोटे से बादल के टुकड़े ने आकर चंद्रमा को ढाँक लिया। उसके हटते ही फिर चाँदनी छिटक गई। चित्रादेवी ने देखा कि पुरुष सुंदर गौर वर्ण है, लंबे-लंबे पिंगल केश उष्णीष से छूट कर वायु के झोंकों से इधर-उधर लहरा रहे हैं। देखते ही वह कुछ कहती हुई चिल्ला उठी। पुरुष ने उसके निकट आकर कहा "कोई डर नहीं है, चित्रा! मैं मनुष्य ही हूँ, प्रेत होकर नहीं आया हूँ।"

भय, विस्मय और हृदय की दारुण यंत्रणा से चित्रा देवी का जी घुटने लगा। बड़ी कठिनता से अपने को सँभाल कर उन्होंने कहा "तुम—कुमार—शशांक—"

पुरुष ने कुछ हँस कर कहा "पट्टमहादेवि! मैं वही हूँ; वही शशांक हूँ। कभी कुमार भी कहलाता था, पर तुम्हारा बाल्य सखा था।"

"युवराज—तुम—"

"हाँ, चित्रा! मैं ही हूँ। तुमने लौटने के लिए कहा था इसी से आया हूँ। मेरी बात तो रह गई।" चित्रादेवी घुटने टेक कर बैठ गई और रोते-रोते बोली "युवराज—युवराज—क्षमा करो—"

"क्षमा किस बात की, चित्रा? तुमने कहा था इसी से आया हूँ। बाल्य सखी की बात रखने के लिए मरा हुआ भी जी उठा है। क्षमा किस बात की चित्रा?"

"युवराज, एक बार और क्षमा करो, बस एक बार। न जाने कितनी बार क्षमा किया है, एक बार और क्षमा करो।"

"क्षमा कैसी, चित्रा? नगर में सुना कि तुम्हारा विवाह है; बस विवाह का उत्सव देखने के लिए मैं भी चला आया—" चित्रादेवी रोते-रोते शशांक के पैर पकड़ने जा रही थीं, पर वे दो हाथ पीछे हट कर कहने लगे "छिः छिः चित्रा! यह क्या करती हो? तुम मेरे छोटे

भाई की स्त्री हो, मुझे छूना मत। आज तुम मगध की पट्टमहादेवी हो, एक भिखारी के पैरों पर पड़ना क्या तुम्हें शोभा देता है? उठो! बाल्य बंधु का कुशल समाचार पूछो—"

"युवराज! मैंने अपनी इच्छा से विवाह नहीं किया है। मैं कभी ऐसा कर सकती थी? तुम्हें विश्वास है?"

"विश्वास करने की इच्छा तो नहीं होती किंतु, चित्रा! अब तुम माधव की अंकलक्ष्मी हो, अब तुम मेरी नहीं हो। तुम्हारा कोई दोष नहीं, दोष मेरा है—मेरे भाग्य का है।"

चित्रादेवी उठ खड़ी हुईं। छः वर्ष पर आज दोनों एक दूसरे के सामने हुए हैं। चाँदनी में डूबा हुआ जगत् स्थिर और सन्नाटे में था। झलकते हुए आकाश में बादल के छोटे-छोटे टुकड़े वेग से दौड़े जा रहे थे। उत्सव का रंग अब धीमा पड़ गया है, कलरव मंद हो गया है, दीपमाला बुझा चाहती है। चित्रादेवी ने कहा "कुमार! मेरी बात मानो। मुझे एक बार और क्षमा करो। मैं तक्षदत्त की बेटी हूँ, मेरी बात पर विश्वास करो।"

"विश्वास करता हूँ तभी न आया हूँ, चित्रा! नहीं तो क्यों आता? मैं क्षमा क्या करूँ। तुम रमणी हो, अनुपम रूपवती हो। तुमने यदि बिना ठौर ठिकाने के मनुष्य का व्यर्थ आसरा न देख एक राजराजेश्वर के गले में वरमाला डाली तो इसमें बुरा क्या किया?"

"युवराज! तुमने क्या मुझे ऐसी वैसी समझ रखा है?"

"ऐसी वैसी नहीं समझता था, तभी न यह फल—"।

"बस, युवराज! क्षमा करो। मैंने अपनी इच्छा से विवाह नहीं किया है।

"विवाह भी कहीं बाँधकर हुआ है, चित्रा?"

महादेवी ने बलपूर्वक मेरा विवाह करा दिया।"

"सुनो महादेवि ! अब तुम भी महादेवी हो, बालिका नहीं हो, युवती हो, किसी का हृदय भी कभी कोई बल करके छीन सकता है ? नश्वर शरीर पर बल चल सकता है, पर बल से क्या किसी का मन वश में हो सकता है ?"

"अब एक बार और क्षमा करो, युवराज !"

"क्षमा तो मैं कर चुका हूँ, चित्रा ! यदि क्षमा न करता तो देखने दिखाने न आता" ।

"तब फिर ?"

"तब फिर क्या, चित्रा ?"

"एक बार और—"

"अब हो नहीं सकता, चित्रा !"

"मैंने—मैंने सुना—युवराज ! मेरा कोई अपराध नहीं है ।"

"छिः चित्रा ! तुम तक्षदत्त की कन्या हो, तुम गुप्तकुल की वधू हो, तुम्हारे मुँह से ऐसी बात नहीं सोहती । कोई सामान्य क्षत्रिय-वधू यदि आचारभ्रष्ट हो जाय तो हो जाय, पर तुम तक्षदत्त की कन्या हो, महासेनगुप्त की पुत्रवधू हो, मगध की राजराजेश्वरी हो—तुम्हारे लिए ऐसी बात उचित नहीं है" ।

"तब फिर"

"तब फिर क्या ? मैं अपनी बात रखने के लिए तुम्हारे पास आया । बात अब पूरी हो गई । अब हे देवि ! शशांक को भूल जाओ, समझ लो कि शशांक सचमुच मर गया । मैं जल के बुलबुले के समान अनंत जलराशि में मिल जाऊँगा, इस अपार जगत् में कोई मुझे ढूँढ़े न पाएगा । आशीर्वाद करता हूँ कि तुम सुख से रहो । अब बड़े सुख से मैं मरने जाता हूँ, मन में कोई दुःख नहीं है । दूर देश में ज्ञानशून्य होकर मैंने इतने दिन अज्ञातवास किया, जब ज्ञान हुआ तब सुना कि

पिताजी नहीं हैं, फिर भी दौड़ा दौड़ा मैं पाटलिपुत्र आया। क्योंकि जानती हो, चित्रा! मन में बड़ी भारी आशा लिए हुए था कि तुम्हें देखूँगा तब कितना सुखी हूँगा। सोचता था कि तुम वैसे ही दौड़ी दौड़ी मेरे पास आओगी, तुम्हारी हँसी से संसार खिल उठेगा, तुम्हें लेकर मैं अपना सब दुःख शोक भूल जाऊँगा। देखो चित्रा! इस चाँदनी में बालू का मैदान कैसा सुंदर लगता है! इसमें तुम्हारे साथ कितनी बार खेलने निकला हूँ—अब मैं तुम्हें खेलते नहीं देखूँगा। चित्रा! देखो, वही तुम्हारी फुलवारी है। तुम्हारी समझकर उसकी मैं कितनी सेवा, कितना यत्न करता था। चित्रा! उस दिन की बात का स्मरण है जिस दिन लतिका पहले पहल आई थी। उसे फूल तोड़-कर दिया था इसपर तुम कितनी रूठी थीं!"

"आज आनंद के दिन मैं भी थोड़ा आनंद करने आ गया, चित्रा! अब और तुम्हारा सिर न दुखाऊँगा। बात देकर गया था, वही पूरी करने आ गया। अच्छा, अब जाओ। शशांक को भूल-जाओ, बाल्यकाल की स्मृति दूर करो, आशीर्वाद करता हूँ"।

"युवराज!"

"चित्रा!"

"और एक बार पुकारो";

"क्या कह कर पुकारूँ, चित्रा?"

"जो कहकर पुकारा करते थे"।

"चित्रा, चित्रे, चित्री चित्रिता, चिती। अब और माया न बढ़ाऊँगा, तुम जाओ।"

"कहाँ जाऊँ, युवराज?"

"अपनी सेज पर"।

"यही तो मेरी सेज है"।

"छिः चित्रा ! ऐसी बात मुँह से न निकालो। अब मैं जाता हूँ। तुम अपने को सँभालो।

युवराज कई पग हटे। चित्रादेवी उनकी ओर एकटक देखकर बोली "युवराज, शशांक ! तो क्या अब विदा है ?" भरे हुए गले से शशांक ने उत्तर दिया "हाँ चित्रा ! सब दिन के लिए विदा।"

देखते देखते नीचे गंगा में किसी भारी वस्तु के गिरने का शब्द हुआ। शशांक ने पीछे फिरकर देखा कि छत पर कोई नहीं है। गंगा के जल में मंडल सा बँधकर फैल रहा है, बीच में सहस्रों बुलबुले उठ रहे हैं। महाराज शशांक की आँखों के आगे अँधेरा सा छा गया। वे भी छत पर से गंगा में कूद पड़े।

ईशान कोण पर बादल चढ़ रहे थे। देखते देखते वे चारों ओर घिर आए। वर्षा होने लगी। जगत् अंधकार में मग्न हो गया।

तीसरा परिच्छेद

पुनरुत्थान

सम्राट् माधवगुप्त उदास मन सभा में बैठे हैं। सभासद भी उदास और सिर नीचा किए हैं। कल ही विवाह हुआ था और आज ही आमोद-प्रमोद की कौमुदीरेखा पर विषाद के घने मेघ छाए हुए हैं। क्या हुआ ? पट्टमहादेवी चित्रा का विवाह की रात से ही कहीं पता नहीं है। जो कभी राजसभा में नहीं आते थे वे भी आज आए हैं। वेदी के

नीचे पूर्व अमात्य हृषीकेशशर्मा, महानायक यशोधवलदेव आदि बैठे हैं। स्थाण्वीश्वर का राजदूत प्रधान अमात्य के आसन पर बैठा है। सब लोग चिंतामग्न और चुपचाप हैं।

महाप्रतीहार विनयसेन सभामंडप के तोरण पर खड़े हैं। उनके पास दो चार दंडधर और प्रतीहार भी खड़े हैं। अकस्मात् विनयसेन चौंक पड़े; उन्हें जान पड़ा कि एक श्वेतपरिच्छदधारी पुरुष के साथ माधव वर्मा, वसुमित्र, विद्याधरनंदी इत्यादि विद्रोही नायक सभामंडप की ओर आ रहे हैं। विनयसेन ने अच्छी तरह दृष्टि की, देखा तो सामने वीरेंद्रसिंह! वीरेंद्रसिंह ने अभिवादन के उपरांत कहा "महा प्रतीहार! एक गौड़ीय सामंत महानायक से मिलना चाहते हैं।" विनयसेन ने विस्मित होकर पूछा "कौन? अरे तुम कब आए?"

वीरेंद्र०—मैं अभी आ रहा हूँ। विवाह के उत्सव पर पहुँचने के लिए चला था, पर मार्ग में विलंब हो गया इससे कल न पहुँच सका।

इतने में श्वेत वस्त्रधारी पुरुष विनयसेन के सामने आ खड़े हुए और पूछने लगे "विनयसेन! मुझे पहचानते हो?" विनयसेन चकित होकर उनके मुँह की ओर ताकते रह गए। आने वाले पुरुष ने फिर पूछा "विनयसेन! इतने ही दिनों में भूल गए?" विनयसेन ने पूछा "तुम—आप कौन हैं?" पीछे से अनंत वर्मा ने उस पुरुष के सिर का उष्णीष हटा दिया। लंबे-लंबे घुँघराले भूरे केश पीठ और कंधों पर बिखर पड़े। देखते ही विनयसेन के पैर हिल गए। महाप्रतीहार घुटने टेक हाथ जोड़ कर बोले "युवराज—महाराजाधिराज—"। शशांक ने विनयसेन को उठा कर गले से लगा लिया। दंडधरों और द्वारपालों ने सम्राट् को देखते ही जयध्वनि की। "महाराजाधिराज की जय", "युवराज शशांक की जय" आदि शब्दों से सभामंडप काँप उठा।

यशोधवलदेव बैठे एकाग्रचित्त चित्रा की बात सोच रहे थे। दो एक बूँद आँसू भी उन्होंने चुपचाप तक्षदत्त की एकमात्र कन्या के

लिए गिराए। अकस्मात् शशांक का नाम सुन कर वे चौंक पड़े और उठ खड़े हुए। फिर शब्द हुआ "महाराजाधिराज की जय", "महाराजाधिराज शशांक की जय।" वृद्ध महानायक उन्मत्त के समान तोरण की ओर दौड़ पड़े। तोरण पर नंगे सिर एक युवक खड़ा था। वह उनके पैरों पर लोट गया। वे शशांक को हृदय से लगा कर मूर्छित हो गए। हरिगुप्त, रामगुप्त और नारायण शर्मा तोरण की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने देखा कि सामने शशांक खड़े हैं। शशांक ने सबके चरण छुए। जयध्वनि से बार बार सभामंडप गूँजने लगा। माधवगुप्त भी सिंहासन छोड़ उठ खड़े हुए। वीरेंद्रसिंह और विनयसेन यशोधवल की अचेत देह लेकर चले; पीछे पीछे शशांक, नारायण शर्मा, रामगुप्त, हरिगुप्त, अनंतवर्मा और वसुमित्र सभामडप में आए। सभासद लोग अपने अपने आसनों पर से चकित होकर उठ खड़े हुए। सबको खड़े होते देख वृद्ध हृषीकेश शर्मा भी उठ खड़े हुए। सामने शशांक को देख वे चकपका उठे और तुरंत झपटकर उन्हें गले से लगा कहने लगे "पहचान लिया—तुम्हें पहचान लिया—तुम शशांक हो। शशांक लौट आए हैं—अरे, कोई है? जाकर तुरंत महादेवी को बुला लाओ। मधुसूदन, नारायण, अनाथों के नाथ! धन्य हो! तुम जो चाहे सो करो, तुम्हारी महिमा कौन जान सकता है, प्रभो! नारायण, हरिगुप्त! महाराजाधिराज की बात ठीक निकली—शशांक लौट आए। महासेनगुप्त की बात कभी झूठ हो सकती थी?" वे शशांक को बड़ी देर तक हृदय से लगाए रहे, उन्हें प्रणाम तक करने न दिया। चारों ओर जयध्वनि हो रही थी, पर बहरे के कान में एक शब्द भी नहीं पड़ता था।

धीरे धीरे यशोधवल को चेत हुआ। उन्होंने खड़े होकर कहा "हृषीकेश! नारायण! कहाँ हो, भाई? शशांक आ गए। महासेनगुप्त की बात पूरी हुई। महादेवी कहाँ हैं? उन्हें झट से जाकर बुला लाओ—"। वृद्ध महामंत्री की श्रवणशक्ति कुछ अधिक हो पड़ी थी,

वे बोल उठे "सुना है, देखा है, यशोधवलदेव ! शशांक सचमुच आगए।"

यशो०—हृषीकेश ! अब वचन का पालन करो।

हृषी०—हाँ विलंब किस बात का है ?

दोनों वृद्धों ने माधवगुप्त का हाथ पकड़कर उन्हें सिंहासन से उतारा, और वेदी के नीचे खड़ा कर दिया। बिना कुछ कहे सुने चुपचाप माधवगुप्त मगध के सिंहासन पर से उतर रहे थे। यह देख थानेश्वर का राजदूत कड़ककर बोला "महाराजाधिराज ! किसके कहने से सिंहासन छोड़ रहे हैं, बूढ़ों और बावलों के ? युवराज शशांक की तो मृत्यु हो गई। आप इस सिंहासन के एकमात्र अधिकारी हैं। झूठी माया में पड़कर आप अपने को न भूलें।" इतना सुनते ही अनंत वर्मा भूखे बाघ की तरह झपटकर वेदी पर आ पहुँचे और उन्होंने जोर से लात मारकर राजदूत को गिरा दिया।

इतनेमें सभामंडप के चारों ओर दंडधर लोग चिल्ला उठे "हटो रास्ता छोड़ो, महादेवी आ रही हैं।" सभासद सम्मानपूर्वक किनारे हट गए। माधवगुप्त वेदी के नीचे खड़े रहे। शोक से शीर्ण महादेवी उन्मत्त के समान आकर सभामंडप के बीच खड़ी हो गईं। थोड़ी देर तक शशांक के मुँह की ओर देख उन्होंने झपटकर उन्हें गोद में भर लिया। आनंद में फूलकर जनसमूह जयध्वनि करने लगा।

महादेवी के साथ गंगा, लतिका, तरला, यूथिका तथा और न जाने कितनी स्त्रियाँ सभामंडप में आईं। उन्हें एक किनारे खड़े होने को कहकर यशोधवलदेव बोले "महादेवी जी ! शांत हों, महाराजाधिराज को अब सिंहासन पर बिठाएँ"। थानेश्वर का राजदूत बड़ा विचक्षण और नीतिकुशल था। वह पदाघात का अपमान भूलकर फिर बोल उठा "महानायक ! आप ज्ञानवृद्ध और नीतिकुशल हैं। घोर माया-

में मुग्ध होकर आप किसे सिंहासन पर बिठा रहे हैं? युवराज शशांक अब इस लोक में कहाँ हैं? यह तो कोई धूर्त्त और भंड है।" बिजली की तरह कड़ककर महानायक सभामंडप को कँपाते हुए बोले "सुनो, दूत! तुम अवध्य हो, नहीं तो इसी क्षण धड़ से तुम्हारा सिर अलग कर देता। मुझे इस संसार में आए नब्बे वर्ष हो गए। कौन धूर्त्त है, कौन प्रतारक है यह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तुम अपने को सच्चे सम्राट् के सामने समझो और झटपट अभिवादन करो! धूर्त्त कौन है, पुत्र की माता से पूछो। हृषीकेशशर्म्मा, नारायण शर्म्मा, रामगुप्त, हरिगुप्त, रविगुप्त आदि पुराने राजपुरुषों से पूछो। थोड़ा सोचो तो कि अनंतवर्म्मा, वसुमित्र, माधववर्म्मा, आदि विद्रोही नायक किसके साथ पाटलिपुत्र आए हैं! अब व्यर्थ बकवाद न करो, चुप रहो।"

हंसवेग चुप। हृषीकेशशर्म्मा और यशोधवलदेव ने हाथ पकड़कर शशांक को सिंहासन के ऊपर बिठाया। पौरांगनाएँ मंगलगीत गाने लगीं। एकत्र जन समूह की जयध्वनि आकाश में गूँजने लगी। महादेवी की आज्ञा से एक परिचारिका सोने के कटोरे में दही, चंदन, दूर्वा और अक्षत ले आई। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया, बड़े बूढ़े अमात्यों ने नए सम्राट् को आशीर्वाद दिया। जब सब लोग अपने अपने आसन पर बैठ गए तब विनयसेन ने सिंहासन के पास जाकर अभिवादन किया और कहा "महाराजाधिराज! आपका पुराना सेवक लल्ल तोरण पर खड़ा है। वह एक बार श्रीमान् को देखना चाहता है।" सम्राट् ने तुरंत सामने ले आने की आज्ञा दी। बहुत देर पीछे बुढ़ापे से झुका हुआ एक अत्यंत जर्जर वृद्ध लाठी टेकता सभामंडप में आया। शशांक उसकी आकृति देख चकित हो गए। वे सिंहासन से उठकर उसकी ओर बढ़े। सभा में जितने लोग थे सब जय जयकार करने लगे।

शशांक को अपनी ओर आते देख लल्ल खड़ा हो गया। उसकी आँखों की ज्योति मंद पड़ गई थी, सूखे हुए गालों पर आँसुओं की

धारा बह रही थी। लल्ल ने रुक रुककर कहा "तुम—भैया—तुम—शशांक!" सम्राट् ने दौड़कर वृद्ध को हृदय से लगा लिया। वृद्ध अपनी सूखी हुई बाहों को सम्राट के गले में डाल बोला "भैया! तुम सचमुच आ गए। महाराजाधिराज कह गए थे कि शशांक लौटेंगे, लौटेंगे। इसीसे मैं अब तक बचा था, नहीं तो कब का न अपने महाराज के पास पहुँच गया होता"। आँसुओं से सम्राट् की आँखों के सामने धुंध सा छा गया, उनका गला भर आया, उनके मुँह से केवल इतना ही निकल सका "दादा—"। जनसमूह बार बार जयध्वनि करने लगा।

सम्राट् ने वृद्ध को वेदी के ऊपर बिठाया, वह वहाँ किसी प्रकार बैठता नहीं था। वह लाठी टेककर उठा और कहने लगा "भैया! तुम महाराज बनकर सिंहासन पर बैठो, मैं आँख भर देख लूँ। शशांक सिंहासन पर बैठ गए। उन्हें देखकर वृद्ध बोला "भैया! एक बार अपना पूर्णरूप दिखलाओ—छत्र, चँवर, दंड। विनयसेन ने गरुड़ध्वज लाकर शशांक के हाथ में दे दिया। यशोधवलदेव की आज्ञा से माधववर्म्मा छत्र लेकर सिंहासन के पास खड़े हुए। रामगुप्त के दोनों पुत्र चँवर लेकर ढारने लगे। यह दृश्य देख वृद्ध की आँखें दमक उठीं। उसने खड्ग के स्थान पर अपनी लाठी को ही मस्तक से लगाकर सामरिक प्रथा के अनुसार अभिवादन किया। इसके पीछे वह थककर गिर पड़ा। उसकी यह अवस्था देख सम्राट् झट सिंहासन से उतरकर उसके पास आए। वृद्ध शशांक की गोद में सिर डाले पड़ा रहा। थोड़ी देर में वह बोला "भैया! एक बार और, एक बार और तो पुकारो"। शशांक वृद्ध के शरीर पर हाथ फेर बोले "दादा! दादा! क्या है?" वृद्ध हृषीकेशशर्म्मा आसन से उठकर ऊँचे स्वर से बोले "है क्या, महाराज? लल्ल अब चले। बैकुंठ में महाराजाधिराज महासेनगुप्त की सेवा के लिए चले। अनाथों के नाथ, दुष्टों के दर्पहारी, मधुसूदन! मूढ़ जीव को

अच्छी गति दो। भाई! सब लोग एक बार भगवान् की जय बोलो"। हरिध्वनि से सभामंडप गूँज उठा। लल्ल का अंतकाल समझ सम्राट् ने पुकारकर कहा "लल्ल, दादा! एक बार राम राम करो, कहो—राम—राम—"। वृद्ध क्षीण कंठ से बोला "राम—राम"। बोली बंद हो गई, दो एक बार आँखों की पुतलियाँ ऊपर नीचे हिलीं। देखते देखते लल्ल ने परलोक की यात्रा की। प्रभुभक्त सेवक अब तक स्वामी के वियोग में इसी आशा पर दिन काट रहा था, आज चल बसा। सम्राट् हाय मार कर रोते रोते उसके प्राणहीन शरीर पर गिर पड़े।

———

चौथा परिच्छेद

नरसिंहगुप्त का प्रश्न

संध्या के पीछे सम्राट् चित्रसारी में विश्राम कर रहे हैं। रूप लावण्य से भरी तरुणी नर्त्तकियाँ नाच गाकर उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा कर रही हैं। किंतु नए सम्राट् उदास हैं, उनके मुँह पर चिंता का भाव झलक रहा है! देखने से जान पड़ता है कि संगीत की ध्वनि उनके कानों में नहीं पड़ रही है, नर्त्तकियों के हावभाव की ओर उनकी दृष्टि नहीं है। शशांक का जी आज न जाने किधर उड़ा हुआ है। उनका मन नाच रंग, राजकाज सब कुछ भूल कभी चाँदनी में चमकते हुए नए प्रासाद के अंतःपुर में इधर उधर भटकता है, कभी गंगा की धवल धारा के भीतर किसीको ढूँढ़ता फिरता है।

उनके पीछे वसुमित्र, माधववर्म्मा और अनंतवर्म्मा बैठे हैं। वे भी उदास और खिन्न हैं। चित्रसारी के द्वार पर महाप्रतीहार विनयसेन दंड पर भार दिए खड़े हैं। एक दंडधर ने आकर उनके कान में धीरे से न जाने क्या कहा। विनयसेन घबराए हुए घर के भीतर गए। शशांक उसी प्रकार गहरी चिंता में डूबे थे, विनयसेन पर उनकी दृष्टि न पड़ी। महाप्रतीहार सहमते सहमते बोले "महाराजाधिराज! नरसिंहदत्त आए हैं"। शशांक नरसिंह का नाम सुनते ही चौंककर बोल उठे "क्या कहा? नरसिंह आए हैं। अच्छी बात है, मैं उन्हींका आसरा देख रहा था। उन्हें यहीं ले आओ"। महाप्रतीहार अभिवादन करके चले गए।

पीछे से वसुमित्र ने उठकर कहा "महाराजाधिराज! महानायक नरसिंहदत्त ने चित्रादेवी की मृत्यु का समाचार अवश्य पाया होगा। उनसे मिलने पर महाराज को और दुःख होगा"। वसुमित्र की बात काटकर शशांक ने कहा "नहीं, वसुमित्र, नरसिंह को यहीं आने दो। चित्रा अब नहीं है यह बात वे अवश्य सुन चुके होंगे। एक प्रकार से चित्रा की मृत्यु का कारण मैं ही हूँ। हृदय की भरी हुई वेदना से उन्हें जो कुछ कहना हो कह डालें। इससे मेरा जी बहुत कुछ हलका होगा"। वसुमित्र चुप होकर अपने आसन पर जा बैठे। अनंतवर्म्मा उठकर द्वार के पास जा खड़े हुए।

थोड़ी ही देर में महाप्रतीहार विनयसेन नरसिंहदत्त को लेकर लौट आए। नरसिंहदत्त ने अपने शरीर पर से वर्म्म तक न उतारा था। उनपर धूल पड़ी हुई थी, बाल भी बिखरे हुए थे। उन्हें आते देख शशांक उठ खड़े हुए। दूर ही से नरसिंहदत्त चिल्ला उठे "युवराज—चित्रा—युवराज—"। घर के भीतर आने पर सम्राट् को देख वे बोले "युवराज!—चित्रा—क्या सचमुच—?" शशांक कुछ भी विचलित न होकर धीरे से बोले "सचमुच, नरसिंह! चित्रा नहीं है"। हाँफते हाँफते नरसिंह ने कहा "तो फिर सचमुच—युवराज—तुमने—"। आगे और

कुछ उनके मुँह से न निकल सका, वे भूमि पर गिर पड़े। शशांक का मुँह पीला पड़ गया। वे बोल उठे "हाँ! नरसिंह, मैंने ही। मैं ही चित्रा की मृत्यु का कारण हूँ। मैंने उसे अपने हाथ से तो नहीं मारा, पर मरी वह मेरे ही कारण"।

नरसिंह उठ खड़े हुए और कड़े स्वर से बोले "युवराज—शशांक! तुम्हारे सामने ही चित्रा मरी और तुम चुपचाप खड़े रहे, उसे बचाने का यत्न न किया?"

"यत्न किया था, नरसिंह! पूर्णिमा का चंद्रमा, गंगा की धारा, और आकाश के मेघ साक्षी हैं। वह कब जल में कूदी मैं देख न सका। उलटकर देखा तो छत पर चित्रा न दिखाई पड़ी। मैं भी चट गंगा में कूद पड़ा। चंद्रमा मेघों से ढँक गया, पानी बरसने लगा, आँधी उठी, गंगा का जल बाँसों ऊपर उछलने लगा। इस धारा में मैं चित्रा को इधर उधर ढूँढ़ने लगा। नरसिंह! जब तक शरीर में बल रहा, जब तक चेत रहा तब तक ढूँढ़ता ही रहा, पर कहीं पता न लगा। नरसिंह! ज्ञान रहते मैं चित्रा को छोड़कर गंगा की धारा से बाहर नहीं निकला। मेरे अचेत हो जाने पर गंगा की तरंगों ने मुझे किनारे फेंक दिया।"

नाच-गाना बंद हो गया। वसुमित्र का संकेत पाकर नर्त्तकियों और गवैयों का दल चित्रसारी से निकलकर नौ दो ग्यारह हुआ। वहाँ सन्नाटा छा गया। नरसिंह फिर धीरे धीरे बोलने लगे "शशांक! तुम उतनी रात बीते चुपचाप चोरों की तरह अंतःपुर के कोने में चित्रा से मिलने क्यों गए? दिन को क्या तुम चित्रा से नहीं मिल सकते थे?"

"सुनो, नरसिंह! सोचा था कि एक बार एकांत में जा उसे देख आऊँगा, फिर चला आऊँगा, फिर कभी न देखूँगा। तब तक पाटलि-पुत्रवाले यही जानते थे कि शशांक मर गया है। मैंने सोचा था कि उसे

देखकर मैं सचमुच ही मर जाऊँगा। जिस समय मैंने सुना कि आज उसका विवाह है, आज वह मगध की राजराजेश्वरी होगी उसी समय मेरी राज्य की आकांक्षा, जीने की आकांक्षा सब दूर हो गई। युद्धयात्रा के पहले मैंने चित्रा के सामने शपथ खाई थी कि मैं लौटकर आऊँगा— इसी मगध में, इसी पाटलिपुत्र नगर में फिर आकर मिलूँगा। इसी लिए एक बार और देखने दिखाने के लिए मैं अंतःपुर में रात को ही पहुँचा। बाल्य किशोर, और युवावस्था की सब बातों को भूल जब वह माधव की अंकलक्ष्मी हुई तब मैंने विचारा कि अब एक क्षण भी यहाँ रहकर उसके जीवन में बाधा न डालूँगा—उसके सुख के मार्ग का कंटक न रहूँगा। इसीसे एक बार उसे आँख भर देखने गया था। मन के आवेग को वह न रोक सकेगी, अपना प्राण दे देगी, इसका मुझे कुछ भी ध्यान न था—"।

"माधव की अंकलक्ष्मी! शशांक, यह कैसी बात कहते हो?"

"मैं ठीक कहता हूँ, नरसिंह! माधव का विवाह हुआ यह बात तो तुमने मार्ग में ही सुनी होगी। मैं भेस बदलकर नगर में आया और मैंने सब उत्सव देखा। समय दो पहर का था। मुझसे एक नागरिक ने कहा कि तक्षदत्त की कन्या के साथ माधवगुप्त का विवाह हो रहा है। सारा संसार मुझे घूमता सा दिखाई पड़ने लगा, मेरी आँखों के सामने चिनगारियाँ सी छूटती दिखाई देने लगीं"।

"तब तक तो विवाह नहीं हुआ था। शशांक! तुम उसी समय प्रासाद में क्यों नहीं गए, उसी समय चित्रा से क्यों न जाकर मिले?"

"मेरा अदृष्ट, नरसिंह! और क्या कहूँ? उस समय वर्म्म के भार से दबकर मैं धँसने लगा, पैरों पर खड़ा न रह सका। मैं पुराने मंदिर के पास की बावली पर जाकर पड़ गया। आते जाते नागरिक मुझे मद में चूर समझ हँसी ठट्ठा करते थे। चित्रा का विवाह माधव के साथ हो

रहा है, बस यही बात मेरे मन में नाच रही थी। धीरे धीरे संसार मेरे सामने से हट सा गया, मुझे कुछ सुध बुध न रह गई। उसके पीछे अंधकार छा गया, क्या क्या हुआ मैं नहीं जानता।"

"जब चेत हुआ तब देखा कि रात का सन्नाटा छाया हुआ है। उत्सव का कोलाहल धीमा पड़ गया है। विवाह उस समय हो चुका था। तब मेरे जी में आया कि एक बार जाकर चित्रा को देख आऊँ—बस एक ही बार—फिर उसके पीछे जल के बुलबुले के समान संसार-सागर में विलीन हो जाऊँ। माधव सुख से राज्य करें, चित्रा के सुख के विचार से मैं माधव का कंटक न रहूँगा"।

"जाकर देखा था? उसने क्या कहा?"

नरसिंह की आँखों में आँसू नहीं थे। उनका स्वर बादल की गरज की तरह गंभीर हो गया था। शशांक हवाके झोंकों से हिलते हुए पद्मपत्र के समान काँप रहे थे। शशांक कहने लगे "वह बार बार यही कहती थी कि, युवराज, क्षमा करो, मैंने अपनी इच्छा से विवाह नहीं किया है। जब अंत में वह मेरा पैर पकड़ने चली तब मैंने उसे दुतकार दिया। मैं समझा कि अब वह मेरी चित्रा नहीं है, वह माधवगुप्त की पत्नी है। नरसिंह! चित्रा मेरे छोटे भाई की स्त्री थी। वह बार बार मुझसे क्षमा माँगती थी और मैं उसकी हँसी करता था, उसपर व्यंग्य छोड़ता था। वह बार बार मेरा पैर पकड़ने दौड़ती थी, क्षमा चाहती थी। पर मैं क्षमा क्या करता? शास्त्र के दृढ़ बंधन ने उसे माधव के साथ बाँध दिया था, उसे छू जाना तक मेरे लिये पाप था। मेरे और उसके बीच शास्त्र और लोकाचार का भारी व्यवधान आ पड़ा था। उसे अधिक दुखी करना ठीक न समझ मैं चट लौट पड़ा। चित्रा से सब दिन के लिए मैं विदा हुआ। दो पैर भी आगे न रखे थे कि किसी भारी वस्तु के जल में गिरने का शब्द कान में पड़ा। उलटकर देखा तो चित्रा कहीं नहीं है। नरसिंह! चित्रा की हत्या मैंने ही की है, मुझे

२०

मारो। दारुण यंत्रणा से मुझे मुक्त करो। नरसिंह! तुम मेरे बाल्यसखा हो। इस समय मित्र का कार्य करो। अब इस वेदना का भार हृदय नहीं सह सकता। तलवार खींचो, मेरा हृदय विदीर्ण करो। उसे ढूँढ़कर कहीं न पाया, वह अब नहीं है, पर मैं जीता हूँ, सिंहासन पर बैठा राज्य का स्वांग भरता हूँ। पर भीतर गहरी ज्वाला है, असह्य यंत्रणा है। सच कहता हूँ, असह्य और अपार ज्वाला है। हृदय जल रहा है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता है"।

शशांक बैठने लगे, अनंतवर्म्मा दौड़कर न थाम लेते तो वे भूमि पर गिर पड़ते। नरसिंह पत्थर की अचल मूर्ति के समान खड़े रहे। आधा दंड इसी दशा में बीत गया। उसके पीछे नरसिंह ने धीरे से पुकारा "शशांक!"

"क्या है?"

"युवराज! तुम अब महाराजाधिराज हो, अपना राजपाट भोगो। नरसिंह के लिए तो अब संसार सूना है। पितृहीना बालिका को लेकर मंडला छोड़कर तुम्हारे पिता के यहाँ आश्रय लिया था। सोचा था कि कभी दिन फिरेंगे और वह राजराजेश्वरी होगी तब सब को लेकर मंडला जाऊँगा। पर वह चल बसी। उसे छोड़ मेरा कहीं कोई नहीं था। मेरी वह छोटी बहिन अब नहीं है। अब मंडला में नरसिंह के लिए स्थान नहीं है। सिंहदत्त का दुर्ग अब तक्षदत्त के पुत्र के योग्य नहीं है। अब मुझे मंडला न चाहिए। शशांक! अब मैं विदा चाहता हूँ, अब इस पाटलिपुत्र में एक क्षण नहीं रह सकता। यह विशाल नगर, यह राजप्रासाद मुझे चित्रमय दिखाई पड़ता है। यहाँ अब और नहीं ठहर सकता। तुम्हारे कार्य्य के लिए मैं अपना जीवन दे चुका हूँ, जब कभी कोई संकट का समय आएगा तब नरसिंह को अपने पास पाओगे"।

इतना कहकर नरसिंहदत्त वायु वेग से कोठरी के बाहर निकल गए। शशांक मूर्त्ति के समान भूमि पर बैठे रह गए।

पाँचवाँ परिच्छेद

भाग्य का पलटा

पुराने मंदिर के भुइँहरे में कुशासन पर बैठे महास्थविर बुद्धघोष और संघस्थविर बंधुगुप्त बातचीत कर रहे हैं। भाग्यचक्र के अद्भुत फेर से वे आज कल हारे हुए हैं। जिस समय वे यह समझ रहे थे कि अब बौद्धसंघ निष्कंटक हो गया, बौद्धराज्य की नींव अब दृढ़ हो गई उसी समय उन्होंने देखा कि बौद्धसंघ पर भारी विपत्ति आया चाहती है, बौद्ध राज्य की आशा मिट्टी में मिला चाहती है। जिस दिन शशांक ने सभामंडप में प्रकट होकर माधवगुप्त को सिंहासन से उतारा उसी दिन हंसवेग माधवगुप्त को लेकर पाटलिपुत्र से चलता हुआ। बुद्धघोष भी उस समय राजसभा में उपस्थित थे। वे भी सभा छोड़कर भागे, पर नगर में बने रहे। वे जानते थे कि पाटलिपुत्र के अधिकांश निवासी बौद्ध हैं इससे शशांक मुझपर सहसा कोई अत्याचार करने का साहस न कर सकेंगे। बंधुगुप्त उस दिन राजसभा में नहीं गए थे।

माधवगुप्त के राजत्वकाल में हंसवेग की मंत्रणा के अनुसार यशोधवलदेव के हाथ से सब अधिकार ले लिए गए थे। उस समय बंधुगुप्त भी कभी कभी राजसभा में आकर बैठते थे, पर डर के मारे यशोधवल

के सामने कभी नहीं होते थे। अकस्मात् भाग्य ने पलटा खाया। कहाँ तो राज्य में उनकी इतनी चलती थी, उनकी मंत्रणा के अनुसार कार्य्य होते थे कहाँ वे आज फिर डरे छिपे अपराधियों की दशा को प्राप्त हो गए। स्थाण्वीश्वर के सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन कठिन रोग से पीड़ित चारपाई पर पड़े थे। उनके जेठे पुत्र पंचनद में हूणों का आक्रमण रोक रहे थे। शशांक के सिंहासन प्राप्त करने के दूसरे ही दिन बुद्धघोष और बंधुगुप्त भागने की सलाह कर रहे थे। बंधुगुप्त ने पूछा "अब क्या उपाय है?"

बुद्ध०—बस एक भगवान् शाक्यसिंह का भरोसा है—

ये धर्म्मा हेतुप्रभवा
हेतुस्तेषां तथागतोऽवदत्।
तेषांच यो निरोध
एवं वादी महाश्रमणः॥

बंधु०—इस समय अपना सूत्रपिटक रखो। धर्म कर्म की बात इस समय नहीं सुहाती है।

बुद्ध०—संघस्थविर! तुम सदा धर्मशून्य रहे। अब तो त्रिरत्न का आश्रय ग्रहण करो।

बंधु०—बाप रे बाप! त्रिरत्न का आश्रय तो इतने दिनों से लिए हूँ। त्रिरत्न क्या मुझे यशोधवल के हाथ से बचा लेगा?

बुद्ध०—संघस्थविर! ऐहिक बातों को छोड़ परमार्थ की चिंता करो।

बंधु०—भाई! मुझसे तो अभी ऐहिक नहीं छोड़ा जाता। यह बताओ कि अब किया क्या जाय।

बुद्ध०—शुक्रसेन कहाँ होगा, कुछ कह सकते हो।

बंधु०—इधर तो उसका कुछ भी पता न लगा। उसीने तो सब चौपट किया। वह न होता तो क्या शशांक कभी बचता? उसकी

सहायता न होती तो क्या शशांक आज लौट आता ? मेरे मन में तो आता है कि वह अब भी हम लोगों की खोज में होगा। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है, चटपट यहाँ से चल दो।

बुद्ध०—ऐसे संकट के समय में संघ को निराधार छोड़ पाटलिपुत्र से कैसे भागूँ ?

बंधु०—तो क्या यहीं मरोगे ?

बुद्ध०—मरने से मैं इतना नहीं डरता।

बंधु०—महास्थविर ! बंधुगुप्त भी मरने से नहीं डरता, पर यशोधवल के हाथों मरना—बाप रे बाप !

बुद्ध०—तो फिर तुम भागो।

बंधु०—कहाँ जाऊँ ?

बुद्ध०—सीधे महाबोधि विहार में चले जाओ, वहाँ जिनेंद्रबुद्धि होंगे।

"अच्छी बात है" कहकर बंधुगुप्त उठ खड़े हुए। बुद्धघोष ने हँस कर कहा "इसी क्षण जाओगे ?"

"इसी क्षण।"

"अच्छी बात है। भगवान् तुम्हारा मंगल करें।"

बंधुगुप्त मंदिर से निकल पड़े। बुद्धघोष अकेले बैठे रहे। आधी घड़ी भी न बीती थी कि बाहर घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं।

बुद्धघोष उठ खड़े हुए। इसी बीच हरिगुप्त, देशानंद और कई नगररक्षी मंदिर के भीतर घुस आए। देशानंद ने बुद्धघोष को दिखाकर कहा "यही महास्थविर बुद्धघोष हैं।" दो नगररक्षकों ने चट महास्थविर का हाथ पकड़ लिया। हरिगुप्त ने कहा "महास्थिवर बुद्धघोष ! महाराजाधिराज की आज्ञा से राजद्रोह के अपराध में तुम बंदी किए गए।" बुद्धघोष ने कोई उत्तर न दिया। रक्षक उनके हाथ बाँधकर उन्हें मंदिर के बाहर

ले गए। हरिगुप्त ने पूछा "देशानंद ! बंधुगुप्त कहाँ है ?" देशानंद ने कहा "संघाराम में होगा।" सब लोग मंदिर के बाहर हुए।

आधा दंड बीते भुइँहरे की एक गुप्त कोठरी से एक दुबला पतला बुड्ढा भिक्खु निकला और मंदिर के चारों ओर ढूँढ़कर मंदिर के बाहर चला। थोड़ी देर में संघस्थविर बंधुगुप्त फिर मंदिर में आए और भुइँहरे में जाकर आसन मार भूमि पर रेखा खींचने लगे। आधी घड़ी के भीतर वही दुबला पतला भिक्खु फिर मंदिर में आने लगा पर भुइँहरे में किसीकी आहट पाकर खड़ा हो गया। मंदिर के द्वार पर मनुष्य की छाया देख बंधुगुप्त काँप उठे। लेखनी रखकर चट उठ खड़े हुए और द्वार की ओर बढ़े। वृद्ध भिक्खु को इसकी कुछ आहट न मिली।

बंधुगुप्त ने एक फलांग में जाकर वृद्ध का गला धर दबाया और पूछने लगे "तुम कौन ?" वृद्ध बहुत कुछ बल लगाकर छूटने का यत्न करने लगा। इस हाथापाई में उसके सिर की पगड़ी नीचे गिर पड़ी। बंधुगुप्त उल्लास से चिल्ला उठा "अच्छा ! शक्रसेन ! अब तो तेरा प्राण लिए बिना नहीं छोड़ता।"

भूखे बाघ की तरह संघस्थविर वृद्ध शक्रसेन के ऊपर चढ़ बैठा। वृद्ध हाथ पैर पटकने लगा। इतने में कुछ दूर पर फिर घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई पड़ा। बंधुगुप्त पगड़ी से शक्रसेन के हाथ पैर बाँध चट मंदिर से भाग निकला। उसके भागने के कुछ देर पीछे हरिगुप्त ने आकर शक्रसेन का बंधन खोला। शक्रसेन ने कहा "अभी, अभी बंधुगुप्त भागा है।" हरिगुप्त ने घबराकर पूछा "कहाँ ?"

शक्र०—यह तो नहीं कह सकता।

हरि०—किस ओर गया है ?

शक्र०—यह मैं नहीं देख सका।

हरि०—कितनी देर हुई ?

शक०—अभी, अभी दो चार पल भी न हुए होंगे। दोनों चट बंधुगुप्त की खोज में बाहर निकले।

छठा परिच्छेद

बोधिद्रुम का कटना

राजपुरुष चारों ओर बंधुगुप्त का पता लगाने लगे, पर वह पकड़ा न गया। एक नागरिक बंधुगुप्त को पहचानता था। उसने बंधुगुप्त को महाबोधि के पथ पर दक्षिण की ओर जाते देखा था। दो दिन पीछे राजपुरुषों को उससे पता लगा कि बंधुगुप्त नगर से भाग गया है। सुनते ही स्वयं शशांक, यशोधवलदेव, वसुमित्र और अनंतवर्म्मा पाटलिपुत्र से 'महाबोधि विहार' की ओर चले।

दोपहर का समय है। महाविशाल बोधिद्रुम नामक पीपल के पेड़ की छाया में बैठे विहारस्वामी जिनेंद्रबुद्धि और संघस्थविर बंधुगुप्त बातचीत कर रहे हैं। उनके सामने ही वज्रासन था। कई भिक्खु आस पास खड़े हुए यात्रियों से वज्रासन की पूजा करा रहे थे। बोधिद्रुम के पीछे के महाविहार से असंख्य शंख और घंटों की ध्वनि तथा धूप की सुगंध आ रही थी। इतने में एक भिक्खु दौड़ा दौड़ा आया और कहने लगा "प्रभो! विष्णुगया से एक अश्वारोही आवश्यक संवाद लेकर आया है, उसे यहाँ ले आऊँ?" जिनेंद्रबुद्धि ने सिर हिलाकर आज्ञा सूचित की। भिक्खु चला गया और थोड़ी देर में एक अश्वारोही

योद्धा को लिए लौटा। उसने प्रणाम करके जिनेंद्रबुद्धि से कहा "प्रभो! कुछ गुप्त संवाद है।" जिनेंद्रबुद्धि बोले "ये संघस्थविर बंधुगुप्त हैं। महासंघ की कोई बात इनसे छिपी नहीं है, तुम बेधड़क कहो।" उसने फिर प्रणाम करके कहा "सम्राट् और महानायक यशोधवलदेव बहुत सी अश्वारोही सेना लेकर महाबोधि की ओर आ रहे हैं। हम लोगों के गुप्तचर ने कल रात को उन्हें प्रवरगिरि* के नीचे शिविर में देखा था। बड़े तड़के मैं संवाद पाते ही चल पड़ा। अब वे विष्णुपदगिरि को पार कर चुके होंगे।"

इतना सुनते ही बंधुगुप्त घबराकर उठ खड़े हुए। यह देख जिनेंद्रबुद्धि बोले "संघस्थविर! कोई डर नहीं है, घबराओ मत। अश्वारोही को विदा करके वे बंधुगुप्त को साथ लिए महाबोधि विहार में गए। उस समय भी महाबोधि विहार के ऊपर चढ़ने के लिए दो स्थानों पर सीढ़ियाँ थीं, उस समय भी विहार के दूसरे खंड में भगवान् शाक्यसिंह की पत्थर की खड़ी मूर्ति थी। दोनों दक्षिण ओर की सीढ़ी से चढ़कर दूसरे खंड में पहुँचे और वहाँ से भुइँहरे में उतरे। वहाँ एक रक्तांबरधारी भिक्खु बैठा पूजा कर रहा था। जिनेंद्रबुद्धि ने उसे बाहर जाने को कहा। उसे वहाँ से निकल जाना पड़ा। जिनेंद्रबुद्धि ने गर्भगृह का द्वार बंद करके बंधुगुप्त के हाथ में एक दीपक देकर कहा "मैं आपको ऐसे स्थान पर ले चलकर छिपा देता हूँ जहाँ सौ वर्ष ढूँढ़ता ढूँढ़ता मर जाय तो भी आपके पास तक कोई नहीं पहुँच सकता। विहार के चौड़े प्राकार के बीचोबीच सुरंग है जो बोधिद्रुम के नीचे से होकर गया है।" इतना कहकर जिनेंद्रबुद्धि ने दीवार पर हाथ फेरा। हाथ रखते ही एक छोटा सा द्वार खुल पड़ा। दोनों उसके भीतर घुसे।

---

*प्रवरगिरि = बराबर पहाड़।

रक्तांबरधारी भिक्खु गर्भगृह के द्वार पर आसन जमाए किवाड़ की ओर कान लगाए उन दोनों की बातचीत सुनता था। सुरंग बोधिद्रुम और वज्रासन के नीचे नीचे गया है इतना भर उसने सुन पाया। इसके अनंतर वह बहुत देर तक बैठा रहा, पर और कोई शब्द उसे सुनाई न पड़ा। वह धीरे धीरे लोहे की सीढ़ी के सहारे मंदिर के ऊँचे शिखर पर चढ़ गया। वहाँ से उसने देखा कि दूर पर निरंजना नदी के किनारे किनारे बहुत सी अश्वारोही सेना घटा के समान उमड़ती महाबोधि विहार की ओर दौड़ी चली आ रही है। यह देख वह मंदिर के शिखर पर से उतरा। उतरकर उसने देखा कि गर्भगृह का द्वार खुला है और वहाँ सन्नाटा है। वह विहार से निकलकर राजपथ पर जा खड़ा हुआ।

सुरंग का मार्ग पकड़े हुए जिनेंद्रबुद्धि बंधुगुप्त के साथ नीचे उतरे। जहाँ सुरंग का अंत हुआ वहाँ लोहे का एक छोटा सा द्वार दिखाई पड़ा। उन्होंने बंधुगुप्त को उसके खोलने का ढंग बताकर कहा "आप बेखटके यहाँ छिपे रहें। महाबोधिविहार के अध्यक्ष के अतिरिक्त और किसीको इस सुरंग का पता नहीं है। यदि किसी प्रकार किसीको इस सुरंग का पता लग जाय, और कोई ढूँढ़ता ढूँढ़ता यहाँ तक आने लगे तो आप चट यह लोहे का किवाड़ खोलकर आगे निकल जाइएगा। निरंजना के उस पार आप निकलेंगे। वहाँ बीहड़ बन में होते हुए आप कुक्कुटपादगिरि* पर चले जाइएगा।" जिनेंद्रबुद्धि ने ऊपर आकर गुप्त द्वार बंद कर दिया और गर्भगृह के बाहर आकर उन्होंने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। वे फिर आकर बोधिद्रुम के नीचे आसन जमाकर बैठ गए।

आधा दंड बीतते बीतते कई सहस्र अश्वारोही सेना ने आकर महाबोधिविहार और संघाराम को घेर लिया। सम्राट् शशांक और यशो-

*कुक्कुटपादगिरि = गुरपा पहाड़।

धवलदेव ने आकर विहारस्वामी जिनेंद्रबुद्धि से बंधुगुप्त का पता पूछा। उन्होंने कहा "बंधुगुप्त तो इधर बहुत दिनों से नहीं दिखाई पड़े।" शशांक को उनकी बात पर विश्वास न आया। चारों ओर बंधुगुप्त की खोज हुई, पर कहीं पता न लगा। यशोधवलदेव की आज्ञा से संघाराम के एक एक भिक्खु ने बोधिद्रुम के नीचे का वज्रासन स्पर्श करके शपथ खाई कि "मैंने बंधुगुप्त को नहीं देखा है।" सब भिक्खुओं ने झूठी शपथ खाई। केवल एक भिक्खु ने शपथ नहीं खाई। यह वही रक्तांबर-धारी भिक्खु था।

यशोधवलदेव ने जब बंधुगुप्त का पता पूछा तब उसने कहा "बंधुगुप्त कहाँ है यह तो मैं नहीं कह सकता, पर वे किस मार्ग से गए हैं यह मैंने सुना है।" यशोधवल ने बड़े आग्रह से पूछा "किस मार्ग से?" भिक्खु बोला "सुरंग के मार्ग से।"

"सुरंग कहाँ है?"

"वज्रासन और बोधिद्रुम के नीचे।"

क्रोध से विहारस्वामी जिनेंद्रबुद्धि का मुँह लाल हो गया; बड़ी कठिनता से अपना क्रोध रोककर उन्होंने सम्राट् से कहा "महाराजाधिराज! बोधिद्रुम के नीचे कोई सुरंग नहीं है।"

शशांक—है या नहीं यह तो अभी देखा जाता है।

जिनेंद्र—सर्वनाश, महाराज! बोधिद्रुम पर हाथ न लगाएँ।

शशांक—क्यों, क्या होगा?

जिनेंद्र—सृष्टि के आदि से बुद्धगण इसके नीचे बैठ बुद्धत्व प्राप्त करते आए हैं, इसका एक पत्ता छूने से भी महाराज का मंगल न होगा।

शशांक—अमंगल ही होगा न?

सम्राट् ने कई सैनिकों को बोधिद्रुम काटने की आज्ञा दी। भिक्खु लोग रोने चिल्लाने लगे। बोधिद्रुम की डालें और टहनियाँ कट कटकर गिरने लगीं। धीरे धीरे पेड़ी भी खोद डाली गई। वज्रासन का भारी पत्थर अपने स्थान से हट गया। नीचे सुरंग निकल आया, पर उसके भीतर बंधुगुप्त का कहीं पता न लगा। दिन डूबते डूबते सुरंग के छोर पर का लोहे वाला द्वार जब तोड़ा जाने लगा उस समय बंधुगुप्त गगन-स्पर्शी कुक्कुटपादगिरि के पास पहुँच गए थे। शशांक और यशोधवल-देव विफलमनोरथ होकर पाटलिपुत्र लौट गए।

इस घटना के चवालीस वर्ष पीछे जब चीन देश से एक धर्म्मात्मा भिक्खु आया तब उससे विपथगामी भिक्खुओं ने कहा कि महाराज शशांक ने धर्मद्वेष के कारण परम पवित्र बोधिद्रुम को कटाया था। इससे पृथ्वी फट गई और वह उसके भीतर समाकर घोर नरक में जा पड़ा। अंत में अशोक के वंशधर पूर्णवर्म्मा की भक्ति और सेवा के प्रभाव से एक रात में ही बोधिद्रुम फिर ज्यों का त्यों हो गया। जड़ से उखाड़ा हुआ वृक्ष किस प्रकार एक ही रात में बढ़कर साठ हाथ का हो गया यह बताना इस आख्यायिका का विषय नहीं, पर धर्मप्राण चीनी परिव्राजक ने यह कहानी ज्यों की त्यों अपने भ्रमणवृत्तांत में टाँक ली।

सातवाँ परिच्छेद

यशोधवल की प्रतिहिंसा

बंधुगुप्त का कहीं पता न लगा। महादंडनायक रविगुप्त के सामने महास्थविर बुद्धघोष का विचार हुआ। महास्थविर का राजद्रोह के अपराध में प्राणदंड की आज्ञा हुई। विचार के समय बुद्धघोष ने स्पष्ट कह दिया कि जो बौद्धधर्मावलंबी नहीं उसे बौद्ध लोग कभी राजा नहीं मान सकते। उसे सिंहासन से उतारने में, उसकी हत्या करने में कोई पाप नहीं है, महापुण्य है। बौद्धों के निकट प्रभाकरवर्द्धन ही देश के राजा हैं, प्रजापालक हैं, अतः राजद्रोह का अपराध मुझपर नहीं लग सकता। गंगाद्वार के सामने बुद्धघोष का कटा सिर सफेद बालू पर जा पड़ा। उत्तरापथ के बौद्धसंघ का कोई नेता न रह गया।

भागते गीदड़ के समान बंधुगुप्त मगध के एक स्थान से दूसरे स्थान में छिपता हुआ अंत में फिर पाटलिपुत्र लौट आया। राजपुरुष उसकी खोज बाहर बाहर कर रहे थे इससे वह समझा कि राजधानी में चलकर कुछ दिन शांति से रहूँगा। वह पाटलिपुत्र पहुँचकर उस पुराने मंदिर के गर्भगृह में रहने लगा। दिन भर तो वह उसी अँधेरी कोठरी में पड़ा रहता, रात को खाने पीने की खोज में निकलता। यशोधवलदेव की छाया उसे सदा पीछे लगी जान पड़ती थी।

जिस पुराने मंदिर के सामने तरला और जिनानंद (वसुमित्र) की भेंट हुई थी एक दिन संध्या के समय उसके पास दो अश्वारोही घूम रहे थे। दोनों अश्वारोही धीरे धीरे 'पुराने मंदिर की ओर बढ़ रहे

थे और धीरे धीरे बातचीत करते जाते थे। मंदिर की ओर से एक पथिक उनकी ओर चला आ रहा था। वह उन दोनों को देखते ही जंगल में छिप गया। एक अश्वारोही बोला "आर्य्य! बंधुगुप्त का कोई पता न लगा।" दूसरा बोला "पुत्र! कीर्त्तिधवल की हत्या का बदला लिए बिना मैं मरूँगा नहीं। जहाँ होगा, जिस प्रकार से होगा उसे पकड़ूँगा अवश्य।"

इतने में पथ के किनारे का एक वृक्ष हिल उठा। उसे देख सम्राट् बोल उठे "कौन?" कोई उत्तर न मिला। सम्राट् और यशोधवल झाड़ों में घुस पड़े। थोड़ी दूर बढ़कर उन्होंने देखा कि एक मनुष्य साँस छोड़कर जीर्ण मंदिर की ओर भागा जा रहा है। पल भर में सम्राट् ने उसके पास पहुँच उसकी पगड़ी खींची। वह पगड़ी छोड़कर भागने लगा। सम्राट् ने चकित होकर देखा कि उसका सिर मुँड़ा हुआ है।

पीछे से यशोधवलदेव बोल उठे "शशांक! अवश्य यह कोई बौद्ध भिक्खु है। देखना, जाने न पाए।" वह मनुष्य जी छोड़कर मंदिर की ओर भागा जाता था। मंदिर के द्वार के पास पहुँचते पहुँचते यशोधवलदेव ने उसका वस्त्र जा पकड़ा। वह अपने को सँभाल न सका, भूमि पर गिर पड़ा और कहने लगा "यशोधवल! मुझे मारना मत, प्राणदान दो, क्षमा करो।" वृद्ध महानायक चकपकाकर उसकी ओर ताकने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने पूछा "तू कौन है? तूने मुझे कैसे पहचाना?" उसने कोई उत्तर न दिया।

इतने में सम्राट् भी वहाँ आ पहुँचे। महानायक ने उनसे कहा "पुत्र! देखो तो यह कौन है। मैं तो इसे नहीं पहचानता, पर यह मुझे पहचानता है। इसने अभी मेरा नाम लिया था।" सम्राट् उसके पास गए और उसे देखते ही चौंक पड़े। उन्हें चट ध्यान आया कि

मेघनादनद में इसी व्यक्ति ने मुझपर ताककर बरछा छोड़ा था। अस्त्रों झनकार और योद्धाओं की कलकल के बीच उसका गंभीर कर्कश स्वर सुनाई पड़ा था कि "यही शशांक है, मारो मारो।" सम्राट् ने पहचाना कि यही बौद्धसंघ के बोधिसत्वपाद संघस्थविर बंधुगुप्त हैं। सम्राट् ने अस्फुट स्वर से कहा "भट्टारक! य—य—यही व्यक्ति बंधुगुप्त है।" सुनते ही वृद्ध महानायक की आकृति बदल गई। पल भर में अस्सी वर्ष के बुड्ढे के शरीर में जवानों का सा बल आ गया। हिंसावृत्ति ने प्रबल पड़कर बुढ़ापे को दूर कर दिया। वृद्ध महानायक का झुका हुआ शरीर तन गया। वे बोले "पुत्र! अब इस बार—"। शशांक पत्थर की मूर्त्ति बने चुपचाप खड़े रहे। उन्हें देख बंधुगुप्त बोल उठे "सम्राट्-शशांक-क्षमा—मुझे क्षमा करो—मारो मत—यदि मारना ही हो तो मुझे यशोधवल के हाथ से छुड़ाओ—बुद्धघोष के समान घातकों के हाथ में दे दो—पशु के समान खेला खेलाकर न मारो।"

यशोधवलदेव उन्मत्त के समान ठठाकर हँसे और कहने लगे "बंधुगुप्त! तूने जिस समय कीर्त्तिधवल की हत्या की थी उस समय कितनी दया दिखाई थी?" बंधुगुप्त काँपकर बोला "यशोधवल! तो तुम जानते हो—"।

यशो०—मैं सब जानता हूँ। बंधुगुप्त! जिस समय मेरा पुत्र घायल होकर अचेत पड़ा था उस समय तूने उसपर कितनी दया दिखाई थी?

बंधु०—महानायक! उस समय मेरे ऊपर भूत चढ़ा था—मैं—मैं—

यशो०—जिस समय रक्त बहने के कारण प्यास से तलफकर उसने जल माँगा था उस समय तूने क्या किया था, कुछ स्मरण है?

बंधु०—है क्यों नहीं, यशोधवल। उस समय मैं उनका गरम गरम रक्त शरीर में पोतकर प्रेत के समान नाच रहा था। पर तुम अब क्षमा करो, धवलवंश में धब्बा मत लगाओ।

यशो०—वह तो वाण लगने से घायल हुआ था, तुझे इतना रक्त कहाँ से मिला ?

बंधु०—महानायक ! मैंने उनके हाथ पैर की नसें काट दी थीं। उनके रक्त से देवी के मंदिर का आँगन लाल हो गया था। वह अब तक मेरी आँखों के सामने नाच रहा है। महानायक ! क्षमा करो।

यशो०—उसी हत्या का बदला चुकाने के लिए तो यशोधवल अब तक जी रहे हैं। तेरे रक्त से भूमि को रँगे बिना उसकी प्रेतात्मा कभी तृप्त न होगी। पितर प्यासे हैं, वे मुझे शाप देंगे। बंधुगुप्त ! जिस प्रकार तूने बालक कीर्तिधवल की हत्या की थी उसी प्रकार आज तुझे भी मरना होगा।

इसी बीच शशांक काँपते हुए महानायक की ओर बढ़े और घुटने टेक हाथ जोड़कर बोले "पिता—"। सारे वन को कँपाते हुए वृद्ध महानायक ने कड़ककर कहा "पुत्र ! इस समय यहाँ से चले जाओ। यशोधवल इस समय पिशाच हो गया है। पुत्रहंता की रक्तपिपासा ने उसे उन्मत्त कर दिया है। महासेनगुप्त के पुत्र का वचन व्यर्थ होगा। चले जाओ।" अपने को किसी प्रकार सँभालकर शशांक फिर बोले "भट्टारक ! थोड़ा धैर्य्य—"। उनकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि यशोधवल ने बाएँ हाथ से उन्हें दूर हटा दिया और दहने हाथ से तलवार खींची। सम्राट् दोनों हाथों से आँख मूँदकर वहाँ से हट गए।

घड़ी भर में सम्राट् की आज्ञा से वसुमित्र और हरिगुप्त ने उस पुराने मंदिर में जाकर देखा कि मंदिर का आँगन रक्त में डूब गया है। वज्रासन बुद्धदेव की मूर्त्ति के सामने संघस्थविर बंधुगुप्त का मृत शरीर पड़ा हुआ है और सर्वांग में रक्त लपेटे भीषण मूर्त्ति धारण किए महानायक उन्मत्तों के समान आँगन में नाच रहे हैं। देखते ही दो के दोनों काँप उठे। बड़ी कठिनता से यशोधवलदेव को किसी प्रकार रथ पर बिठा कर वे प्रासाद की ओर ले गए।

आठवाँ परिच्छेद

विग्रह और विद्रोह

सिंहासनच्युत होकर महाकुमार माधवगुप्त कहाँ चले गए पाटलिपुत्र में कोई नहीं जानता। कुछ लोग कहते थे कि हंसवेग के साथ थानेश्वर चले गए। शशांक ने अपने छोटे भाई को ढूँढ़ने के लिए चारों ओर दूत भेजे, पर उनका कहीं पता न लगा।

बंधुगुप्त के मारे जाने के पीछे यशोधवलदेव दिन दिन अशक्त होते गए, यहाँ तक कि वे उठकर चल फिर भी नहीं सकते थे। अपना अंतकाल समीप जान वृद्ध महानायक ने सेठ की कन्या यूथिका और अनंत की बहिन गंगादेवी का विवाह कर देने का अनुरोध सम्राट् से किया। शुभ मुहूर्त में वसुमित्र के साथ यूथिका का, माधववर्म्मा के साथ गंगा का और वीरेंद्रसिंह के साथ तरला का विवाह हो गया। शशांक ने लतिका के विवाह के विषय में भी पूछा, पर वृद्ध महानायक ने कोई उत्तर न दिया।

विवाहोत्सव होजाने पर एक दिन सम्राट् गंगाद्वार के घाट पर बैठे थे। कुछ दूर पर द्वार के पास महाप्रतीहार विनयसेन और महानायक अनंतवर्म्मा खड्ग लिये खड़े थे। ये लोग सदा सम्राट् के पास रहते थे। भागीरथी के शांत जलसमूह के ऊपर चाँदनी की शुभ्रधारा पड़ रही थी। सम्राट् एक टक उसी ओर ताक रहे थे। वे मन ही मन सोच रहे थे कि इसी जलसमूह के नीचे बालुका कणों के बीच कहीं चित्रा छिपी होगी। एक बार भी उसे यदि देख पाते! उसकी श्वेत ठठरी

कहीं सेवार से ढकी हुई नदीगर्भ में पड़ी होगी और मैं रत्नजटित सोने के सिंहासन पर बहुमूल्य वस्त्र आभूषण पहने बैठा हूँ। वही चित्रा, फूल चुनते समय जिसकी कोमल उँगलियों में एक छोटा सा काँटा चुभ जाने से कितनी पीड़ा होती थी, वह कितना व्याकुल होती थी! जिस समय मैं जल में कूदा था उस समय मुझे कितनी वेदना हुई थी! उसके हाथ दारुण मानसिक वेदना से शिथिल होकर जिस समय तैरने में अशक्त हो गए होंगे उस समय मृत्यु का आलिंगन करने में उसे कितनी यंत्रणा हुई होगी! रुके हुए नाले के समान आँसुओं की धारा छूट पड़ी। शशांक की आँखों में धुंध सा छा गया। चाँदनी में डूबा हुआ जगत् सामने से हट गया।

इसी बीच एक दंडधर दौड़ा दौड़ा आया और सम्राट् का अभिवादन करके बोला "देव! उत्तर-मालव से महाराज देवगुप्त ने एक दूत भेजा है। वह इसी समय महाराजाधिराज का दर्शन चाहता है।" सम्राट् कुछ अनमने से होकर बोले "उसे यहीं ले आओ।" दंडधर प्रणाम करके चला गया।

दंडधर थोड़ी ही देर में एक वर्म्मधारी पुरुष को साथ लिए लौट आया। वह सम्राट् को अभिवादन करके बोला "महाराजाधिराज! मालव से महाराज देवगुप्त ने मुझे भेजा है। मैं दिन रात घोड़े की पीठ पर ही चल कर आज दो महीने में यहाँ पहुँचा हूँ।"

"क्या संवाद लाए हो?"

"संवाद बहुत गोपनीय है।"

"तुम बेधड़क कहो। यहाँ पर इस समय जितने लोग हैं सब साम्राज्य के विश्वस्त कर्म्मचारी हैं।"

"महाराज देवगुप्त ने महाराजाधिराज के पास यह कहला भेजा है कि दो महीने हुए कि थानेश्वर में विषमज्वर से महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हो गई।"

अनंत—...क्या कहा ?

दूत—विषमज्वर से महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हो गई ।

शशांक—इसके लिए देवगुप्त ने क्यों दूत भेजा है ? स्थाण्वीश्वर से यथासमय संवाद आही जाता ।

दूत—महाराजाधिराज ! और संवाद भी है । महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के समय महाकुमार राज्यवर्द्धन वहाँ नहीं पहुँच सके । वे हूण देश की चढ़ाई पर गए हैं । वे नगरहार और पुरुषपुर के आगे गांधार देश की घाटियों में जा पहुँचे हैं । अब तक वे लौट कर नहीं आए हैं !

शशांक—तो क्या हर्ष ने अपने जेठे भाई के सिंहासन पर अधिकार कर लिया है ?

दूत—नहीं महाराजाधिराज ! महादेवी यशोमती ने चितारोहण किया । राज्यवर्द्धन अब तक लौट कर नहीं आए हैं । हर्ष शोक के मारे अधमरे से हो रहे हैं । महाराज ने निवेदन किया है कि सार्य्य समुद्रगुप्त के विनष्ट साम्राज्य के उद्धार का यही समय है । वे कान्यकुब्ज पर आक्रमण करके थानेश्वर की ओर बढ़ रहे हैं । उन्होंने निवेदन किया है कि महाराजाधिराज इधर से प्रतिष्ठान दुर्ग पर चटपट अधिकार करें ।

शशांक—दूत ! मालवराज बावले तो नहीं हुए हैं । वे क्या नहीं जानते कि स्वर्गीय प्रभाकरवर्द्धन सम्राट् दामोदरगुप्त के दौहित्र थे । उनसे कहना कि साम्राज्य के साथ स्थाण्वीश्वर राज्य का कोई विवाद नहीं है । दूसरी बात यह कि विपत्ति में पड़े हुए पुराने बैरी पर भी आक्रमण करना क्षात्रधर्म्म के विरुद्ध है । हर्ष मेरे फुफेरे भाई हैं । तुम चटपट लौटो और मालवराज से मेरा नाम लेकर कहो कि वे मालवा लौट जायँ । अन्याय से समुद्रगुप्त के विनष्ट साम्राज्य का उद्धार नहीं हो सकता ।

दूत—महाराजाधिराज ! थानेश्वर के राजा साम्राज्य के पुराने शत्रु हैं । महाराज देवगुप्त ने यज्ञवर्म्मा की हत्या, अवंतिवर्म्मा के विद्रोह और

पाटलिपुत्र में थानेश्वर की सेना के उद्धत व्यवहार की बात का स्मरण करने के लिए कहा है।

शशांक—उनसे कहना कि मुझे सब बातों का स्मरण है, फिर भी मैं अन्याय और अधर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता।

दूत—महाराजाधिराज !

शशांक—क्या कहना चाहते हो ? बेधड़क कहो।

दूत—महाराजाधिराज महासेनगुप्त के पुत्र हैं; समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त और कुमारगुप्त के वंशधर हैं। गुप्तवंश के पूर्व गौरव का ध्यान श्रीमान् के चित्त में सदा बना रहना चाहिए। साम्राज्य की असहाय अवस्था में विश्वासघातकों ने किस प्रकार एक नया राज्य खड़ा कर लिया यह बात किसी से छिपी नहीं है।

इतने में महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त दौड़े हुए गंगाद्वार से निकलकर आए और दंडधर से पूछने लगे "सम्राट् कहाँ हैं ?" उसने उँगली उठाकर दिखाया। मालव के राजदूत, अनंतवर्म्मा और शशांक चकपका कर उनकी ओर ताकने लगे। उनके मुँह से कोई बात निकलने के पहले ही सम्राट् ने पूछा—

"महानायक ! क्या है ?"

हरि०—महाराजाधिराज ! भारी आपत्ति है।

शशांक—क्या हुआ ?

हरि०—चरणाद्रि दुर्ग की सारी सेना विद्रोही हो गई है।

शशांक—क्या अवंतिवर्म्मा फिर आ गया ?

दूत—महाराजाधिराज ! मौखरिराज अवंतिवर्म्मा तो प्रतिष्ठान दुर्ग में हैं।

शशांक—दूत ! मौखरिराज तो अनंतवर्म्मा हैं जो हमारे पास खड़े हैं। अवंतिवर्म्मा तो विद्रोही है।

हरि०—महाराजाधिराज ! दूत का अपराध क्षमा हो। इस समय वाराणसीभुक्ति की सारी सेना विद्रोही होकर चरणाद्रि की सेना के साथ मिल गई है और नरसिंह नाम के एक व्यक्ति को सेनापति बनाकर उसने प्रतिष्ठान पर आक्रमण कर दिया है।

शशांक—नरसिंह ! नरसिंह कौन है ?

हरि०—यह तो मैं नहीं कह सकता। पर वह महानायक नरसिंह-दत्त नहीं हो सकता। तक्षदत्त का पुत्र कभी विद्रोही नहीं हो सकता।

शशांक—संवाद लेकर कौन आया है ?

हरि०—विद्रोही सेना ने एक अश्वारोही को दूत बनाकर महाराजाधिराज के पास भेजा है।

शशांक—महानायक ! उसे यहाँ बुलवाइए। वृद्ध महानायक कहाँ हैं ?

हरि०—यशोधवलदेव तो इस समय पाटलिपुत्र में नहीं हैं। पर महाराजाधिराज ! यहाँ गंगाद्वार पर मंत्रणा होना ठीक है ?

शशांक—क्या हानि है ? पिता जी के समय में गंगाद्वार पर कई बार मंत्रणा हुई थी।

हरिगुप्त दंडधर को दूत को बुलाने के लिए भेज आप सीढ़ी पर बैठ गए। सम्राट् ने अनंतवर्म्मा से पूछा "अनंत ! यह नरसिंह कौन है ?"

"कुछ समझ में नहीं आता।"

"और भी कभी यह नाम सुना था ?"

"महाराजाधिराज ! चित्रा के भाई नरसिंह को छोड़ मैं और किसी नरसिंह को तो नहीं जानता।"

इतने में माधववर्म्मा, वीरेंद्रसिंह, दंडधर और वर्म्मधारी सैनिक गंगाद्वार से निकलकर आए। सैनिक सम्राट् और नायकों का यथारीति

अभिवादन करके बोला "महाराजाधिराज, महाबलाध्यक्ष ने अभी हम लोगों को विद्रोही कहा है। पर हम लोग विद्रोही नहीं हैं। जिन्होंने शंकरनद और मेघनाद के किनारे श्रीमान् की अधीनता में युद्ध किया है वे कभी विद्रोही नहीं हो सकते। वाराणसीभुक्ति की सारी सेना समतट, वंग और कामरूप की लड़ाई में महानायक यशोधवलदेव और सम्राट् के अधीन अपना रक्त बहा चुकी है। वह महानायक नरसिंह-दत्त को नहीं भूली है। उन्हीं की आज्ञा से उसने विश्वासघातक सेना-नायकों को बंदी करके चरणाद्रिगढ़ को शत्रुओं के हाथ में पड़ने से बचाया है।

अनंत०—क्या कहा ?

दूत—हम लोगों ने महानायक नरसिंहदत्त की आज्ञा से महा-कुमार माधवगुप्त और मौखरिकुमार अवंतिवर्म्मा से धन पानेवाले विश्वासघाती नायकों को बंदी करके चरणाद्रिगढ़ पर अधिकार कर लिया है। देव ! उन्हींके आदेश से बीस सहस्र अश्वारोही प्रतिष्ठानदुर्ग की ओर दौड़े हैं। महाराजाधिराज को स्मरण हो या न हो, एक दिन बंधुगुप्त की तलवार महाराज के सामने ही मेरे सिर पर पड़ी थी। उसका चिह्न अब तक है।

सैनिक ने शिरस्त्राण हटाकर घाव का चिह्न दिखाया। अनंतवर्म्मा तुरंत उसे आलिंगन करके बोले "मैं पहचान गया, तुम वही गौड़ीय नाविक हो"। नाविक ने तलवार मस्तक से लगाकर कहा "महाराजा-धिराज ! हम लोग पुराने विश्वस्त सेवक हैं। विद्रोही नहीं हैं, तक्षदत्त के पुत्र की अधीनता में हम लोग बहुत युद्ध कर चुके हैं, उन्हें हम लोग जानते हैं। उन्होंने कहला भेजा है कि सम्राट् यदि सेना सहित बढ़ेंगे तो मैं थानेश्वर की ओर प्रस्थान करूँगा नहीं तो—

अनंत०—नहीं तो—

सैनिक—नहीं तो जब तक एक भी गौड़ सैनिक जीता बचेगा तब तक नरसिंहदत्त हर्ष और राज्यवर्द्धन के साथ युद्ध करते रहेंगे।

शशांक—अच्छी बात है, तुम लोग बढ़ो, मैं आता हूँ। मालव राजदूत ! तुम तात देवगुप्त से कहना कि सम्राट् नरसिंहदत्त की रक्षा के लिए जा रहे हैं अन्याय युद्ध करने नहीं। नरसिंहदत्त कह गए थे कि जब कोई भारी संकट उपस्थित होगा तभी मैं फिर दिखाई पड़ूँगा। इससे समझ लेना चाहिए कि साम्राज्य पर भारी संकट है, यदि ऐसा न होता तो नरसिंहदत्त कभी प्रकट न होते। मैं आज ही पाटलिपुत्र की सेना लेकर आगे बढ़ता हूँ। वसुमित्र, अनंतवर्म्मा और माधव हमारे साथ चलेंगे। वीरेंद्र ! महानायक से कहना वे चटपट अंग, वंग और गौड़ की सेना लेकर प्रतिष्ठानपुर आएँ। अनंत ! मैं कल सवेरे ही यात्रा करूँगा। नगर की सारी अश्वारोही सेना मेरे साथ चलेगी।

नवाँ परिच्छेद

प्रतिष्ठान का युद्ध

जिस स्थान पर कालिंदी का श्यामल जल भागीरथी के मटमैले जल के साथ मिलता था—जहाँ गंगा और जमुना का संगम था—वहीं पर प्राचीन काल में प्रतिष्ठान का दुर्ग स्थित था। अब भी गंगा के किनारे प्रतिष्ठान के पुराने दुर्ग* का भारी ढूह दिखाई पड़ता है। यह दुर्ग अत्यंत प्राचीन था—न जाने कब से यह पुराना दुर्ग अंतर्वेद की रक्षा का एक प्रधान अड्डा गिना जाता था। प्राचीन गुप्त-राजवंश के समय में भी प्रतिष्ठान दुर्ग आर्य्यावर्त्त के प्रधान दुर्गों में से था।

चौदह शताब्दी पूर्व अगहन के महीने में एक सेना-दल प्रतिष्ठान दुर्ग को घेर रहा था। दुर्ग के तीन ओर दूर तक डेरे पड़े हुए थे। उनके बीच जो सब से बड़ा डेरा था उसके ऊपर सोने का गरुड़ध्वज निकलते हुए सूर्य्य की किरनों से अग्नि के समान दमक रहा था। उस सब से बड़े शिविर के सामने काठ की एक चौकी पर एक युवा पुरुष बैठा है। उसके सामने सैनिकों से घिरे हुए दो और युवक खड़े हैं। पड़ाव के चारों ओर सेना दुर्ग के आक्रमण की तैयारी कर रही है। पहला युवक कह रहा है "माधव! तुम महासेनगुप्त के पुत्र और दामोदरगुप्त के पौत्र हो; तुमने प्रभाकरवर्द्धन की अधीनता कैसे स्वीकार की, समझ में नहीं आता। यदि तुमसे भूल हुई तो कोई बात नहीं, अब

---

* प्रयाग के उस पार झूँसी में इस दुर्ग का ढूह अब तक है। गंगा के इस पार जो दुर्ग है वह अकबर का बनवाया हुआ है।

भी कुछ नहीं बिगड़ा है। शशांक का हृदय बहुत उदार है, तुम्हें किसी बात का भय नहीं। माधव ! शशांक आ रहे हैं, मैं उनके सामने नहीं होना चाहता। इससे आज ही या तो प्रतिष्ठान दुर्ग पर अधिकार करूँगा अथवा संध्या होते होते तक्षदत्त के वंश का लोप करूँगा। तुम समुद्रगुप्त के वंशधर हो, सारा वैर विरोध भूलकर यह गरुड़ध्वज हाथ में लो और आगे बढ़ो। संध्या के पहले ही दुर्ग पर चंद्रकेतु के स्थान पर अपना गरुड़ध्वज स्थापित करो। यदि ऐसा करोगे तो मगधवासी तुम्हारा सारा अपराध भूल जायँगे"।

रक्षकों से घिरे हुए युवक ने जब कोई उत्तर न दिया तब पहला युवक फिर कड़ककर बोला "माधव ! अभी तुम्हारा भ्रम दूर नहीं हुआ। अच्छी बात है, तुम शिविर में बंदी रहो, मैं ही जाकर प्रतिष्ठान दुर्ग पर अधिकार करता हूँ"। सेनादल दोनों युवकों को बंदी करके अन्यत्र ले गया। पहले युवक ने आसन से उठकर एक परिचारक से वर्म्म लाने के लिए कहा। वर्म्म लाया गया। उसे धारण करते करते उसने कहा "नायकों को यहाँ बुलाओ" इतनेमें एक सैनिक ने आकर निवेदन किया कि चरणाद्रिगढ़ से कुछ संवाद लेकर एक अश्वारोही आया है। युवक शिरस्त्राण को हाथ में लिए हुए बोला "उसे यहीं ले आओ"। सैनिक जाकर एक और वर्म्मावृत योद्धा को साथ लिए आया। उस योद्धा ने आते ही कहा "मैं परसों संध्या को चरणाद्रिगढ़ से चला हूँ। उस समय सम्राट् वाराणसी से चलकर वहाँ पहुँच चुके थे। कल सबेरे फिर वहाँ से चले होंगे। आज तीसरे पहर या संध्या को यहाँ पहुँच जायँगे"। युवक ने शिरस्त्राण को सिर पर रखकर कहा "अच्छी बात है, तुम जाकर विश्राम करो"। सैनिक अभिवादन करके चला गया।

देखते देखते सैकड़ों सेनानायकों ने शिविर के घेरे में आकर युवक को अभिवादन किया। युवक ने भी तलवार उठाकर सबके अभिवादन

का उत्तर दिया और उनमें से एकको पुकारकर कहा "सुरनाथ! केवल एक अश्वारोही चरणाद्रिगढ़ से आया है। उसने कहा है कि सम्राट् परसों संध्या को चरणाद्रिगढ़ पहुँचे हैं। वे कल सवेरे वहाँ से चले होंगे और आज तीसरे पहर तक यहाँ पहुँच जाँयगे"। सुरनाथ ने कहा "प्रभो! यह अच्छा ही हुआ। सम्राट् के आ जाने से विना युद्ध के ही दुर्ग पुर अधिकार हो जायगा" पहले युवक ने सिर हिलाकर कहा "यह नहीं होगा, सुरनाथ! आज ही जैसे हो वैसे दुर्ग पर अधिकार करना होगा। सम्राट् अतिथि के रूप में दुर्ग में प्रवेश करेंगे"। सुरनाथ चकित होकर युवक का मुँह ताकते रह गए। युवक ने सेनानायकों को संबोधन करके कहा "वीर नायकगण! दूत के मुँह से केवल यही संवाद मुझे मिला है कि आज तीसरे पहर सम्राट् यहाँ पहुँच जायँगे। मैंने यह स्थिर किया है कि आज ही दुर्ग पर अधिकार हो जाय। चाहे जिस प्रकार हो आज ही दुर्ग पर अधिकार करना होगा। जिस समय समुद्रगुप्त के वंशधर समुद्र गुप्त के दुर्ग में प्रवेश करें उस समय उन्हें रोकनेवाला कोई न रह जाय। नायकगण! मैं तक्षदत्त का पुत्र हूँ। मैं खड्ग स्पर्श करके कहता हूँ कि आज संध्या होने के पहले ही मैं समाट् के लिए दुर्ग में प्रवेश करने का पथ खोल दूँगा। मेरे साथ कौन कौन चलता है?"

सैकड़ों कंठों से शब्द निकला "मैं चलूँगा"। कोलाहल मिटने पर युवक ने कहा "केवल चलूँगा कहने से नहीं होगा। वीरो! आज के युद्ध से लौटना नहीं है। या तो संध्या के पहले दुर्ग पर अधिकार होगा अथवा प्राकार या खाई के नीचे सब दिन के लिए विश्राम। जो जो आज हमारे साथ चलें वे खड्ग स्पर्श करके शपथ करें कि कभी पीछे न फिरेंगे"।

दो एक वृद्ध सैनिक युवक की ओर बढ़े, पर युवक ने हाथ के संकेत से उन्हें लौट जाने की आज्ञा देकर कहा "भाइयो, मेरा अपराध

क्षमा करना। परामर्श और मंत्रणा का समय अब नहीं है। युद्ध करते जिनके बाल पके हैं उनसे क्षमा माँगकर कहता हूँ कि आज रणनीति के विरुद्ध महानायक यशोधवलदेव के उपदेश पर चलूँगा। प्रतिष्ठानदुर्ग भीषण और दुर्जेय है, बहुत बड़ी सेना से रक्षित है, यह सब मैं जानता हूँ। पर आज दुर्ग पर अधिकार करना ही होगा। वीर नायको! आज का यह युद्ध रणनीति के विरुद्ध है, आज के युद्ध में न लौटना है, न पराजय। कौन कौन मेरे साथ चलते हैं?"
सैंकड़ों तलवारें म्यान से निकल पड़ीं। बालक, वृद्ध, प्रौढ़, तरुण सब ने खड्ग स्पर्श करके एक स्वर से प्रतिज्ञा की कि 'आज ही दुर्ग पर अधिकार करेंगे, युद्ध से कभी पीछे न फिरेंगे'।

प्रतिष्ठान दुर्ग आर्य्यावर्त्त भर में अत्यंत दुर्गम और दुर्जय प्रसिद्ध था। दुर्ग के चारों ओर की चौड़ी खाई सदा गंगा के जल से भरी रहती थी। दुर्ग चारों ओर से तिहरे परकोटों से घिरा था जो पहाड़ ऐसे ऊँचे और ढालू थे। दिन में तो दुर्ग के प्राकारों पर चढ़ना असंभव था इससे थानेश्वर की दुर्गरक्षी सेना रात को तो बहुत सावधान रहती थी, पर दिन को बेखटके विश्राम करती थी। इतिहास से पता चलता है कि जब जब प्रतिष्ठान दुर्ग पर शत्रुओं का अधिकार हुआ है तब तब अन्न जल के चुकने के कारण। बाहर से कोई शत्रु बल से दुर्ग के भीतर नहीं घुस सका है।

पहर दिन चढ़ते चढ़ते मागध सेना को दुर्ग के आक्रमण की तैयारी करते देख स्थाण्वीश्वर के सेनानायक विस्मित हुए। उन्होंने रात भर जागी हुई सेना को दुर्ग प्राकार पर नियत किया। तीसरे पहर मागध सेना ने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। स्थाण्वीश्वर के नायकों ने इसे बावलापन समझ दुर्ग रक्षा का कोई विशेष प्रबंध न किया। देखते देखते बाँस और लकड़ी की हजारों सीढ़ियाँ परकोटों पर लग गईं। हज़ारों सैनिक उनपर से होकर प्राकार पर चढ़ने की

चेष्टा करने लगे पर खौलते तेल, गले सीसे, और पत्थरों की वर्षा से अधिक दूर न चढ़ सके। सैकड़ों सैनिक घायल होकर नीचे खाईं में जा रहे। यह देखकर भी पीछे की सेना विचलित न हुई। एक बार, दो बार, तीन बार सीढ़ियों पर चढ़ती हुई मागध सेना नीचे गिरी। खाईं मुर्दों से पट गई। इतना होने पर भी चौथी बार मागध सेना ने आक्रमण किया। थानेश्वर के सेनानायक और भी चकित हुए। चौथी बार भी सैकड़ों सैनिक घायल हो होकर गिरने लगे, पर सेना बराबर चढ़ती गई। देखते देखते परकोटे के ऊपर युद्ध होने लगा। थानेश्वर की सेना हटने लगी।

सहसा यह आपत्ति देख थानेश्वर के सेनानायक सेना के आगे होकर युद्ध करने लगे। मागध सेना पीछे हटने लगी। यह देखते ही चमचमाता हुआ वर्म्म धारण किए एक लंबे डील का पुरुष हाथ में गरुड़ध्वज लिए शत्रुसेना के बीच जा कूदा और कड़ककर बोला "आज समुद्रगुप्त के दुर्ग में समुद्रगुप्त के वंशधर प्रवेश करेंगे, कौन लौटता है?" मागध सेना लौट पड़ी। बिजली के समान गरुड़ध्वज आगे दौड़ता दिखाई पड़ा। प्रथम प्राकार पर अधिकार हो गया।

देखते-देखते मागध सेना ने दूसरे प्राकार पर धावा किया। सहस्रों सैनिक घायल होकर गिरे, पर सेना बार बार चढ़ने का उद्योग करती रही। सैनिकों को शिथिल पड़ते देख वर्म्मधारी पुरुष गरुड़ध्वज हाथ में लिए चट सीढ़ी पर लपकता हुआ परकोटे के ऊपर जा खड़ा हुआ। तीसरे पहर की सूर्य्यकिरणों से चमचमाती हुई वर्म्मावृत मूर्त्ति और सुवर्ण-निर्मित गरुड़ध्वज को ऊपर देख मागध सेना जयध्वनि करने लगी। भय से थानेश्वर की सेना थोड़ा पीछे हटी। सहस्रों सैनिक प्राकार के ऊपर पहुँच गए। दूसरे प्राकार पर भी अधिकार हो गया।

दुर्ग को इस प्रकार शत्रु के हाथ में पड़ते देख रोष और क्षोभ से अपने जी पर खेल थानेश्वर के सेनानायक तीसरे प्राकार की रक्षा करने लगे। मागध सेना कई बार पीछे हटी। सेनादल को हतोत्साह होते देख मागध नायक सिर नीचा किए खड़े रहे। इतने में फिर वही वर्म्मधारी पुरुष अकेले प्राकार पर चढ़ने लगा। उसके ऊपर सैकड़ों पत्थर फेंके गए, पर उसे एक भी न लगा। उसने प्राकार पर खड़े होकर जयध्वनि की। उसे ऊपर देख सेनानायक गण लज्जित होकर अपनी अपनी सेना छोड़ प्राकार के ऊपर दौड़ पड़े। दुर्गरक्षकों ने उन मुट्ठी भर मनुष्यों को ऊपर देख उन्हें पीस डालना चाहा। इतने में बाहर सहस्रों सैनिकों ने एक स्वर से महाराजाधिराज शशांक नरेंद्रगुप्त का नाम लेकर जयध्वनि की। प्राकार के नीचे खड़ी मागध सेना को चेत हुआ। उसने देखा कि प्राकार पर चढ़ने का मार्ग्ग निर्विघ्न है, प्राकार के ऊपर युद्ध हो रहा है। भीषण जयध्वनि करके सेना प्राकार पर चढ़ गई। संध्या होने के पहले ही दुर्ग पर अधिकार हो गया।

प्रतिष्ठान दुर्ग के पूर्व तोरण पर खड़ा वर्म्मावृत पुरुष शिरस्त्राण उतार विश्राम कर रहा था। इसी बीच एक सैनिक ने आकर कहा "महानायक! सम्राट् दुर्ग में प्रवेश कर रहे हैं।" वर्म्मधारी पुरुष ने विस्मित होकर पूछा "वे कब आए?"

"जिस समय शिविर की सेना ने जयध्वनि की थी उसी समय वे पहुँचे थे।"

"दुर्ग का फाटक खोलने के लिए कहो।"

संध्या हो गई थी। सैनिकों ने तापने के लिए स्थान स्थान पर अलाव लगाए थे। वर्म्मधारी पुरुष ने अपने पास खड़े सेनानायक से कहा "सूरनाथ! तुम इस गरुड़ध्वज[^] को लिए रहो, मैं अभी आता

हूँ।" नायक के हाथ में गरुड़ध्वज थमा कर देखते देखते वह पुरुष अदृश्य हो गया।

पल भर में सम्राट् ने बड़े समारोह के साथ प्रतिष्ठानदुर्ग में प्रवेश किया। आते ही वे नरसिंहदत्त को ढूँढ़ने लगे। किंतु जिसके उँगली हिलाने से दस सहस्र सेना अपने जी पर खेल गई थी, जिसने प्रतिष्ठान दुर्ग पर अधिकार किया था, उसका कहीं पता न लगा—न दुर्ग में, न शिविर में। सम्राट् ने तीसरे प्राकार पर खड़े होकर रुँधे हुए गले से अनंतवर्म्मा को पुकारा "अनंत !"

"आज्ञा महाराज ?।"

"यह उन्हीं का काम है।"

"किनका ?"

"नरसिंह का। चित्रा के कारण वे मेरा मुँह अब न देखेंगे।"

दसवाँ परिच्छेद

द्वंद्व युद्ध

प्रतिष्ठानपुर में आने पर शशांक ने सुना कि पिता की मृत्यु का संवाद पाकर राज्यवर्द्धन गांधार से लौट आए हैं; देवगुप्त ने कान्यकुब्ज पर अधिकार कर लिया है; मौखरि राजपुत्र ग्रहवर्म्मा युद्ध में मारे गए, उनकी रानी, प्रभाकरवर्द्धन की कन्या राज्यश्री, अपनी उद्दंडता के कारण कारागार में हैं। देवगुप्त कान्यकुब्ज पर अधिकार करके थानेश्वर की ओर बढ़ रहे हैं। शशांक को यह भी समाचार मिला कि देवगुप्त कान्यकुब्ज से चलते समय अनुरोध कर गए हैं कि सम्राट् भी अपनी सेना सहित कुरुक्षेत्र में आ मिलें।

प्रतिष्ठानदुर्ग में ठहर कर शशांक नरसिंह की खोज करने लगे, पर इधर उधर बहुत ढूँढ़ने पर भी उनका कहीं पता न लगा। इसी बीच में संवाद आया कि हिमालय की तराई में गंगा के किनारे हार खाकर देवगुप्त मालवे की ओर भागे और राज्यवर्द्धन सम्राट् पर आक्रमण करने के लिए बड़े वेग से बढ़े चले आ रहे हैं। शशांक प्रतिष्ठानदुर्ग छोड़ कर कान्यकुब्ज की ओर बढ़े। कान्यकुब्ज पहुँचने पर सम्राट् को संवाद मिला कि थानेश्वर की सेना अभी बहुत दूर है। सम्राट् ने नगर और दुर्ग पर अधिकार करके कान्यकुब्ज नगर के पश्चिम गंगा के किनारे प्राचीन शूकरक्षेत्र में पड़ाव डाला। ऐसा प्रसिद्ध है कि सत्ययुग में भगवान् का वाराह अवतार यहीं हुआ था।

शूकरक्षेत्र बड़ा पुराना तीर्थ है। कुरुक्षेत्र के समान इसकी गिनती भी पुराने रणक्षेत्रों में है। बहुत काल से मध्यदेश के राजाओं के भाग्य

का निबटेरा यहाँ होता आया है। ईसा की बारहवीं शताब्दी में जब आर्य्यावर्त्त के राजाओं का सौभाग्यसूर्य्य सब दिन के लिए अस्त हो रहा था तब इसी शूकरक्षेत्र में महाराज जयचंद ने मुहम्मद गोरी की सेना का साधना किया था।

शूकरक्षेत्र ही में शशांक को पता लगा कि राज्यवर्द्धन मालवे की ओर बढ़ रहे हैं; देवगुप्त लड़ाई में मारे गए और राज्यवर्द्धन की चढ़ाई अब कान्यकुब्ज ही पर है। शशांक देवगुप्त की मृत्यु का संवाद पाकर बहुत दुखी हुए पर शूकरक्षेत्र उन्होंने नहीं छोड़ा। इसी बीच मगध से संवाद आया कि यशोधवलदेव चारपाई पर पड़े हैं और उनकी दशा अच्छी नहीं है, गौड़ और बंग की सेना लेकर विद्याधरनंदी आ रहे हैं। दूत पर दूत आकर राज्यवर्द्धन के बढ़ते चले आने का समाचार कहने लगे। जब वे मथुरा पहुँचे तब सम्राट् शशांक ने उनके पास दूत भेजा। दूत अपमानित होकर लौट आया और कहने लगा "थानेश्वर के महाराज ने कहा है कि अब पाटलिपुत्र में ही चलकर शशांक से भेंट करेंगे।" अनंतवर्म्मा और माधववर्म्मा ने जमुना के तट पर ही राज्यवर्द्धन को रोकने का प्रस्ताव किया, पर शशांक सहमत न हुए। अंत में राज्यवर्द्धन अपनी सेना सहित शूकरक्षेत्र में आ पहुँचे। तब भी शशांक ने उनपर आक्रमण न किया। उन्होंने महाधर्माध्यक्ष नारायण शर्म्मा को दूत बनाकर थानेश्वर के शिविर में भेजा। नारायण शर्म्मा स्वर्गीया महादेवी महासेनगुप्ता के श्राद्ध के अवसर पर एक बार थानेश्वर हो आए थे और राज्यवर्द्धन से परिचित थे। वे दोनों भाई महाधर्म्माध्यक्ष पर बड़ी श्रद्धा रखते थे।

सम्राट् ने नारायणशर्म्मा से कहला भेजा [illegible] साम्राज्य की आज्ञा के ही कान्यकुब्ज पर आक्रमण किया था। महानायक नरसिंहदत्त ने भी सम्राट् की इच्छा के विरुद्ध ही प्रतिष्ठानदुर्ग पर आक्रमण और अधिकार किया है। थानेश्वर के सेनानायकों ने

माधवगुप्त से मिलकर वाराणसीभुक्ति पर अधिकार जमाने का उद्योग किया इसी से नरसिंहदत्त ने चढ़ाई की। स्थाण्वीश्वरराज मेरे संबंधी हैं, उनके साथ लड़ाई करने की इच्छा मुझे नहीं है। आदित्यवर्द्धन और प्रभाकरवर्द्धन के समय में दोनों राज्यों के बीच जो मेल था उसे मैं बनाए रखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि थानेश्वरराज्य और मगध साम्राज्य के बीच जो सीमा है वह सब दिन के लिए निर्दिष्ट हो जाय। इसके लिए मैं राज्यवर्द्धन से मिलना चाहता हूँ। सीमा पर कई छोटे छोटे खंड राज्य हैं, जिनके कारण समय समय पर झगड़ा उठा करता है। सीमा यदि निर्दिष्ट हो जायगी तो फिर आगे चलकर किसी प्रकार के झगड़े की संभावना न रह जायगी। देवगुप्त ने कान्यकुब्ज पर जो सहसा आक्रमण किया था उसका प्रायश्चित्त उनके जीवन के साथ हो गया। उसके लिए अब झगड़ा बढ़ाना मैं नहीं चाहता।

दो घड़ी में नारायणशर्म्मा ने लौट कर कहा "मेरा दौत्य व्यर्थ हुआ, राज्यवर्द्धन ने बड़े उद्धत भाव से सम्राट् का प्रस्ताव अस्वीकृत किया। पर राजमर्य्यादा की रक्षा के लिए दोनों शिविरों के बीच गंगा तट पर महाराजाधिराज से मिलना उन्होंने स्वीकार किया है।"

संधि असंभव समझ शशांक युद्ध के लिए प्रस्तुत होने लगे। नगर और दुर्ग पर आक्रमण करने की तैयारी उन्होंने की। विद्याधरनंदी अभी बहुत दूर थे। दूसरे दिन दोपहर को दोनों शिविरों के बीच के क्षेत्र में दोनों पक्षों के राजछत्र स्थापित हुए। दोनों पक्षों की सेना युद्ध के लिए खड़ी हुई। एक ही समय में शशांक और राज्यवर्द्धन अपने अपने शिविर से निकले। शशांक के साथ माधव, अनंत और पाँच शरीररक्षी थे। राज्यवर्द्धन के साथ भी दो अमात्य और पाँच सैनिक थे।

दोनों ने अपने अपने छत्र के नीचे खड़े होकर एक दूसरे को अभिवादन किया। उसके पीछे शशांक आगे बढ़कर बोले "महाराज!

आप युद्ध करने पर दृढ़ हैं यह बात मैंने सुनी। इससे आपको अपने विचार से हटाना क्षात्रधर्म के विरुद्ध है। इस संबंध में केवल एक बात मुझे कहनी है जो दूत के द्वारा नहीं कहलाई जा सकती थी। राज्य के लिए आपके और मेरे बीच झगड़ा है। इसके लिए सहस्रों मनुष्यों के प्राण नाश से क्या लाभ? आप अस्त्रविद्या में पारंगत हैं, मैंने भी अपना सारा जीवन युद्ध में ही बिताया है। दोनों शिविरों के बीच आप तलवार लेकर मुझसे युद्ध करें। यदि मैं युद्ध में हारूँगा तो सम्राट् की पदवी छोड़ अपनी सेना सहित चला जाऊँगा। यदि आप पराजित होंगे तो आपको अपना राज्य न छोड़ना होगा, केवल जमुना और चंबल के पूर्व कभी पैर न रखने की प्रतिज्ञा करनी होगी। इससे भी यदि निबटेरा न हो तो दोनों पक्षों की सेनाएँ लड़ कर देख लें।

शशांक की बात सुन कर राज्यवर्द्धन सिर नीचा करके कुछ सोचने लगे, फिर अपने साथियों और अमात्यों से परामर्श करने लगे। अमात्यों की चेष्टा से प्रकट होता था कि वे राज्यवर्द्धन को ऐसा करने से रोक रहे हैं। पर राज्यवर्द्धन तरुण और उग्र स्वभाव के थे। उन्होंने उनकी बात न मानी। वे बोले "महाराज! आप क्षत्रिय हो कर जब युद्ध की प्रार्थना कर रहे हैं तब आपकी इच्छा पूर्ण न करना मेरे लिए असंभव है। आप समय और स्थान निश्चित करें।"

"कल प्रातःकाल, सूर्योदय के पहले, गंगा के तट पर।"

"अस्त्रों में केवल तलवार रहे?"

"हाँ, ढाल किसी के पास न रहे।"

"साथ में कौन कौन रहें?"

"मेरे साथ माधव और अनंतवर्म्मा रहेंगे।"

"मेरे साथ भंडी और ईश्वरगुप्त।"

दोनों एक दूसरे से विदा होकर अपने अपने शिविर में गए। लौटते समय अनंतवर्म्मा ने कहा "महाराज! यह आपने क्या किया?"

"क्यों अनंत ?"

"कलियुग में कहीं कोई द्वंद्वयुद्ध करता है "

"हानि क्या है ?"

"आप क्या कह रहे हैं मेरी समझ में नहीं आता।"

"इसमें न समझ में आने की कौन सी बात है ?"

"प्रभो ! यदि युद्ध में आप घायल हुए तो ?"

"घायल छोड़ यदि मैं मारा भी जाऊँ तो इससे क्या ?"

"सर्वनाश, महाराज ! मगध देश फिर किसकी छत्रछाया के नीचे रहेगा ?"

"अनंत ? सच पूछो तो मैं मरना चाहता हूँ। मृत्यु को बुलाने के लिए ही मैं अकेले राज्यवर्द्धन के साथ युद्ध करने जा रहा हूँ।"

"आपको युद्ध करने का काम नहीं, चलिए पाटलिपुत्र लौट चलें। राज्यवर्द्धन अपना कान्यकुब्ज और प्रतिष्ठान लें।"

"यह नहीं हो सकता, अनंत ! न जाने कौन ऐसा करने से रोक सा रहा है। राज्यवर्द्धन यदि मुझे कायर ही समझकर संधि का प्रस्ताव मान लेते तो मैं बड़ी प्रसन्नता से उन्हें देश का अधिकार दे कर लौट जाता। मेरे न स्त्री है, न लड़का बाला, राज्य से मुझे कोई प्रयोजन नहीं। माधव राज्य की रक्षा करने में असमर्थ है, वह कभी इतना बड़ा साम्राज्य नहीं सँभाल सकता।"

"तब फिर साम्राज्य को भी जाने दीजिए, माधवगुप्त को मगध का राज्य देकर आप वानप्रस्थ ले लें।"

"हँसी की बात नहीं है, अनंत ! कल मैं मरूँगा। मेरे मर जाने पर तुम लोग देश में जाकर माधवगुप्त को सिंहासन पर बिठा देना।"

"अच्छी बात है, तो फिर जैसे उस बार वंगदेश से हमलोग लौटे थे उसी प्रकार इस बार भी लौटेंगे।"

"देखो, अनंत ! जब मैं मरने लगूँ तब मरते समय—" ।

"हृदय पर उसका नाम लिख देंगे ।"

"ठट्ठा न करो, उस समय नरसिंह को बुला देना ।"

"उन्हें कहाँ पाऊँगा ?"

"अनंत ! वे कहीं दूर नहीं हैं। मेरे सामने नहीं होना चाहते इसी से कहीं इधर उधर छिपे हैं ।"

"आप निश्चय समझें कि आपके पीछे नरसिंह को बुलाने के लिए यज्ञवर्म्मा का पुत्र बचा न रहेगा ।"

दूसरे दिन सूर्योदय के पहले भागीरथी के तट पर शशांक, अनंत और माधववर्म्मा और दूसरे पक्ष में राज्यवर्द्धन, भंडी और ईश्वरगुप्त इकट्ठे हुए। केवल हाथ में तलवार लेकर शशांक और राज्यवर्द्धन द्वंद्वयुद्ध में प्रवृत्त हुए। शशांक तलवार से केवल अपना बचाव कर रहे थे। उनकी तलवार एक बार भी राज्यवर्द्धन की तलवार पर न पड़ी। देखते देखते शशांक को कई जगह चोट आई, उनका श्वेत वस्त्र रक्त से रँग गया। फिर भी उन्होंने राज्यवर्द्धन के शरीर पर वार न किया। सहसा उनकी तलवार राज्यवर्द्धन की तलवार को हटा कर उनके गले पर जा पड़ी। झटके के कारण शशांक गिर पड़े। उनके साथ ही राज्यवर्द्धन का धड़ भी धूल पर लोट गया।

राज्यवर्द्धन की मृत्यु सुन कर थानेश्वर की सारी सेना शिविर छोड़ कर भाग खड़ी हुई। भंडी संवाद लेकर थानेश्वर गए। शशांक आगे न बढ़कर कान्यकुब्ज लौट आए।

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

यशोधवलदेव मृत्युशय्या पर

संध्या होती आ रही है। सूर्य्यदेव पश्चिम की ओर विंध्याचल की आड़ में छिपे जा रहे हैं। दूर पर पहाड़ की चोटियाँ और वृक्षों के सिरे अस्ताचलगामी सूर्य्य की तापरहित किरनों से सुनहरी आभा धारण किये हुए हैं। रोहिताश्वगिरि के सिरे पर एक लंबा मेघखंड क्रमशः लाल होता जा रहा है। पर्वत के नीचे अब गहरा अँधेरा छा गया है। इसी समय गढ़ के पूरबी फाटक पर एक सैनिक बैठा मानो किसी की प्रतीक्षा कर रहा है।

इन कई वर्षों के बीच रोहिताश्वगढ़ की दशा एक दम पलट गई है। बूढ़े अमात्य विधुसेन और स्वर्णकार धनसुख के उद्योग से गिरे हुए परकोटे फिर ज्यों के त्यों खड़े हो गए हैं, खाईं में जल भरा हुआ है। जो दुर्ग कभी सुनसान पड़ा था वह सैनिकों से भर गया है। प्रत्येक फाटक पर सहस्र सैनिक रक्षा पर नियत हैं। ऊपर ऊँचे दुर्ग पर बहुत से लोगों का शब्द सुनाई पड़ रहा है। गढ़पति का पुराना प्रासाद अब झाड़ जंगल से भरा नहीं है। कई दिन हुए रोहिताश्व के गढ़पति पीड़ित होकर पाटलिपुत्र से लौट आए हैं। महानायक की दशा अच्छी नहीं है, उनके बचने की आशा नहीं है। मरणकाल समीप जानकर ही वे अपनी जन्मभूमि को देखने की इच्छा से रोहिताश्वगढ़ आए हैं।

पाटलिपुत्र से सम्राट् के पास दूत भेजा जा चुका है। महानायक समझ गए हैं कि अब मेरा अंतिम समय निकट है। दूत से उन्होंने कह दिया था कि सम्राट् यदि युद्ध में विजयी हो चुके हों तभी संवाद

देना नहीं तो कुछ न कहना। मरने के पहले वे चाहते थे कि रोहिताश्व दुर्ग और लतिका के संबंध में सम्राट् से कुछ ठीक कर लेते। इसी से वे मन ही मन घबरा रहे थे। वीरेंद्रसिंह विद्याधरनंदी के साथ मध्यदेश की ओर गए थे, पर महानायक की आज्ञा पाकर वे रोहिताश्व लौट आए हैं। संध्या को वीरेंद्रसिंह ही दुर्ग के फाटक पर बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राज्यवर्द्धन के मरने पर सम्राट् को ज्यों ही यशोधवलदेव का समाचार मिला वे लौट पड़े। कान्यकुब्ज में वसुमित्र और प्रतिष्ठानपुर में विद्याधरनंदी को छोड़कर वे चट घोड़े की पीठ पर मगध की ओर चल पड़े। थानेश्वर में राज्यवर्द्धन की मृत्यु का संवाद पहुँचा। सिंहासन शून्य पड़ा रहा। अमात्यों और सेनापतियों ने बहुत दिनों तक हर्षवर्द्धन को अभिषिक्त न किया। ऐसी दुरवस्था के समय में भी शशांक नरेंद्रगुप्त ने थानेश्वर पर आक्रमण न किया। अपने प्रदेशों की रक्षा का प्रबंध करके वे चट पितृतुल्य वृद्ध महानायक के अंतिम दर्शन के लिये लौट पड़े। जिस दिन संध्या के समय वीरेंद्रसिंह फाटक पर प्रतीक्षा कर रहे थे उसी दिन सम्राट् के रोहिताश्वगढ़ पहुँचने की बात थी। वे बीस दिन में दो सौ कोस चल कर उस दिन सोन के किनारे आ पहुँचे।

संध्या हो गई और सम्राट् न आए यह देखकर यशोधवलदेव ने वीरेंद्रसिंह को बुलाया। वीरेंद्रसिंह भवन में जाकर द्वार पर खड़े रहे। घर के भीतर यशोधवलदेव पलग पर पड़े थे। उनके सिरहाने लतिका देवी और पैताने तरला बैठी थी। महानायक अत्यंत दुर्बल हो गए थे, अधिक बोलने की शक्ति उन्हें नहीं थी। जिस समय वीरेंद्रसिंह कोठरी में आए उस समय उन्हें झपकी सी आ गई थी। थोड़ी देर में जब उनकी आँख खुली, तब लतिका ने उनके कान में जोर से कहा, "बाबा! वीरेंद्र आए हैं"। महानायक ने करवट ली और बड़े धीमे स्वर में न

जाने क्या कहा। दूर रहने के कारण वीरेंद्रसिंह कुछ सुन न सके। यह देख लतिका ने कहा "बाबा पूछते हैं कि सम्राट् आए या नहीं"।

"नहीं अब तक तो नहीं आए हैं। मैं फाटक पर उनका आसरा देख रहा हूँ।"।

यशोधवलदेव ने फिर न जाने क्या कहा। लतिका देवी ने कहा "जापिल ग्राम के मार्ग में सौ पंसाखेवाले भेजने के लिए कहते हैं"। वीरेंद्रसिंह अभिवादन करके कोठरी के बाहर गए। थोड़ी देर में सौ आदमी हाथों में मशाल लिए जापिल के पत्थर जड़े हुए मार्ग पर थोड़ी थोड़ी दूर पर खड़े हुए। संध्या हो गई। दुर्ग के ऊपर बड़ा भारी अलाव जलाया गया। पहाड़ की घाटी में गाँव गाँव में दीपमाला जगमगा उठी। जापिल गाँव के पत्थरजड़े पथ पर बहुत से घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं। पंसाखेवाले जल्दी जल्दी गढ़ के फाटक की ओर बढ़ने लगे। यह देख दुर्गरक्षी सेना फाटक पर और आँगन में श्रेणी बाँधकर खड़ी हो गई। वीरेंद्रसिंह यशोधवलदेव को सम्राट् के आने का संवाद दे आए। थोड़ी ही देर में सम्राट् ने गढ़ के भीतर प्रवेश किया।

वीरेंद्रसिंह के मुँह से महानायक की अवस्था सुनकर शशांक तुरंत उन्हें देखने चले। उन्हें देखते ही बुझता हुआ दीपक एक बार जगमगा उठा। मृत्युशय्या पर पड़े वृद्ध महानायक के शरीर में बल सा आ गया। सम्राट् को देख कर वे उठकर बैठ गए। सम्राट् उनके चरण छूकर सिरहाने बैठ गए। उनके साथ साथ एक अत्यंत सुंदर युवक भी सैनिक वेश में आया था। वह पीछे खड़ा हो गया। तरला और लतिका बार बार उसकी ओर ताकने लगीं। उसे उन्होंने शशांक के साथ और कभी नहीं देखा था।

सम्राट् को संबोधन करके महानायक कहने लगे "पुत्र! तुम्हारी राह देखते देखते एक सप्ताह तक अपना प्राण रखता आया, पर अब

अधिक दिन नहीं रह सकता। मैं अब चला। लतिका आपकी शरण में है। यदि हो सके तो इसका विवाह करके इसे रोहिताश्वगढ़ में बिठा दीजिएगा, और—"। वृद्ध ने तकिये के नीचे से एक जड़ाऊ कंगन निकाल कर कहा, "जब इसका विवाह हो तब यह कंगन इसे देना। यह कंगन इसकी दादी का उपहार है। कई पीढ़ियों से यह रोहिताश्व-गढ़ की स्वामिनी के हाथ में रहता चला आया है। सुना जाता है कि जब महाराज चंद्रगुप्त ने मथुरा से शकराज को भगाया था तब रोहि-ताश्व के प्रथम गढ़पति ने शकराज के हाथ से यह कंगन छीना था"। वृद्ध हृदय के आवेग से आगे कुछ न कह सके और लेट गए। थोड़ी देर में गरम दूध पीकर वृद्ध महानायक फिर कहने लगे "पुत्र! अब मैं चारपाई से न उठूँगा। लतिका है, इसे देखना। यदि इसके वंश का लोप हो जाय तो रोहिताश्वगढ़ का अधिकार वीरेंद्रसिंह को दे देना। इस गढ़ की रक्षा करनेवाला इस समय और कोई नहीं दिखाई देता। मैं तो आज कल में चला, तुम सावधान रहना। तुम्हें मैं निष्कंटक करके न जा सका, यही बड़ा भारी दुःख रह गया। बाहरी शत्रु का तो तुम्हें कोई भय नहीं है। यदि घरके भीतर या देश के भीतर कोई झगड़ा न हो तो बाहरी शत्रु तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकता। इस समय आर्य्यावर्त्त में एक हर्षवर्द्धन ही तुम्हारे शत्रु हैं। पर कामरूप के राजा को छोड़ और कोई तुम्हारे विरुद्ध उनका पक्ष नहीं ग्रहण करेगा। राज्यवर्द्धन तो मर गए, पर प्रभाकरवर्द्धन के दूसरे पुत्र चुप-चाप न रहेंगे। हर्षवर्द्धन बदला लेने के लिए चढ़ाई करेंगे। उस समय तुम गौड़ और बंग की रक्षा का प्रबंध करना। यदि कभी किसी प्रकार की आपत्ति में पड़ना तो यह समझ लेना कि आर्य्यावर्त्त में कोई सहा-यता करने वाला नहीं है। उस समय दक्षिणापथ में जगद्विजयी चालुक्य राज मंगलेश के पास दूत भेजकर सहायता माँगना"।

बोलते बोलते वृद्ध यशोधवलदेव को कुछ थकावट आ गई। वे

आँख मूँदकर चुपचाप पड़े रहे। जब उन्होंने आँखें खोलीं तब उनकी दृष्टि कुमार के पीछे खड़े उस नए युवक पर पड़ी। उन्होंने सम्राट् के मुँह की ओर देखा। शशांक समझ गए कि वृद्ध महानायक उस युवक का परिचय चाहते हैं। शशांक ने पूछा "आर्य्य! समरभीति का आपको कुछ स्मरण है?" वृद्ध महानायक चकित होकर बोले "समरभीति तो मेरे बड़े भारी सुहृद थे। उनके सहसा देश छोड़कर कहीं चले जाने से मेरा दहिना हाथ टूट गया। उसी दिन से मैं और हारकर बैठ गया"। शशांक बोले "आर्य्य! उन्हीं के पुत्र सैन्यभीति आपके सामने खड़े हैं"। वृद्ध महानायक फिर उठ बैठे। युवक को अच्छी तरह देख वे बोले "हाँ! आकृति तो उन्हीं की सी है। भैया! पास आओ"। युवक ने वृद्ध के चरणों पर मस्तक रख दिया। महानायक आशीर्वाद देकर बोले "क्या नाम बताया? सैन्यभीति। ठीक है, समरभीति के पुत्र सैन्यभीति"। वृद्ध युवक की पीठ पर हाथ फेरते फेरते बोले "पुत्र ये तुम्हें कहाँ मिले?"

"कान्यकुब्ज में जब मैं राज्यवर्द्धन के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहा था उसी समय ये मेरे पास आए। प्रतिष्ठानपुर के युद्ध में भी वाराणसी भुक्ति की सेना के साथ ये मिलकर लड़ते रहे, पर किसी को इनका परिचय न था। कान्यकुब्ज में जाकर इन्होंने अपने को प्रकट किया। साम्राज्य की दुरवस्था के समय इनके पिता समरभीति चालुक्यराज मंगलेश के यहाँ दक्षिण चले गए थे"।

यशोधवल—सैन्यभीति! तुम्हारे पिता अभी हैं?

सैन्य०—आर्य्य! उन्हें मरे आज आठ वर्ष हुए। उस समय मेरी अवस्था पंद्रह वर्ष की थी। मरते समय जो कुछ उन्होंने कहा वह अब तक मेरे कानों में गूँज रहा है। पुत्र! गुप्तवंश को न भूलना। मैं अपने स्वामी महासेनगुप्त को दुरवस्था में छोड़ चला आया।

तुम इसका प्रायश्चित्त करना। महासेनगुप्त के वंश में जो कोई हो उसकी सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर देना। तभी मेरी आत्मा को शांति मिलेगी। थानेश्वर से मगध साम्राज्य को बड़ा भारी भय है। तुम सदा समुद्रगुप्त के वंशधर का साथ देना।

यशो०—धन्य! समरभीति धन्य! बेटा सैन्यभीति, तुम दक्षिण से यहाँ अकेले आए हो या तुम्हारे साथ कोई और भी है?

सैन्य०—एक आदमी और है।

यशो०—तुम्हारी स्त्री होगी?

सैन्य—नहीं, मेरी बहिन है मेरा तो विवाह ही नहीं हुआ है।

यशो०—उसे किसके यहाँ छोड़ा है?

सैन्य०—आर्य्य! वह यहीं है। आज्ञा हो तो ले आऊँ।

यशोधवलदेव के कहने पर सैन्यभीति बाहर गए और थोड़ी देर में एक अत्यंत रूपवती युवती को साथ लिए आ खड़े हुए। उसका रूप-लावण्य और दक्षिणी पहनावा देख सब मोहित से हो गए। शशांक भी उसकी ओर बड़ी देर तक ताकते रह गए। सैन्यभीति बोले—

"आर्य्य! जिस समय पिताजी महाराजाधिराज समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त के प्रताप और पराक्रम की कहानियाँ कहते थे हम दोनों भाई बहिन बड़े ध्यान से सुनते थे। उस समय हम दोनों के मन में यही होता कि किसी प्रकार समुद्रगुप्त के किसी वंशधर का दर्शन करते। कुछ दिनों में समुद्रगुप्त के वंशधर श्रीशशांक नरेंद्रगुप्त के बल और पराक्रम की बातें दक्षिण में पहुँचने लगीं। मुझसे वातापिपुर में न रहा गया। मैं चल खड़ा हुआ। मेरे साथ मेरी बहिन मालती भी हो ली। उसकी उत्कंठा मेरी उत्कंठा से भी कहीं अधिक बढ़ी हुई थी"।

यशोधवलदेव बोले "अच्छा, अब सब लोग जाकर विश्राम करो। मेरा जी अच्छा है। वीरेंद्र! समरभीति के पुत्र को अपने साथ रखो, देखना किसी बात का कष्ट न हो। लतिका! तुम बेटी मालती को अपने साथ ले जाओ"। सब लोग कोठरी के बाहर हुए।

—*—

बारहवाँ परिच्छेद

प्रत्याख्यान

सम्राट् को रोहिताश्वगढ़ आए आज बारह दिन हो गए। संध्या का समय है। गढ़ के अंतःपुर के प्रासाद के एक छज्जे पर लतिका, तरला और मालती बैठी हैं। मालती अब दोनों के साथ अच्छी तरह हिल मिल गई है। लतिका तो उसकी न जाने कब की पुरानी सखी जान पड़ती है। छज्जे पर बैठी तीनों युवतियाँ सोनपार के नीले पहाड़ों को देख रही हैं। लतिका बोली "क्यों बहिन मालती! तुम्हारे भाई तो बड़े भारी अश्वारोही योद्धा हैं। उनके साथ साथ तुम कैसे इन पहाड़ों को लाँघती हुई आई हो?"

"मैं भी घोड़े पर अपने भाई के साथ साथ बराबर आई हूँ"।

क्या इसी तरह काछा काछे हुए स्त्री के वेश में?"

"नहीं"।

"तुमने पुरुष का वेश क्यों धारण किया?"

"एक युवती को साथ लेकर चलने में भैया को बाधा होती, एक कारण तो यह था और दूसरा—"।

"और दूसरा ?"

मालती कुछ लज्जित सी हो गई। उसके मुँह से जो वह कहने जाती थी सहसा न निकल सका। यह देख लतिका बोली "देखो बहिन! मुझसे भी छिपाव रखती हो ?"

"नहीं बहिन तुमसे क्या छिपाना है ? बात यह थी कि मैं सम्राट् शशांक को देखना चाहती थी"।

लतिका और तरला ठठा कर हँस पड़ीं। तरला बोली "तो इसमें संकोच की क्या बात है ? अच्छा यह बताओ कि तुमने सम्राट् को जी भर कर देखा कि नहीं। न देखा हो तो मैं जाकर उन्हें यहाँ बुलाए लाती हूँ"। यह कहकर वह चल पड़ी। मालती ने उसे दौड़ कर जा पकड़ा और अपनी ओर खींचने लगी। लतिका ने कहा "तरला! तू सबको इसी प्रकार सताया करती है"। तरला ने कहा "घबराओ न, मैं सैन्यभीति को भी अपने साथ लिए आती हूँ"। इस बात पर न जाने क्यों लतिका लजा गई और तरला को मारने दौड़ी। इसी धमाचौकड़ी के बीच एक परिचारिका ने आकर तरला से कहा "आपको गढ़पति बुला रहे हैं"।

परिचारिका के साथ तरला धीरे धीरे वृद्ध महानायक की कोठरी में गई। यशोधवल आज कुछ अच्छे दिखाई देते हैं। कोठरी में और कोई नहीं है। तरला उनके पास जा खड़ी हुई। वृद्ध महानायक कहने लगे "तरला! जब से मैंने समरभीति के पुत्र को देखा है मेरे हृदय पर का एक बोझ सा हटा जान पड़ता है। स्वर्गीय समरभीति का वंश प्रतिष्ठा में धवलवंश के तुल्य है। वे मेरे बड़े सच्चे सुहृद थे। जब से मैंने उनका नाम सुना है उनकी वीर मूर्त्ति मेरी आँखों के सामने नाच रही है। थानेश्वरवालों का बढ़ता हुआ प्रभाव उन्हें असह्य हो गया। मगध साम्राज्य की दुर्दशा वे न देख सके! उन्होंने

सोचा कि चालुक्यराज द्वारा ही अन्याय से बढ़ते हुए थानेश्वर का गर्व दूर हो सकता है। हा! अपना मनोरथ वे लिए ही चले गए"। वृद्ध की आँखें डबडबा आईं, बोलते बोलते वे शिथिल हो पड़े। थोड़ी देर में वे फिर कहने लगे "मगध साम्राज्य को क्रमशः थानेश्वर की अधीनता में जाते देखना उन्होंने पाप समझा। जाते समय वे अपना हृदय अपने पुत्र को दे गए। तरला! जो प्रतिज्ञा लेकर मैं अपनी लतिका को किसी वीर को देना चाहता था उसी प्रतिज्ञा से बद्ध मेरे परम सुहृद के पुत्र को अंतिम समय में लाकर भगवान् ने मेरे सामने खड़ा कर दिया। उसकी महिमा अपार है। मेरे रहते यदि बात पक्की हो जाती तो मैं लतिका और रोहिताश्वगढ़ दोनों चिंताओं से छूट जाता"।

तरला—प्रभो! आप निश्चिंत रहें। यह बात आपके सामने ही हो जायगी।

यशोधवल०—एक बात का भारी खटका और है। यदि सम्राट् ने विवाह न किया तो फिर गुप्तवंश का क्या होगा?

तरला—प्रभो! इसकी चेष्टा भी मैं करती हूँ।

यशो०—अभी इसकी चेष्टा क्या करोगी? पहले सम्राट् के योग्य कन्या भी तो कहीं मिले।

तरला—कन्या तो मिली हुई है।

यशो०—कन्या मिली हुई है?

तरला—हाँ! वह यहीं है। सैन्यभीति की बहिन, मालती।

वृद्ध महानायक का चेहरा खिल उठा। वे बोल उठे "हाँ, हाँ! बहुत ठीक! रूप और गुण में तो अद्वितीय है।"

तरला—सम्राट् पर उसका अनुराग भी वैसा ही अद्वितीय है। पर सम्राट् के चित्त की जो अवस्था है वह बेढब है। उनका मन

फेरना सहज नहीं है। फिर भी मैं भर सक कोई बात उठा न रखूँगी।

यशो०—हाँ, तरला! ये दोनों काम हो जाते तो मैं आनंद से अपना जीवन समाप्त करता।

तरला वृद्ध का आशीर्वाद ग्रहण करके बाहर निकली।

दो पहर रात बीत गई है। कृष्ण पक्ष का टेढ़ा चंद्रमा निकल कर पर्वतमालाओं पर धुँधली आभा डाल रहा है। सम्राट् शशांक गढ़ के परकोटे पर अकेले टहल रहे हैं। वे खा पी कर सोने गए थे, पर उन्हें नींद न आई। वे शयनागार से निकल कर चाँदनी के प्रकाश में उज्वल परकोटे पर इधर उधर टहलने लगे। उस समय रोहिताश्वगढ़ के भीतर सब लोग सो रहे थे। फाटक को छोड़ और स्थान के दीपक बुझ गए थे। सम्राट् जब से रोहिताश्वगढ़ में आ कर ठहरे हैं तब से आस पास के पहाड़ी गावों में नित्य उत्सव होता है। किसी गाँव से गाने बजाने का शब्द बीच बीच में आ जाता है। सम्राट् को शयनागार से निकलते देख एक शरीर रक्षी उनके पीछे पीछे चला, पर सम्राट् के निषेध करने पर वह दुर्गप्राकार के नीचे अँधेरे में खड़ा रहा।

शशांक परकोटे पर से ही तोरण की ओर बढ़ने लगे। सहसा किसी के पैर की आहट सुनकर वे खड़े हो गए। उन्होंने देखा कि कुछ दूरपर उज्वल चाँदनी में श्वेत वस्त्र धारण किए एक स्त्री खड़ी है। सम्राट् ठिठक कर खड़े हो गए। चट उनका हाथ तलवार की मूठ पर जा पड़ा। उस समय बौद्धसंघ किसी न किसी उपाय से सम्राट् की हत्या करने के घात में रहता था। इसी से सम्राट् का हाथ तलवार पर गया। उन्होंने धीरे से पूछा "कौन है?" उत्तर मिला मैं हूँ तरला"। शशांक ने हँस कर तलवार की मूठ पर से हाथ हटा लिया और पूछा "तरला! इतनी रात को कहाँ?"

"महाराज यदि अभयदान दें तो कहूँ"।

"बेवड़क कहो"।

"महाराज! अभिसार को निकली हूँ"।

"मार डाला! क्या बीरेंद्रसिंह से जी भर गया?"

"वे तो अब बुड्ढे हो गए। जैसा समय आया है उसके अनुसार और न सही तो परोपकार के लिए ही दो एक रसिक नागर अपने हाथ में रहें तो अच्छा है"।

"तरले! बातों में मैं तुम से पार पा जाऊँ ऐसा वीर मैं नहीं हूँ। तुम्हारी बात कुछ समझ में न आई"।

"महाराज! जिन्हें भूख तो है पर लज्जा के मारे शिकार नहीं कर सकते ऐसों के लिए ही मुझे कभी कभी बाहर निकलना पड़ता है"।

"तुमने जिसका शिकार किया है क्या वह कुछ नहीं बोलता?"

"महाराज! उसकी कुछ न पूछिए"।

"बताओ तो किस पर लक्ष्य करके निकली हो?"

"आप पर"।

"मुझ पर?"

"हाँ महाराज!"

"यह कैसी बात, तरला?"

"महाराज—"।

"तरले! जान पड़ता है तुम कुछ भूलती हो"।

'नहीं महाराज! मैं भूलती नहीं हूँ"।

"तो फिर तुम क्या कहती हो?"

"मैं यही कहती हूँ कि कोई आपके ऊपर मर रहा है"।

"मेरे ऊपर? तरला, तुम क्या सब बातें भूल गई?"

"नहीं महाराज!"

"तो फिर?"

"क्या कहूँ महाराज! कौन किस पर क्यों मरता है, कौन कह सकता है?"

"उसे क्या संभव असंभव का भी विचार नहीं होता?

"महाराज! कहते लज्जा आती है, मन्मथ के राज्य में संभव असंभव का विचार नहीं है। और फिर हमलोगों की—जो आपके अन्न से पल रहे हैं—सदा सर्वदा यही इच्छा रहेगी कि राजभवन में पट्टमहादेवी आएँ और हमलोग उनकी सेवा करके जन्म सफल करें"।

"अब असंभव है, तरला!"

"महाराज! तो क्या—"।

"तो क्या, तरला?"

"तो क्या महाराज अपना जीवन इसी प्रकार बिताएँगे? आपके जीवन का अभी एक प्रकार से सारा अंश पड़ा हुआ है"।

"तरला! मैंने यही स्थिर किया है"।

"महाराज! फिर साम्राज्य का उत्तराधिकारी—?"

"क्यों, माधव का पुत्र?"

"हार गई, महाराज! पर अबला की प्राणरक्षा कीजिए"।

"वह है कौन, तरला?"

"जब किसी प्रकार की आशा ही नहीं तब फिर और बातचीत क्या? महाराज एक बार उससे मिल ही लें"।

"वह कहाँ है?"

"यहीं है"।

"यहीं है इसी रोहिताश्वगढ़ में?"

"हाँ महाराज! इसी गढ़ के परकोटे की छाया में"।

तरला आगे आगे चली। शशांक को एक स्वप्न सा जान पड़ा। वे उसके पीछे पीछे चले। दुर्ग के प्राकार की छाया में एक और रमणी

खड़ी थी। सम्राट् को अपनी ओर आते देख उसने सिर का वस्त्र कुछ नीचा कर लिया। सम्राट् ने पास जाकर देखा कि सैन्यभीति की बहिन मालती है!

तरला ने मालती के कान में न जाने क्या कहा। फिर सम्राट् की ओर फिर कर वह बोली "महाराज! आपने जो कहा मैंने मालती से कह दिया, फिर भी ये आप से कुछ कहना चाहती हैं। मैं हट जाती हूँ"। तरला इतना कह कर दूर चली गई। शशांक ने पूछा "मालती! तुम्हें मुझसे क्या कहना है?"

मालती चुप।

"क्या कहती हो, कहो"।

कुछ उत्तर नहीं।

"तुम्हें कहने में संकोच होता है, तरला को बुलाऊँ?"

बहुत अस्फुट स्वर में धीरे से उत्तर मिला "नहीं, प्रभो!"

"मुझ से क्या कहने आई हो?"

कोई उत्तर नहीं।

"मालती! मैंने सुना है कि तुम मुझे चाहती हो"।

मालती से फिर भी कोई उत्तर न बन पड़ा।

"तुमने तरला से तो सब सुना ही होगा। फिर जान बूझकर ऐसा क्यों करती हो? तुम परम प्रतिष्ठित भीतिवंश की कन्या हो। तुम्हारी सी सर्वगुणसंपन्ना अनुपम रूपवती को पाकर मैं अपने को परम भाग्यवान् समझता। पर मेरे भाग्य में नहीं है।" शशांक ने ठंढी साँस लेकर फिर कहा "तुम अभी एक प्रकार से अनजान हो, यदि भूल से इस बखेड़े में पड़ गई हो तो अब से जाने दो। सैन्यभीति तुम्हारे लिए उत्तम वर ढूँढकर तुम्हारा विवाह करेंगे।

मालती सिर नीचा किए हुए धीरे से बोली "असंभव, महाराज !" चौंककर सम्राट् ने पूछा "क्या कहा ?"

"असंभव" ।

"सुनो मालती ! मेरे लिए चित्रा ने प्राण दे दिया—मैं इस जीवन में उसे नहीं भूल सकता । मेरा शेष जीवन अब उसी पाप के प्रायश्चित्त में बीतेगा । मैं तुम्हें किस प्रकार अपने जीवन का साथी बना सकता हूँ ?"

अकस्मात् सिर का वस्त्र हट गया । उज्ज्वल चाँदनी चंद्रमुख पर पड़ी । सम्राट् ने देखा कि मालती ध्यान में मग्न है । बहुत देर पीछे उसने धीरे धीरे कहा—

"महाराज ! बाल्यावस्था से ही समुद्रगुप्त के वंशधर की कीर्ति इन कानों में पड़ती आ रही है । जिस मूर्त्ति की अव्यक्त भावना से सारा जगत् सौंदर्य्यमय दिखाई पड़ता था उसका साक्षात् दर्शन प्रतिष्ठानपुर में हुआ । जिन पिंगल केशों की चर्चा दक्षिण में मैं सुनती आ रही थी उन्हें प्रतिष्ठानपुर में आकर देखा । महाराज ! चपलता क्षमा हो, जो मेरे हृदय के प्रत्येक भाव के साथ मिला हुआ है, जो हृदय-स्वरूप हो रहा है, उसका ध्यान इस जीवन में किस प्रकार हट सकता है ?"

"मालती ! मेरे हृदय में जो भयंकर ज्वाला है उसका अनुभव दूसरा नहीं कर सकता । मैं सदा उसी ज्वाला में जला करता हूँ । मैं कभी उसे भूल नहीं सकता । इसके लिए मुझे क्षमा करो । जो तुम कहती हो वह इस जन्म में नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता । तुम्हारे मन को मुझसे जो कष्ट पहुँचा उसके लिए क्षमा करो । मैं बड़ा भारी अभागा हूँ, मेरे जीवन में सुख नहीं है । बौद्धाचार्य्य शक्रसेन ने यह बात मुझसे बहुत पहले कही थी, पर उस समय मैंने कुछ ध्यान न

दिया। जीवन मधुमय नहीं है, विषमय है। जो कुछ तुम्हारे हृदय में समा रहा है, उसे स्वप्नमात्र समझो, स्वप्न दूर करते क्या लगता है ?"

"महाराज ! वह स्वप्न अब प्रत्यक्ष हो गया है, अब किसी प्रकार हट नहीं सकता। मैं पट्टमहादेवी बनना नहीं चाहती, मुझे सिंहासन पर बैठने की आकांक्षा नहीं है, मैं महाराज के चरणों के नीचे रहकर सेवा में दिन बिताना चाहती हूँ" ! यह कह कर वह शशांक के चरणों पर लोट गई। हृदय के आवेग से व्याकुल होकर सारे आर्य्यावर्त्त के चक्रवर्ती सम्राट् शशांक नरेंद्रगुप्त बैठ गए और अत्यंत कातर स्वर से कहने लगे "मालती ! क्षमा करो। मैं ज्वाला से मरा जाता हूँ—विषम यंत्रणा है—चित्रा—"।

सम्राट् का गला भर आया। वे आगे और कुछ न कह सके। उनकी यह दशा देख मालती की आँखों से भी आँसुओं की धारा बहने लगी। उसने रोते रोते कहा "महाराज ! आपकी दशा देख मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। जिस मूर्त्ति का मैं रात दिन ध्यान करती थी उसे इस अवस्था में देखूँगी संसार की इस विचित्र गति का अनुमान मुझे न था। यदि इस लोक में कहीं चित्रादेवी होतीं तो मैं अपने प्राणों पर खेल उन्हें ढूँढ़ लाती और महाराज का प्रसन्नमुख देख कृतकृत्य होती। महाराज ! मैं पट्टरानी होना नहीं चाहती। राजभवन में सहस्रों दासियाँ होंगी, उन्हीं में मेरी गिन्ती भी हो। बस, मुझे और कुछ न चाहिए। मेरा जीवन स्वप्नमय है। इतनी ही विनती है कि इस स्वप्न का भंग न कीजिए। मैं महाराज के साथ छाया के समान फिरकर इस स्वप्न को चलाए चलूँगी। कोई मुझे रोक नहीं सकता।"

"यह नहीं हो सकता। कभी नहीं, मालती ? यह सब स्वप्न है—भूल जाओ—क्षमा करो।"

यह कह कर मगधेश्वर वहाँ से भाग खड़े हुए। उनके पिंगल केश

पीछे लहरा उठे। जब तक वे दिखाई पड़ते रहे मालती एकटक उनकी ओर ताकती रही।

तेरहवाँ परिच्छेद

अभिशाप

आज यशोधवलदेव के जीवन का अंतिम दिन है। पलंग के पास सम्राट् शशांक, वीरेंद्रसिंह, सैन्यभीति, लतिका, तरला, मालती और गढ़ के पुराने भृत्य आँखों में आँसू भरे खड़े हैं। वृद्ध महानायक निश्चेष्ट भाव से आँख मूँदे पड़े हैं। थोड़ी देर में उन्होंने आँख खोली और सम्राट् को संबोधन करके क्षीण स्वर से कहने लगे "पुत्र! मैं तो अब चला। वंशगौरव के उद्धार का जो व्रत तुमने लिया है उसपर दृढ़ रहना। हर्षवर्द्धन तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते। अन्याय से अर्जित थानेश्वर का साम्राज्य एक पीढ़ी भी न चलेगा। हर्ष के सामने ही वह छिन्न भिन्न होने लगेगा और हर्ष यह देखते हुए मरेंगे कि थानेश्वर का सिंहासन विश्वासघाती अमात्यों के हाथ में जा रहा है। यदि आजीवन मैंने क्षात्रधर्म का पालन किया होगा तो मेरा यह वचन सत्य होगा। जैसे लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं संभव है तुम्हारे कार्य्य में बाधा पड़े, पर निराश न होना। यदि मगध में रहना असंभव हो जाय तो माधवगुप्त को मगध के सिंहासन पर छोड़ दक्षिण की ओर चले जाना। पर यह देखते रहना कि थानेश्वर का कोई राजपुत्र या राजपुरुष मगध में प्रवेश न करने पाए। दक्षिण

में अपनी शक्ति बराबर बढ़ाते रहना। समुद्रगुप्त के वंश का प्रताप फिर चमकेगा"।

बोलते बोलते महानायक शिथिल हो पड़े। सम्राट् के नेत्रों से अश्रुधारा छूट रही थी। यशोधवलदेव ने फिर आँखें खोलीं और कहने लगे "पुत्र, मेरे लिए दुखी न हो। मैं बहुत दिन इस संसार में रहा। लतिका कहाँ है?" लतिका रोती हुई अपने दादा के पास आ खड़ी हुई। सैन्यभीति को अपने पास बुला लतिका का हाथ उन्हें थमा वृद्ध महानायक सम्राट् से बोले, "पुत्र! लतिका को मैंने समरभीति के पुत्र को अर्पित किया। शुभ मुहूर्त्त में इन दोनों का विवाह करा देना और विवाह के समय वह कंगन इसके हाथ में पहना देना। मुझे अब और कुछ कहना नहीं है। मैं आनंद से—पर एक बात—तुम अपना विवाह—"। सम्राट् का गला भरा हुआ था। उनके मुँह से एक शब्द न निकला। वृद्ध महानायक की चेष्टा भी क्रमशः मंद होने लगी। दूसरे दिन यह संवाद फैल गया कि रोहिताश्वगढ़ के अधीश्वर का परलोकवास हो गया।

महानायक के जब सब कृत्य हो चुके तब प्रतिष्ठानपुर से दूत संवाद लेकर आया कि हर्षवर्द्धन ने कान्यकुब्ज पर चढ़ाई की है। सम्राट् ने पाटलिपुत्र की तैयारी की। वृद्ध अमात्य विधुसेन की प्रार्थना पर सम्राट् ने रोहिताश्वगढ़ की रक्षा का भार सैन्यभीति को प्रदान किया। विधुसेन और धनसुख के हाथ में दुर्ग सौंपकर वीरेंद्रसिंह और सैन्यभीति सम्राट् के साथ पाटलिपुत्र गए।

हर्ष की चढ़ाई का संवाद पाते ही सम्राट् की आज्ञा का आसरा न देख सेनापति हरिगुप्त सेना सहित पश्चिम की ओर चल पड़े। राजधानी में लौटकर शशांक चरणाद्रि की तैयारी करने लगे। इधर महाधर्म्माधिकार नारायणशर्म्मा चाहते थे कि सम्राट् राजधानी न

छोड़ें। उधर माधववर्म्मा, अनंतवर्म्मा और वीरेंद्रसिंह युद्ध में योग देने के लिए अधीर हो रहे थे। शशांक बड़े असमंजस में पड़े। इधर जब से शशांक रोहिताश्वगढ़ से आए हैं तब से शक्तिहीन से हो रहे हैं। वे सदा अनमने से रहते हैं, उनका जी ठिकाने नहीं रहता। प्रत्येक बात का उत्तर वे कुछ चौंककर देते हैं। सम्राट् की यह अवस्था देख माधववर्म्मा और अनंतवर्म्मा अत्यंत विस्मित हुए। थानेश्वर की सेना एक बार हार चुकी थी सही पर हर्षवर्द्धन का प्रभाव आर्य्यावर्त्त में बहुत कुछ था। प्राचीन गुप्तवंश का गौरव फिर से स्थापित करने के लिए हर्षवर्द्धन का प्रभाव नष्ट करना अत्यंत आवश्यक है इस बात को छोटे से बड़े तक सब जानते थे। नए सम्राट् के नेतृत्व में कई बार विजय प्राप्त करके मागध सेना उमंग में भरी किसी नए अवसर का आसरा देख रही थी। पाटलिपुत्र के क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य को यह निश्चय हो गया था कि समुद्रगुप्त के वंशधर समुद्रगुप्त के साम्राज्य पर फिर अधिकार करेंगे। जय और पराजय, सिद्धि और असिद्धि के इस संधिस्थल पर नए सम्राट् को कर्त्तव्य-विमूढ़ देख गुप्तराजवंश के जितने हितैषी थे सब भाग्य को दोष देने लगे।

अदृष्ट चक्र किधर से किधर घूमेगा यह उस चक्रधर के अतिरिक्त और कोई नहीं कह सकता। जिस समय गुप्त-साम्राज्य के सेनानायक नवीन रणक्षेत्र के लिए अधीर हो रहे थे उस समय प्राचीन गुप्तसाम्राज्य का भाग्यचक्र दूसरा ओर मुड़ रहा था। बारंबार के आघात से नए सम्राट् का हृदय यदि जर्जर न हो गया होता, तरुणावस्था में ही चोट पर चोट खाते खाते शशांक का हृदय यदि दुर्बल न हो गया होता तो सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का इतिहास और ही प्रकार से लिखा जाता। बहुत संभव था कि लाख विघ्नबाधाओं के रहते भी शशांक-नरेंद्रगुप्त अपने पूर्वपुरुषों का सब अधिकार फिर प्राप्त कर लेते। पर भावी प्रबल है, भीषण से भीषण पुरुषार्थ उसे नहीं हटा सकता। इस

विषय में दार्शनिक पंडितों के बीच चाहे मतभेद हो, पर अदृष्टवादियों के निकट तो यह ध्रुव सत्य है।

जिस समय नए सम्राट् थानेश्वर के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहे थे वृद्ध धर्म्माधिकार सम्राट् से राजधानी में ही रहने के लिए बार बार अनुरोध कर रहे थे और युद्धव्यवसायी चटपट रणक्षेत्र में उतरने का परामर्श दे रहे थे। उसी समय पूर्णिमा के पूर्ण शशांक को ढाँकने के लिए, गुप्तसाम्राज्य की फिर से बढ़ती हुई कीर्त्तिकला को दृष्टि से ओझल करने के लिए, उत्तरपूर्व के कोने पर से एक काला मेघ उठता दिखाई पड़ा।

भगदत्तवंशीय कामरूप के राजा गुप्तवंश के सम्राटों के पुराने शत्रु थे। लौहित्या के किनारे कामरूपराज सुस्थितवर्म्मा महासेनगुप्त के हाथ से पराजित हो चुके थे। महावीर यज्ञवर्म्मा ने परशु का आघात अपने ऊपर लेकर सम्राट् की जीवनरक्षा की थी। शंकरनद के तट पर विलक्षण संयोग से कुमार भास्करवर्म्मा शशांकनरेंद्रगुप्त द्वारा हराए जा चुके थे। उस समय जो संधि हुई थी उसका पालन अब तक होता आया था। राज्यवर्द्धन के मरने पर जब हर्षवर्द्धन भाई की हत्या का बदला लेने और आर्य्यावर्त्त से शशांक का अधिकार लुप्त करने निकले तब कामरूपवालों ने भी अच्छा अवसर देख युद्धघोषणा कर दी। पाटलिपुत्र में बैठे बैठे शशांक ने सुना कि कामरूप की सेना शंकरनद पार करके वंगदेश की ओर बढ़ी आ रही है। कामरूप के राजाओं के इस आचरण का संवाद पाकर तरुण सम्राट् का मोह कुछ दूर हुआ। सोता हुआ सिंह जाग पड़ा। शशांक की नींद टूटी। सिर पर विपत्ति देखते ही उनका शैथिल्य हट गया। उन्होंने स्थिर किया कि वीरेंद्रसिंह और माधववर्म्मा भास्करवर्म्मा के विरुद्ध वंगदेश की ओर जायँ और वे आप अनंतवर्मा को साथ लेकर कान्य-

कुब्ज की ओर यात्रा करें। पुराने नौबलाध्यक्ष रामगुप्त और महा-धर्म्माधिकार नारायणशर्म्मा पाटलिपुत्र में रहकर मगध की रक्षा करें।

यात्रा करने के पूर्व एक दिन सम्राट् चित्रादेवी की फुलवारी में बैठे कान्यकुब्ज और प्रतिष्ठानदुर्ग से आए हुए दूतों के मुँह से युद्ध का वृत्तांत सुन रहे थे। लंबा भाला लिए अनंतवर्म्मा उनके पीछे खड़े थे। कान्यकुब्ज का दूत दुर्ग के भीतर घिरे हुए वसुमित्र की दुर्दशा का ब्योरा सुना रहा था। दूत कह रहा था "महाराजाधिराज! थानेश्वर की असंख्य सेना आकर नगर को घेरे हुए है। महानायक वसुमित्र सेना सहित दुर्ग के भातर घिरे हुए हैं। दुर्ग में यद्यपि खाने पीने की सामग्री कम नहीं है पर यदि साम्राज्य की सेना चटपट महानायक की सहायता के लिए न पहुँचेगी तो दुर्गरक्षा किसी प्रकार नहीं हो सकती। कान्य-कुब्जवाले बड़े विश्वासघाती हैं। वे धन के लोभ से चुपचाप दुर्ग का फाटक खोल दें तो आश्चर्य नहीं। अब तक तो खुल्लमखुल्ला उन्होंने कोई विरुद्ध आचरण नहीं किया है, पर विद्रोह होने पर नगर की रक्षा असंभव हो जायगी। नित्य थानेश्वर से नई नई सेना आकर दुर्ग पर धावा बोलती है। महानायक की सेना तो छीजती जा रही है पर शत्रु की सेना घटती नहीं दिखाई देती"।

शशांक—विद्याधरनंदी कहाँ हैं?

दूत—वे भी प्रतिष्ठानदुर्ग में घिरे हुए हैं।

शशांक—हरिगुप्त कहाँ तक पहुँचे हैं?

अनंत—प्रभो! उनकी अश्वारोही सेना चरणाद्रि के आगे निकल गई है।

शशांक—अनंत! चलो हम लोग भी कल यात्रा कर दें। माधव और वीरेंद्र यदि भास्करवर्म्मा को पराजित न कर सकेंगे तो भी उन्हें

बढ़ने न देंगे। यदि इस समय हमलोग चल कर हर्षवर्द्धन के पैर न उखाड़ेंगे तो साम्राज्य का मंगल नहीं है।

अनंत—प्रभो! मुझे तो आज्ञा मिले तो मैं इसी क्षण चलने के लिए प्रस्तुत हूँ। सैन्यभीति भी तैयार हैं।

शशांक—रोहिताश्वगढ़ की सेना तो वंगदेश की ओर जायगी।

अनंत—वे महाराज ही के साथ रहना चाहते हैं।

शशांक—अच्छी बात है। क्यों दूत! विद्याधरनंदी प्रतिष्ठानदुर्ग में कैसे घिर गए?

दूत—महाराजाधिराज! बौद्धाचार्य्यों के भड़काने से सारे मध्य-देशवासी विद्रोही हो गए हैं। बौद्धाचार्य्यों ने घूम घूम कर उपदेश दिया है कि राजा बौद्ध नहीं है इससे सद्धर्म्मियों को उसकी आज्ञा में रहना उचित नहीं है।

यह बातचीत होही रही थी कि फुलवारी के पीछे के पेड़ों के बीच से एक आदमी दौड़ा दौड़ा आया और सम्राट् पर एक बरछा छोड़ा। चट दूसरे पेड़ की ओट से महाप्रतीहार विनयसेन निकल कर सम्राट् के आगे खड़े हो गए। देखते देखते बरछा महाप्रतीहार की छाती को पार कर गया। विनयसेन का शरीर सम्राट् के पैरों के नीचे धड़ाम से गिर पड़ा। अनंतवर्म्मा दौड़ कर उस आततायी का सिर उड़ाना ही चाहते थे कि सम्राट् उन्हें रोक कर विनयसेन का घाव देखने लगे। शशांक ने देखा कि बरछा वृद्ध महाप्रतीहार के हृदय को चीरता हुआ पार हो गया है, पर वे अभी मरे नहीं है। थोड़ी देर में वृद्ध महा-प्रतीहार ने आँखें खोलीं। यह देख शशांक ने पुकारा "विनय!" क्षीण स्वर में उत्तर मिला "महाराज"।

"यह क्या किया?"

"महाराज ! पानी" ।

अनंतवर्म्मा ने जल ला कर महाप्रतीहार के मुँह में डाला। वृद्ध कुछ स्वस्थ होकर बोला "महाराज !—बौद्ध चक्रांत—भीषण षडयंत्र—दो महीने से—ये सब—आपकी—हत्या करने की—चेष्टा में थे—जल—मेरे मारे—कुछ कर नहीं—पाते थे—यह बुद्धश्री है—जल"।

अनंतवर्म्मा ने मुँह में फिर थोड़ा जल दिया। विनयसेन की छाती के घाव से रक्त की धारा छूट चली—धरती गीली हो गई। धीरे धीरे वृद्ध की चेष्टा मंद होने लगी—देह पीली पड़ चली। बड़े कष्ट से ये शब्द निकले "महाराज, शशांक—अब भी—बड़ी आशंका है—तुरंत—पाटलिपुत्र—परित्याग—सब—बौद्ध—शशा"। वाक्य पूरा होने के पहले ही वृद्ध ने मुँह से रक्त फेंका। प्राण निकल गया, सिर सम्राट् के पैरों पर पड़ा रहा। शशांक की आँखों से आँसू की धारा बह रही थी। उनका गला भर आया था, उनके मुँहसे इतना भर निकला "अनंत !—आज ही"।

"क्या महाराज ?"

"आज ही—पाटलिपुत्र परित्याग—"

"क्यों प्रभो ?"

"अनंत ! चित्रा, पिता, लल्ल, वृद्ध महानायक, अंत में ये विनयसेन भी—। आज ही मैं पाटलिपुत्र छोड़ता हूँ। रामगुप्त से कह आओ कि एक पक्ष के भीतर नगरवासी पाटलिपुत्र छोड़ दें। गीदड़, कुत्तों और चील कौवों को छोड़ पाटलिपुत्र में और कोई न रह जाय। मैं इसी क्षण पाटलिपुत्र छोड़ता हूँ। जो अपने को मेरी प्रजा समझता हो वह भी चटपट छोड़ दे। मैं शाप देता हूँ कि जो कोई यहाँ रहेगा उसका निर्वंश होगा, उसके कुल में कोई न रह जायगा, उसका मांस चील कौये खायँगे। बुद्धश्री को आग में जलाओ"।

उसी क्षण तरुण सम्राट् नंगे पैर नगर के बाहर हुए। एक पक्ष के भीतर प्राचीन पाटलिपुत्र नगर उजाड़ हो गया। कई सौ वर्ष तक शशांक के शाप के भय से कोई पाटलिपुत्र में न बसा।

चौदहवाँ परिच्छेद

आत्मोत्सर्ग

"क्या कहा ?"

"सच कहता हूँ, महाराज ! मैंने वंगदेश और प्रतिष्ठानपुर में उनका तलवार चलाना देखा था, उनका अद्भुत पराक्रम मैं देख चुका हूँ। वे तक्षदत्त के पुत्र थे। नरसिंहदत्त को छोड़ ऐसी अद्भुत वीरता और कोई नहीं दिखा सकता"।

"क्या यह सच है ?"

"सच है; महाराज ! बीस वर्ष इन्हीं हाथों में गरुड़ध्वज लेकर चला हूँ। जिन्होंने शंकरनद के किनारे और प्रतिष्ठानदुर्ग में नरसिंहदत्त को युद्ध करते देखा है वे क्या कभी उन्हें भूल सकते हैं ? महाराज ! इन्हीं हाथों में गरुड़ध्वज लिए हुए प्रतिष्ठानदुर्ग के परकोटे पर मैं चढ़ा हूँ, सहस्रों गौड़ वीरों की मृतदेह के ऊपर पैर रखता हुआ, सर्वांग में उष्णरक्त लपेटे मैंने उनका अनुसरण किया है। मैं उन्हें कभी भूल नहीं

सकता, महाराज। महाराज! मैं मंडलागढ़ का पुराना सैनिक हूँ, तक्षदत्त के समय का सेवक हूँ। इन्हीं हाथों से मैंने नरसिंहदत्त को खेलाया है। उनके पिता के साथ भी मैं युद्ध में गया हूँ। अंत में इन्हीं हाथों से उनके पुत्र को चिता पर रखे चला आता हूँ"।

"तो अब नरसिंह भी इस संसार में नहीं हैं। नरसिंहदत्त के जीते जी भला कब कान्यकुब्ज शत्रुओं के हाथ में जा सकता था? जब तक तक्षदत्त के पुत्र के शरीर में प्राण रहा तब तक थानेश्वर की एक मक्खी भी कान्यकुब्ज नगर में नहीं घुसने पाई। महाराज! नरसिंहदत्त वीर थे, वीर के पुत्र थे, वीर कुल में उत्पन्न थे। तक्षदत्त के पुत्र ने एक वीर के समान मृत्यु का आलिंगन किया। सनातन से तनुदत्त का वंश सम्राट् की सेवा में, साम्राज्य के कार्य्य में, अपना जीवन विसर्जित करता आया था। तनुदत्त के अंतिम वंशधर ने, मंडला के अंतिम अधीश्वर ने, भी अपने वंश का गौरव अखंडित रखा, अपने पूर्वजों की परंपरा का पालन किया—और यह अकर्मण्य वृद्ध जीता जागता महाराज को संवाद देने आया है। रणनीति बड़ी कठिन है; जी में तो मृत्यु की कामना भरी हुई थी पर रणनीति के अनुसार मुझे युद्धक्षेत्र को छोड़ कर मगध के निर्जन श्मशान में आना पड़ा"।

"और क्या क्या हुआ, कहो"।

"कहता हूँ; महाराज! कहता हूँ, सुनिए। जिस समय प्रतिष्ठानदुर्ग पर अधिकार हुआ था उस समय, महाराज! आप दुर्ग के फाटक तक ही पहुँच पाए थे। वृद्ध के मुँह से यदि कुछ कठोर शब्द निकलें तो क्षमा करना। जब आप फाटक पर पहुँचे थे तब तक दुर्ग के तीसरे प्राकार पर अधिकार नहीं हुआ था। समुद्रगुप्त के वंशधर समुद्रगुप्त के दुर्ग में निर्विघ्न प्रवेश करेंगे यही कह कर देखते देखते वे एक फलांग में दुर्ग के प्राकार पर चढ़ गए, मृत्यु के सामने उन्होंने अपनी छाती

कर दी–क्यों, इसको या तो आप जानते होंगे या वे ही जानते रहे होंगे। मृत्यु उन पर हाथ न लगा सकी, प्रतिष्ठानदुर्ग पर अधिकार हो गया। आपने दल बल सहित दुर्ग में प्रवेश किया। पर जिसने आपके लिए अपने प्राणों पर खेल दुर्ग का फाटक खोला उसका कहीं पता लगा ? चित्रा––महाराज! चित्रा उनके बड़े आदर की वस्तु थी। चित्रा ही के कारण उन्होंने आपको अपना मुँह न दिखाया। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि अब इस जीवन में आपको मुँह न दिखाएँगे। यही कारण है कि इतने बड़े राजराजेश्वर होकर भी आप उनका पता न पा सके। वे कहीं भागे नहीं थे, आप के साथ ही साथ रहते थे। भागना तो तनुदत्त के वंश में कोई जानता ही न था। प्रत्येक युद्ध में वे महाराज के साथ रहते थे, प्रत्येक रणक्षेत्र में वे आपकी पृष्ठरक्षा करते थे, पर आप उनको नहीं देख पाते थे"।

"सैनिक! मैं यह सब जानता हूँ, मैं इसे भूला नहीं हूँ। तुम्हारा भी मनुष्य का चोला है, अब और निष्ठुरता न करो, मुझे अब और न जलाओ, दया करो। नरसिंह और चित्रा का ध्यान मुझे सदा जलाता रहता है, तुम ज्वाला और न बढ़ाओ। नरसिंह नहीं रहे; उन्होंने मेरे लिए अपना प्राण निछावर कर दिया––यही बात मेरे हृदय को बराबर बेधा करती है। पर तुम कहते चलो, जब तक मैं अंत तक न सुन लूँगा तब तक मरूँगा भी नहीं"।

"सुनिए, महाराज! वृद्ध का अपराध मन में न लाना। मेरे स्त्री पुत्र कोई नहीं है, कभी कोई था भी नहीं। इन्हीं हाथों से तक्षदत्त के पुत्र और कन्या को मैंने पाला और इन्हीं हाथों से नरसिंहदत्त को चिता पर रखा। मेरे हृदय में भी बड़ी ज्वाला है। आपही तनुदत्त के वंशलोप के कारण हैं, आपही के कारण चित्रा मरी, महाराज! और आपही के कारण नरसिंह भी मरे। पर तुम हमारे महाराज हो, हमारे

परमेश्वर हो, नहीं तो सारा संसार यदि एक ओर होता तो भी मेरे हाथ से आपको बचा नहीं सकता था''।

"पर महाराज ! आप अवध्य हैं, आप हमारे देवता हैं क्योंकि आप महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के वंशधर हैं। अच्छा सुनिए, जब घूस पाकर कान्यकुब्जवाले विद्रोही हो गए तब महानायक वसुमित्र को विवश होकर नगर छोड़ना पड़ा। उस समय सारी सेना ने चुपचाप सिर झुका कर सेनापति की आज्ञा का पालन किया और कान्यकुब्ज छोड़ प्रतिष्ठान का मार्ग लिया। केवल दो सहस्र सेना ने महानायक की आज्ञा न मानी। एक सामान्य पदातिक उसका नेता हुआ। महाराज ! वे दो सहस्र सैनिक विद्रोही हुए। पर किस प्रकार विद्रोही हुए यह भी सुनिए। उन्होंने महानायक की आज्ञा की ओर कुछ ध्यान न दे दुर्ग की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया। उन्हीं लोगों के कारण कान्यकुब्ज दुर्ग के ऊपर गरुड़ध्वज चमकता रहा। यह नए ढंग का विद्रोह है, महाराज ! आपके राज्य में एक बार और ऐसा विद्रोह हुआ था। कुछ स्मरण है ? उस बार भी एक सामान्य पदातिक ने विद्रोह करके साम्राज्य के सिंहद्वार की रक्षा की थी ! महाराज ! तक्षदत्त के पुत्र को छोड़ और ऐसा कौन कर सकता है, और किसकी इतनी छाती है ?"

"महाराज ! साम्राज्य की सारी सेना प्रतिष्ठान लौट गई, पर दो सहस्र गौड़ और मागध वीर आपके लिए प्राण देने को कान्यकुब्ज के पत्थर के कारागार में रह गए। दो सहस्र लाखों के साथ कब तक जूझते ? पर जब तक उनके शरीर में प्राण रहा तब तक कान्यकुब्जदुर्ग के ऊपर गरुड़ध्वज खड़ा रहा। आँधी में उठी हुई तरंगों के समान जिस समय थानेश्वर की लाख लाख सेना क्षण क्षण पर दुर्ग पर धावा करती थी उस समय मुट्ठी भर वीरों ने मृत्यु की ओर अपनी छाती कर दी। कान्यकुब्ज के गंगाद्वार पर आघातों से जर्जर फाटक की रक्षा

करते समय तक्षदत्त के पुत्र चित्रा का सारा शोक भूल गए और अंत में परम शांति को प्राप्त हुए। महाराजाधिराज! उन्हीं की आज्ञा से मैं आपके निकट कान्यकुब्ज के युद्ध का संवाद देने आया हूँ। गंगातट पर गरुड़ध्वज को छाती पर रखकर आपका नाम स्मरण करते करते नरसिंह-दत्त अमरलोक को सिधारे। उसके पीछे दो सहस्र में से जो दस बीस बचे थे वे हाथ में खड्ग लेकर हँसते हँसते कान्यकुब्ज की समुद्र सी उमड़ती सेना के बीच कूद पड़े। महाराज! वे वीर थे, वे प्रातःस्मरणीय थे, उनमें से एक भी जीता न बचा"।

चरणाद्रिगढ़ के नीचे एक चट्टान पर बैठे शशांक वृद्ध सैनिक के मुँह से कान्यकुब्जदुर्ग के पतन का वृत्तांत सुन रहे थे। अनंतवर्म्मा पत्थर की मूर्ति बने उनके पीछे खड़े थे। कुछ दूर पर सहस्रों सैनिक मुग्ध होकर नरसिंहदत्त के अपूर्व वीरत्व की कहानी सुन रहे थे। कहानी पूरी होते होते मागध सेना गद्गद होकर बार बार जयध्वनि करने लगी। वृद्ध सैनिक मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। सम्राट् ठगमारे से पत्थर की चट्टान पर बैठे रहे।

थोड़ी देर में अनंतवर्म्मा ने धीरे से पूछा "सैनिक! क्या तुम महानायक नरसिंहदत्त की देह को कान्यकुब्ज में योंही छोड़ कर चले आए?" वृद्ध बोला "नहीं प्रभो! मैं नरसिंहदत्त का सब संस्कार करके तब कान्यकुब्ज से चला हूँ। उस समय भी युद्ध हो रहा था। वसुमित्र के नगर छोड़कर चले जाने पर थानेश्वर की सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया था। जब नरसिंहदत्त चिता पर गए तब गढ़ के भीतर जो योद्धा बचे थे वे फाटक खोलकर बाहर निकल आए और शत्रु की असंख्य सेना पर टूट पड़े"।

उनकी बात सुन कर शशांक को कुछ चेत हुआ। उन्होंने वृद्ध से कहा "भाई! तुम नरसिंहदत्त की आज्ञा का पालन तो कर चुके,

तुम्हारा काम तो पूरा हो गया। अब बताओ कहाँ जाओगे और क्या करोगे—?"

"कार्य्य तो हो चुका, महाराज ! अब मुझे और कुछ करना नहीं है। अब मृत्यु की खोज में बाहर निकलना है"।

"भाई ! इसके लिए तुम्हें दूर न जाना होगा। तुम मेरे साथ रहो, मृत्यु का नित्य सामना होगा"।

"कहाँ चलना होगा, महाराज ?"

"बस सीधे प्रतिष्ठानपुर"।

शशांक अनंतवर्म्मा के हाथ का सहारा लिए गढ़ के ऊपर चढ़ने लगे। सैनिक भी उनके पीछे पीछे चला।

———

पंद्रहवाँ परिच्छेद

सहाय्य प्रार्थना

सम्राट् की आज्ञा से प्राचीन पाटलिपुत्र नगर निर्जन हो गया। साम्राज्य की राजधानी कर्णसुवर्ण नगर में स्थापित हुई। कर्णसुवर्ण नदी से घिरे हुए एक टीले पर बसा था। स्थान सुरक्षित था और उसके चारों ओर का दृश्य अत्यंत मनोरम था। उत्तर राढ़ में अब तक

प्राचीन कर्णसुवर्ण नगर के खँड़हर फैले हुए हैं। नारायणशर्म्मा और रामगुप्त कर्णसुवर्ण आकर नया नगर निर्माण कराने में लगे। पाटलिपुत्र के नए और पुराने राजभवन गिरने पड़ने लगे।

शशांक पाटलिपुत्र छोड़ जल्दी जल्दी पश्चिम की ओर बढ़े। चरणाद्रिगढ़ में पहुँचकर उन्होंने हर्षवर्द्धन के कान्यकुब्ज पर अधिकार करने और नरसिंहदत्त के मारे जाने का संवाद पाया यह पहले कहा जा चुका है। हरिगुप्त ने आगे बढ़ कर प्रतिष्ठान को तो शत्रुओं के हाथ से छुड़ाया पर वे और विद्याधरनंदी मिलकर भी कान्यकुब्ज की ओर न बढ़ सके। पूर्व की ओर लौहित्या (ब्रह्मपुत्र) के किनारे जाकर वीरेंद्रसिंह और माधववर्म्मा ने भास्करवर्म्मा को रोका। शशांक ने प्रतिष्ठानदुर्ग में पहुँचकर सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। अखंड युद्ध चलने लगा। महीने पर महीने, वर्ष पर वर्ष बीत गए, पर युद्ध समाप्त न हुआ। हर्षवर्द्धन की प्रतिज्ञा पूरी न हुई। वे न तो राज्यवर्द्धन की मृत्यु का बदला ले सके, न शशांक को सिंहासन पर से हटा सके। युद्ध छिड़ने से पाँच छ वर्ष पर प्रवीण महाबलाध्यक्ष हरिगुप्त की मृत्यु हुई। उनके स्थान पर अनंतवर्म्मा नियुक्त हुए। कुछ दिन पीछे कर्णसुवर्ण नगर में महाधर्माध्यक्ष नारायणशर्म्मा की भी मृत्यु हुई। एक एक करके पुराने राजकर्मचारियों के स्थान पर नए नए लोग भरती होने लगे।

हर्षवर्द्धन जब किसी प्रकार से शशांक को पराजित न कर सके तब उन्होंने एक नया उपाय निकाला। हर्ष राजनीति की टेढी चालें चलने में बड़े कुशल थे। शशांक से युद्ध आरंभ होने के पहले ही कामरूप के राजा के साथ उन्होंने संधि कर ली थी। 'हर्षचरित' में बाण-भट्ट ने हर्ष के शिविर में कामरूप राज के दूत हंसवेग के आने का जो विवरण लिखा है उसके देखने से जान पड़ता है कि कामरूप के राजा ने अपने आप हर्ष से सहायता माँगी थी। उसके पहले से शशांक और थाने

श्वरराज के बीच युद्ध चल रहा था पर हर्षचरित में कहीं शशांक और कामरूपराज सुप्रतिष्ठित वर्म्मा या उनके छोटे भाई भास्करवर्म्मा के बीच किसी प्रकार के विग्रह का आभास नहीं पाया जाता। हर्षवर्द्धन का राज्य कामरूप के पास तक भी नहीं पहुँचा था अतः कामरूप के राजा आपसे आप क्यों थानेश्वर के राजा के साथ संधि करने गए यह बात अब तक ऐतिहासिकों की समझ में नहीं आई है। जान पड़ता है कि यह राष्ट्रनीति-कुशल हर्षवर्द्धन की एक चाल थी।

हर्षवर्द्धन ने जब किसी प्रकार युद्ध समाप्त होते न देखा तब उन्होंने माधवगुप्त को पाटलिपुत्र भेजा और उन्हें ही मगध का प्रकृत राजा प्रसिद्ध किया। बंधुगुप्त और बुद्धघोष की मृत्यु के पीछे महाबोधि विहार के स्थविर जिनेंद्रबुद्धि उत्तरापथ के बौद्ध संघ के नेता हुए। उनकी उत्तेजना से गौड़, मगध, वंग और राढ़ देश की बौद्ध प्रजा भड़क उठी। शशांक बड़े फेर में पड़े। उन्हें मगध की रक्षा के लिए सैन्यभीति को रोहिताश्वगढ़ और वसुमित्र को गौड़ नगर भेजना पड़ा। इसी बीच में कामरूपराज के भाई भास्करवर्म्मा ने वंगदेश के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। प्रतिष्ठानपुर में विद्याधरनंदी और कर्णसुवर्ण में रामगुप्त की मृत्यु हो जाने से शशांक को विश्वासपात्र पुरुषों का बड़ा अभाव हो गया। जो नए नए कर्मचारी हुए वे भीतर भीतर शत्रु की ओर मिलने लगे। हर्षवर्द्धन धन दे देकर सब को मुट्ठी में करने लगे। शशांक ने विवश होकर माधववर्म्मा को कर्णसुवर्ण लौट जाने की आज्ञा दी—और वे आप प्रतिष्ठानपुर में ही जमे रहे। शशांक के बहुत दिन राजधानी से दूर रहने के कारण मगध में घोर अव्यवस्था फैल गई। बौद्धसंघ के नेताओं की सहायता से माधवगुप्त ने रोहिताश्व, मंडला, पाटलिपुत्र और चंपा इत्यादि कुछ प्रधान दुर्गों को छोड़ मगध और तीरभुक्ति के और सब मुख्य मुख्य नगरों और ग्रामों पर अधिकार कर

लिया। माधववर्म्मा के कर्णसुवर्ण चले आने पर भास्करवर्म्मा ने सारे वंगदेश को अपने हाथ में कर लिया। ऐसे समय में शशांक को नरसिंहदत्त का अभाव बराबर खटकता और वे बार बार यशोधवलदेव, हृषीकेशशर्म्मा, नारायणशर्म्मा और विनयसेन ऐसे विश्वस्त कर्म्मचारियों का नाम लेकर दुखी होते।

बहुत दिनों तक युद्ध चलते रहने से राजकोष भी खाली हो चला। जिन प्रदेशों पर माधवगुप्त का अधिकार हो गया था उन्होंने राजस्व देना बंद कर दिया। सम्राट् को विवश होकर राजधानी की ओर लौटना पड़ा। उनकी आज्ञा से सैन्यभीति और वीरेंद्रसिंह विधुसेन के दोनों पौत्रों पर रोहिताश्वगढ़ की रक्षा का भार छोड़ प्रतिष्ठानपुर चले आए। शशांक अनंतवर्म्मा को प्रतिष्ठानदुर्ग में छोड़ आप कर्णसुवर्ण लौटना चाहते थे, पर नए महाबलाध्यक्ष ऐसे समय में सम्राट् का साथ छोड़ने पर सम्मत न हुए। शशांक कर्णसुवर्ण लौट आए। माधववर्म्मा भास्करवर्म्मा को रोकने के लिए बढ़े। एक वर्ष के भीतर वंगदेश पर फिर अधिकार हो गया। भास्करवर्म्मा शंकरनद के उस पार लौट गए। अनंतवर्म्मा और वसुमित्र ने मगध और तीरभुक्ति के विद्रोहियों का दमन किया। माधवगुप्त भागकर कान्यकुब्ज पहुँचे। साम्राज्य के कार्य्य फिर व्यवस्थित रूप से चलने लगे। राजस्व भी बराबर आने लगा। स्थाण्वीश्वर में फिर से चढ़ाई के लिए नई सेना भरती होने लगी। हर्षवर्द्धन को बौद्धाचार्य्यों से संवाद मिला कि सम्राट् शीघ्रही थानेश्वर पर चढ़ाई करनेवाले हैं।

इसी बीच जिनेंद्रबुद्धि के कौशल से वाराणसी, चरणाद्रि और प्रतिष्ठान की प्रजा बिगड़ गई। थानेश्वर की सेना ने सैन्यभीति और वीरेंद्रसिंह को प्रतिष्ठानदुर्ग मे घेरकर श्रावस्ती, वाराणसी, चरणाद्रि और प्रतिष्ठानभुक्ति पर अधिकार कर लिया। शशांक और अनंतवर्म्मा विवश

होकर राजधानी से चल पड़े। भास्करवर्म्मा को परास्त करके माधववर्म्मा दक्षिण कोशल पर अधिकार करने गए थे। वे कलिंग, दक्षिण कोशल, उड्र और कोंकद मंडल पर अधिकार करके लौट आए। उन्होंने आकर सुना कि सम्राट् और महाबलाध्यक्ष ने प्रतिष्ठान की ओर यात्रा की है, अवसर पाकर भास्करवर्म्मा ने वंगदेश पर फिर अधिकार कर लिया है और वसुमित्र उनसे युद्ध करने के लिए गए हैं, वृद्ध महादंडनायक रविगुप्त नगर की रक्षा कर रहे हैं। युद्ध में जयलाभ करके माधववर्म्मा जल्दी जल्दी राजधानी की ओर बढ़ रहे थे, उनकी सेना पीछे धीरे धीरे आ रही थी। कर्णसुवर्ण पहुँचकर उन्होंने देखा कि नगरदुर्ग की रक्षा के लिए केवल पाँच सहस्र सेना रह गई है। वृद्ध महादंडनायक उन्हें देख अत्यंत प्रसन्न हुए और उनके हाथ में राजधानी सौंप निश्चिंत हुए। माधववर्म्मा को राजधानी में इतनी थोड़ी सेना देखकर आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने दूत भेजकर अपनी सेना को चटपट कर्णसुवर्ण पहुँचने की आज्ञा दी। सम्राट् के राजधानी छोड़ते ही मगध और तीरभुक्ति में विद्रोह खड़ा हुआ। वाराणसी और श्रावस्ती पर अधिकार कर चुकने पर शशांक ने सुना कि तीरभुक्ति अधिकार से निकल गया और मगध के बौद्धों ने रोहिताश्व और मंडलागढ़ को घेर रखा है। बड़ी कठिनता से चरणाद्रि और प्रतिष्ठान का विद्रोह शांत करके उन्होंने सैन्यभीति को मंडलागढ़ की ओर दौड़ाया। थानेश्वर की चढ़ाई के लिए मगध, गौड़ और वंग से जो नई सेना इकट्ठी की गई थी उसे मगध और तीरभुक्ति का विद्रोह दमन करने में फँसी देख हर्षवर्द्धन निश्चिंत हुए।

अपने को चारों ओर विपज्जाल से घिरा देख एक दिन शशांक को वज्राचार्य्य शक्रसेन और उनकी भविष्यद्वाणी का स्मरण आया। बहुत पहले गंगा के तट पर वृद्ध वज्राचार्य्य ने जो जो बातें कही थीं उनमें से अधिकांश सत्य निकलीं। शशांक सोचने लगे कि इसी प्रकार और आगे की बातें भी ठीक घटेंगी। सोचते सोचते वज्राचार्य्य से एक बार

फिर मिलने की उन्हें बड़ी इच्छा हुई। बंधुगुप्त की मृत्यु के पीछे फिर वज्राचार्य्य शक्रसेन दिखाई नहीं पड़े थे। शशांक ने उन्हें कपोतिक महाविहार का आधिपत्य देना चाहा था, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया था। सम्राट् उनके दर्शन के लिए व्यग्र हो रहे थे। अकस्मात् एक दिन सबेरे वृद्ध वज्राचार्य्य एक वृक्ष की शाखा को दोनों जाँघों के बीच से निकाले प्रतिष्ठानदुर्ग की ओर आ निकले। शशांक उस समय कान्यकुब्ज की ओर यात्रा करने की तैयारी में थे। उन्होंने दुर्ग के फाटक पर वज्राचार्य्य को देख चकित होकर पूछा "आप कब आए? मैं तो इधर कई दिनों से आपकी खोज में हूँ"। वज्राचार्य्य ने हँसते हँसते कहा "महाराज! आपने स्मरण किया तभी तो चला आ रहा हूँ"!

"आपने कैसे जाना?"

"गणना द्वारा। महाराज! इस समय की तैयारी रोक दीजिए। आप कान्यकुब्ज न जा सकेंगे। आपको बहुत शीघ्र पूर्व की ओर जाना पड़ेगा"।

"आप क्या कहते हैं मैंने नहीं समझा"।

"महाराज! जो कुछ मैं कहता हूँ उसे मैं ही अच्छी तरह नहीं समझता, आपसे क्या बताऊँ—?"

"इस समय मैं बड़े संकट में पड़ा हूँ, इसीसे इधर कई दिनों से दिनरात आपका स्मरण करता हूँ"।

"महाराज! बाहरी शत्रु तो आपका बाल बाँका नहीं कर सकता सम्मुख युद्ध में हर्षवर्द्धन कभी आपको परास्त न कर सकेंगे"।

"पर मैं भी तो हर्षवर्द्धन को परास्त नहीं कर सकता हूँ"।

वृद्ध वृक्ष की शाखा दूर फेंक प्रतिष्ठानदुर्ग के पत्थर जड़े आँगन में

बैठ गए और वस्त्र के भीतर से खरिया निकालकर पत्थर पर अंक लिखने लगे। थोड़ी देर पीछे वज्राचार्य्य बोले "महाराज! आपके हाथ से हर्षवर्द्धन का पराजय नहीं है। भारतवर्ष भर में केवल एक ही व्यक्ति है जो हर्षवर्द्धन को ध्वस्त करेगा—दक्षिणापथ का अधीश्वर चालुक्यराज पुलकेशी"।

वज्राचार्य्य की बात पर शशांक को सहसा वृद्ध महानायक यशोधबलदेव की मरते समय की यह बात याद आई कि "विपत्ति पड़ने पर चालुक्यराज मंगलेश से सहायता माँगना"। मंगलेश तो उस समय मर चुके थे, द्वितीय पुलकेशी दक्षिण के सम्राट् थे। शशांक ने मन ही मन चालुक्यराज के पास दूत भेजने का निश्चय किया। इसी बीच वज्राचार्य्य सहसा बोल उठे "महाराज! मैं स्वयं वातापिपुर जाने को तैयार हूँ"। सम्राट् ने विस्मित होकर कहा "प्रभो! आप तो अंतर्यामी जान पड़ते हैं"।

"महाराज! जगत् में कोई अंतर्यामी नहीं है। भाषा जिस प्रकार लोगों के मन का भाव प्रकट करता है, आकृति भी अस्फुट रूप में मन का भाव प्रकट करती है"।

"तो आप स्वयं दक्षिण जाने के लिए तैयार हैं?"

"हाँ"।

"कब?"

"आज ही"।

उसी दिन संध्या को वज्राचार्य्य शक्रसेन सम्राट् शशांक नरेंद्रगुप्त के दूत बनकर दक्षिण की ओर चल पड़े।

— — —

सोलहवाँ परिच्छेद

कर्णसुवर्ण अधिकार

एक दिन रात के समय कर्णसुवर्ण के नए प्रासाद के अलिंद में माधववर्म्मा और रविगुप्त भोजन के उपरांत विश्राम कर रहे हैं। इतने में एक द्वारपाल ने आकर संवाद दिया कि कोशल से कुछ सैनिक आए हैं जो इसी समय महानायक माधववर्म्मा से मिलना चाहते हैं। माधव-वर्म्मा ने विरक्त होकर कहा "वे क्या कल सबेरे तक ठहर नहीं सकते ?" द्वारपाल ने कहा "हम लोगों ने उन्हें बहुत समझाया पर वे किसी प्रकार नहीं मानते, कहते हैं कि अत्यंत प्रयोजनीय संवाद है"। "उन्हें यहाँ ले आओ" कहकर माधववर्म्मा पलंग पर ही उठकर बैठ गए। द्वार-पाल तुरंत एक प्रौढ़ सैनिक को लिए हुए आया। सैनिक माधववर्म्मा को अभिवादन करके बोला "प्रभो! भयंकर संवाद है"। माधववर्म्मा सैनिक को देख घबराकर उठ खड़े हुए और पूछने लगे "नवीन! कहो क्या संवाद है"। बताने की आवश्यकता नहीं सैनिक और कोई नहीं वंगदेश का माँझी नवीनदास है।

नवीन ने कहा "प्रभो! हमारी सारी सेना अभी ताम्रलिप्ति तक भी नहीं पहुँची है। मैं अपनी नौ सेना लेकर अभी चला आ रहा हूँ। मार्ग में मैंने देखा कि गंगा के उस पार दूर तक न जाने किसके शिविर पड़े हैं। पश्चिम तट के सब गाँव उजाड़ पड़े हैं और घाट पर एक नाव भी नहीं है। आपको क्या अब तक इसका कुछ भी संवाद नहीं मिला ?"

"कुछ भी नहीं"।

"प्रभो ! तो फिर निश्चय है कि शत्रुसेना राजधानी पर आक्रमण करने आ पहुँची"।

"नवीन ! तुम चटपट बाहर जाओ, नगर के सब फाटक बंद करो और सैनिकों को युद्ध के लिये सन्नद्ध करो"।

नवीनदास अभिवादन करके चला गया। आधी घड़ी में नगर के भीतर स्थान स्थान पर शंखध्वनि हो उठी, नगर के प्राकार पर सैकड़ों पंसाखे दिखाई देने लगे। माधववर्म्मा ने रविगुप्त से सारी व्यवस्था कह सुनाई। रविगुप्त हँसकर बोले "अच्छी बात है, बताओ मुझसे भी कुछ हो सकता है"।

माधव ने कहा "हाँ हो सकता है"।

"क्या, बताओ"

"आप पाँच सहस्र पुररक्षियों को लेकर नगर की रक्षा करें। मेरी सेना के जितने लोग अब तक आ चुके हैं उन्हें लेकर मैं नदी के किनारे जाकर शत्रुसेना को देखता हूँ। तब तक आप नगर के फाटकों को दृढ़ करें"।

"अच्छी बात है। पर तुम लौटोगे कब ?"

"चाहे जिस प्रकार होगा सवेरा होते होते मैं नगर में लौट आऊँगा"।

रविगुप्त और माधववर्म्मा प्रासाद के बाहर निकले।

भास्करवर्म्मा की वंगदेश पर फिर चढ़ाई सुनकर वसुमित्र अधिकांश सेना लेकर उन्हें रोकने के लिए गए थे। उन्हें पीछे छोड़ भास्करवर्म्मा सीधे कर्णसुवर्ण पर आ धमकेंगे इस बात का उन्हें स्वप्न में भी ध्यान न था। वे [illegible] की [illegible] के लिए केवल पाँच सहस्र सेना छोड़ जल्दी जल्दी वंगदेश की ओर बढ़े जा रहे थे।

कुमार भास्करवर्म्मा वंगदेश के विद्रोहियों की सहायता से झटपट वालवल्लभी होते हुए भागीरथी की तटपर आ निकले। वसुमित्र ने मेघनाद के तट पर पहुँचकर देखा कि वंगदेश में उनका सामना करने के लिए कहीं कोई शत्रु नहीं है। पीछे उन्होंने सुना कि कामरूप की सारी सेना पश्चिम की ओर बढ़ गई है और लौटते समय उन्हें रोकने के लिए डटी हुई है। वसुमित्र ने युद्ध की तैयारी कर दी। युद्ध के आरंभ ही में उन्हें समाचार मिला कि भास्करवर्म्मा ने स्वयं पंद्रह सहस्र अश्वारोही लेकर कर्णसुवर्ण पर आक्रमण कर दिया है।

जिस दिन भास्करवर्म्मा ने कर्णसुवर्ण नगर पर धावा किया उस दिन नगर में केवल वसुमित्र के दल के पाँच सहस्र पदातिक, और माधववर्म्मा के दल के एक सहस्र अश्वारोही तथा दो सौ नौसेना नदी तट पर थी। माधववर्म्मा अश्वारोहियों को लेकर अँधेरे में शत्रुसेना को रोकने चले। नवीनदास अपने दो सौ माझियों को लेकर रविगुप्त के साथ नगर की रक्षा पर रहे। माधववर्म्मा दो पहर रात तक आसरा देखते रहे, जब शत्रुसेना का कहीं पता न लगा तब वे नगर को लौट आए। उनके नगर में घुसते ही कर्णसुवर्ण नगर चारों ओर से घेर लिया गया। भास्करवर्म्मा ने बहुत दूर जाकर नदी पार किया और चुपचाप अपनी सारी सेना लेकर वे नगर के किनारे आ पहुँचे।

सारी रात युद्ध होता रहा। नगर पर शत्रु का अधिकार न हो सका। रात ढलने पर दोनों पक्षों की सेना थककर विश्राम करने लगी। उस समय माधववर्म्मा रविगुप्त के साथ परामर्श करने बैठे। पहली बात तो यह स्थिर हुई कि वसुमित्र के पास संवाद भेजा जाय, दूसरी बात यह कि मंडला वा रोहिताश्वगढ़ सहायता के लिए दूत भेजा जाय। सम्राट् उस समय प्रतिष्ठानदुर्ग में थे, अतः उनके पास संवाद भेजना व्यर्थ समझा गया। नवीनदास स्वयं वसुमित्र के पास

संवाद लेकर गए। एक तरुण सेनानायक अपनी इच्छा से दूत होकर मंडला की ओर गया।

पहर दिन चढ़ते चढ़ते कामरूप की सेना ने फिर नगर पर आक्रमण किया। पहर भर तक युद्ध होता रहा। माधववर्म्मा और रविगुप्त ने कई बार शत्रुसेना को पीछे भगाया। तब तो भास्करवर्म्मा की सेना ने नगर के चारों ओर पड़ाव डालकर घेरा किया। भास्करवर्म्मा की सेना नित्य दो तीन बार नगर के प्राकार पर धावा करती, पर हार खाकर पीछे हटती। इसी तरह करते एक महीना बीत गया पर न तो वसुमित्र के शिविर से और न मंडलागढ़ से दूत लौटकर आया। कामरूप की सेना बार बार पराजित होकर भी निरस्त और हतोत्साह न हुई। यह देख माधववर्म्मा और रविगुप्त बड़ी चिंता में पड़ गए। लगातार लड़ते लड़ते दिन दिन सेना घटती जाती थी, पर शत्रु के शिविर में नित्य नई नई सेना आती जाती थी। कर्णसुवर्ण का प्राकार नया तो अवश्य था, पर वह पाटलिपुत्र या मंडला के प्राकार के समान दृढ़ और स्थायी नहीं था। प्राकार जगह जगह से गिरता जाता था। आक्रमण भी रोकना और उसे ठीक भी करना कठिन हो गया। धीरे धीरे दुर्ग के भीतर सेना का अभाव हो गया। माधववर्म्मा ने देखा कि अब नगररक्षा नहीं हो सकती। वे बचे हुए लोगों को लेकर शत्रु सेना को चीरते फाड़ते निकल पड़े। पास की शत्रुसेना मुट्ठी भर लोगों पर टूट पड़ी। रात अँधेरी थी। शेष शत्रुसेना को पता न चला कि कितने लोग बाहर निकल रहे हैं। जो जहाँ थे वहीं निकलनेवालों की खोज में व्यग्र हो उठे।

रात के सन्नाटे में केवल पाँच सात सैनिकों के साथ रविगुप्त और माधववर्म्मा शत्रुशिविर से बहुत दूर निकल आए। माधववर्म्मा

बोले 'अब क्या करना चाहिए? नगर तो शत्रुओं के हाथ में जा ही चुका, अब यही हो सकता है कि उनके बीच कूदकर वीर गति प्राप्त करें''।

रविगुप्त—इस समय ऐसा करना मैं नीतिविरुद्ध समझता हूँ। जब साम्राज्य में सेनानायकों का इस प्रकार अभाव हो रहा है तब यश की कामना से मृत्यु का आश्रय लेना मैं उचित नहीं समझता। साम्राज्य के भीतर कई स्थानों पर युद्ध ठना है। स्वयं सम्राट् युद्ध कर रहे हैं। इस समय उनके सहायकों की संख्या में कमी करना मैं धर्म नहीं समझता।

माधववर्म्मा—आप वृद्ध हैं, जैसा उपदेश देंगे वैसा ही करूँगा।

रविगुप्त—अब हमलोगों को सम्राट् के पास चलना चाहिए।

एक महीने में मेघनद के तट पर अपने शिविर में वसुमित्र ने सुना कि भास्करवर्म्मा ने कर्णसुवर्ण पर अधिकार कर लिया, पर पुररक्षकों में से कोई बंदी नहीं हुआ। दूर के रोहिताश्व और प्रतिष्ठानदुर्ग में कर्णसुवर्ण के पतन का समाचार जा पहुँचा। शशांक समझे कि नरसिंहदत्त के समान माधववर्म्मा ने भी साम्राज्य की सेवा में अपना जीवन विसर्जित कर दिया। सम्राट् प्रतिष्ठान छोड़ मगध को लौट आए। वसुमित्र भी लौट कर गौड़देश में पहुँचे।

सत्रहवाँ परिच्छेद

ऋण परिशोध का अंतिम प्रयत्न

शशांक मगध लौट आए। सोन के किनारे सैन्यभीति और मंडला में वसुमित्र और माधववर्म्मा उनके साथ मिले; भास्करवर्म्मा, माधवगुप्त और हर्षवर्धन तीनों ने मिलकर उन्हें रोकने का उद्योग किया; पर मंडलादुर्ग के सामने उनकी सेना बार बार पराजित हुई। माधवगुप्त तीरभुक्ति की ओर भागे, भास्करवर्म्मा ने कर्णसुवर्ण में जाकर आश्रय लिया। शशांक ने कर्णसुवर्ण घेरने का संकल्प किया।

माधववर्म्मा और रविगुप्त जिस समय कर्णसुवर्ण में घिरे हुए थे उसी समय एक तरुण सैनिक अपनी इच्छा से शत्रु के शिविर को पार करके मंडला और रोहिताश्व से सहायता भेजवाने के लिए गया था। वह तरुण सैनिक इस समय शशांक का बड़ा प्रियपात्र हो रहा है। कर्णसुवर्ण पर चढ़ाई करते समय सम्राट् ने उसे अपनी शरीररक्षी सेना में रखा।

सैनिक का नाम है रमापति। रमापति युद्ध के समय कभी सम्राट् के पास से अलग नहीं होता था और महाबलाध्यक्ष अनंतवर्म्मा के समान सदा अपने प्राणों को हथेली पर लिए रहता था। रमापति देखने में बड़ा ही सुंदर था। उसका रंग कुंदन सा था देह गठीली और कोमल थी, उसमें कर्कशता का लेश नहीं था। उसके लंबे लंबे काले घुँघराले बाल सदा पीठ और कंधों पर लहराया करते थे। वह जिस समय उन बालों के ऊपर रंगबिरंग का चीरा बाँधता था

उस समय उसे देखने से ऐसा जान पड़ता था कि पाटलिपुत्र का कोई वारांगना-विलासी नागर है, शरीररक्षी सैनिक नहीं हैं।

शशांक मंडला से कर्णसुवर्ण की ओर गंगातट के मार्ग से नहीं चले, उन्होंने जंगल पहाड़ का रास्ता पकड़ा। वसुमित्र और सैन्यभीति गंगातट के मार्ग से ही कर्णसुवर्ण की ओर चले। यह स्थिर हुआ कि शशांक तो अनंतवर्म्मा और माधववर्म्मा को लेकर दक्षिण की ओर से कर्णसुवर्ण पर आक्रमण करें और सैन्यभीति और वसुमित्र उत्तर की ओर से धावा करें। मंडला से चल कर एक महीने में सम्राट् जंगल पहाड़ लाँघते ताम्रलिति में आ निकले।

सारी अश्वारोही सेना आगे चलती थी। बीच में शरीररक्षी सेना सहित स्वयं सम्राट् थे और पीछे पदातिक सेना थी। जाड़ा बीतने पर वसंत के प्रारंभ में एक दिन संध्या के समय ताम्रलिपि नगर के पास सम्राट् का शिविर स्थापित हुआ। अश्वारोही सेना ने दस कोस और आगे वढ़कर पड़ाव डाला और पदातिक सेना पाँच छः कोस पीछे रही। दो पहर रात तक अनंतवर्म्मा और रमापति के साथ बातचीत करके सम्राट् अपने शिविर में सोए। सवेरे ही फिर उत्तर की ओर यात्रा करनी होगी, इससे शरीररक्षी सेना भी डेरों में जाकर सो रही। इधर उधर दस पाँच पहरेवाले ही जागते रहे। तीन पहर रात गए पहरेवाले बहुत से घोड़ों की टापों का शब्द सुनकर चौंक पड़े। उनके शंखध्वनि करने के पहले ही शिविर पर चारों ओर से आक्रमण हुआ।

सम्राट् के साथ एक सहस्र अश्वारोही सेना बराबर रहा करती थी। उस सेना में सब के सब सुशिक्षित, पराक्रमी और युद्ध में अभ्यस्त रहा करते थे। जब तक कोई युद्ध में अद्भुत पराक्रम नहीं दिखाता था तब तक शरीररक्षी सेना में भरती नहीं हो सकता था। इस प्रकार अकस्मात् आक्रमण होने पर भी शरीररक्षी सेना डरी या घबराई

नहीं। सब के सब अस्त्र लेकर सोए हुए थे। शंखध्वनि सुनते ही वे युद्ध के लिए उठ खड़े हुए। सम्राट् के डेरे में उनके पलंग के पास ही अनंतवर्मा और रमापति सोए थे। वे जब वर्म्म धारण करके डेरे के बाहर निकले तब शिविर के चारों ओर युद्ध हो रहा था। असंख्य शत्रुसेना ने अँधेरे में चारों ओर से आकर शिविर पर आक्रमण किया था। शरीररक्षी सेना अपने प्राणों पर खेल युद्ध कर रही थी, पर किसी प्रकार इतनी अधिक सेना को हटा नहीं पाती थी। सम्राट् को शिविर के बाहर देखते ही सब के सब जयध्वनि करने लगे। थोड़ी देर के लिए शत्रुसेना पीछे हटी, पर फिर तुरंत सहस्रों सैनिक मरते कटते शिविर में घुस आए। शरीररक्षी सेना हटने लगी।

सम्राट् के डेरे के सामने शशांक, अनंतवर्म्मा और रमापति युद्ध करने लगे। शत्रुसेना चारों ओर से शिविर में घुस आई थी। शरीररक्षी हटते हटते सम्राट् के शिविर की ओर सिमटते आते थे। इतने में सौ से ऊपर सैनिक अँधेरे में दूसरी ओर से आकर सम्राट् पर सहसा टूट पड़े। एक लंबा तगड़ा वर्म्मधारी योद्धा उनका अगुवा था। उसने सम्राट् को ताक कर बरछा चलाया। रमापति ने तुरंत सम्राट के आगे आकर बरछे को अपने ऊपर रोक लिया। बरछा रमापति की बाँह को छेदता निकल गया। रमापति मूर्छित होकर सम्राट् के पैरों के पास गिर पड़े। इसी बीच अनंतवर्म्मा ने उस लंबे तड़ंगे योद्धा के मस्तक पर तलवार का वार किया। उसके माथे पर से शिर-स्त्राण नीचे गिर पड़ा। उसका मुँह देखते ही अनंतवर्म्मा उल्लास से चिल्ला उठे। शशांक ने पूछा "अनंत! क्या हुआ?" अनंतवर्म्मा उस दीर्घाकार योद्धा के सिर पर तलवार तान कर बोले "प्रभो! चंद्रेश्वर!"

"कौन चंद्रेश्वर, अनंत!"

थोड़ी देर में सूर्य्योदय हुआ। सूर्य्य की किरनों के ऊपर पड़ने से शशांक को कुछ चेत हुआ। मालती ने इस बात को न देखा। वह भूमि पर पड़ी विलाप कर रही थी। सम्राट् ने उसके सिर पर हाथ रख कर पुकारा "अनंत!" मालती चकपका कर उठ बैठी "कौन?" शशांक ने अत्यंत क्षीण स्वर से पूछा "तुम कौन हो?"

मालती ने कहा "अहा जाग गए, सचमुच जाग गए। महाराज—महाराज! मैं हूँ, मालती। मैं रमापति नहीं हूँ—मैं सचमुच मालती हूँ। रोहिताश्वगढ़ से मैं बराबर साथ हूँ। एक दंड के लिए भी मैंने आपका साथ नहीं छोड़ा। पुरुष का वेश धारण करके मैंने जो जो किया वह किसी स्त्री से नहीं हो सकता। सदा तुम्हारे साथ रहने के लिए ही मैं रमापति के नाम से शरीररक्षी सेना में भरती हुई"।

"क्या कहा? मालती, तुम रमापति! कुछ समझ में नहीं आता—अनंत कहाँ है!"

"प्रभो! मुझे पता नहीं है।"

"अनंत—नहीं—नरसिंह—चित्रा। युद्ध में क्या हुआ?"

"प्रभो! युद्ध हो गया, माधवगुप्त की जीत हुई"।

माधवगुप्त की जीत की बात सुनते ही घायल सम्राट् उठ बैठे और बोले "माधवगुप्त की जीत? हर्षवर्द्धन की जीत कहो; कभी नहीं। यशोधवलदेव चले गए, नरसिंह चले गए, अनंत का पता नहीं। क्या हुआ? मैं तो हूँ, वीरेंद्र हैं, वसुमित्र हैं, माधववर्म्मा भी होंगे। प्राचीन गुप्त साम्राज्य का गौरव मैं फिर स्थापित करूँगा। पर—तुम कौन हो? तुम तो रमापति हो? नहीं—नहीं—तुम हो मालती। मालती, तुम कहाँ? नहीं तुम तो रमापति हो—तुम्हें इतने दिन तो मैंने नहीं पहचाना था—"।

"महाराज, प्रभो, स्वामिन्! मैं मालती ही हूँ। तुम्हें सदा देखते रहने के लिए ही अब तक रमापति बनी थी"।

"मालती—मालती—चित्रा! यह नहीं हो सकता"।

"न होने की कोई बात ही नहीं है, प्रभो! तुम्हें देखने की आशा से मैं दक्षिण से जंगल पहाड़ लाँघती इस देश में आई। लोक लज्जा आदि सब कुछ छोड़ बराबर साथ साथ फिर रही हूँ और फिरूँगी। मुझे और कुछ न चाहिए, बस इतना ही अधिकार मेरा रहने दीजिए। मैं और कुछ नहीं चाहती। आपके हृदय पर चित्रा का जो अधिकार है उसमें मैं कुछ भी न्यूनता नहीं चाहती। समुद्रगुप्त के वंश का जो गौरव उनके परम प्रतापी वंशधर के हृदय में विराज रहा है वही एक अबला के हृदय में भी जगा हुआ है। इसी नाते मुझे चरणों के समीप रहने का अधिकार दीजिए"।

"तुम अपना जीवन क्या इसी प्रकार नष्ट करोगी, कहीं विवाह न करोगी?"

"नहीं, महाराज! मुझसे विवाह करके संसार में कोई सुखी नहीं हो सकता, मैं देखती हूँ आप भी सुखी नहीं हो सकते। जिस बात से महाराज को दुःख होता है उसे कभी मैं अपने मुँह पर न लाऊँगी। जंगल जंगल पहाड़ पहाड़ महाराज के साथ फिरकर पहाड़ की चोटियों पर से, वृक्ष की शाखाओं पर से समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त और शशांकनरेंद्रगुप्त के विजयगीत गाऊँगी। मेरी वाणी से महाराज के मुख पर कुछ भी प्रफुल्लता दिखाई देगी, महाराज की सेना को कुछ भी उत्साह मिलेगा, तो मैं अपना जन्म सफल समझूँगी। बस, महाराज! मुझे और कुछ न चाहिए"।

बोलते बोलते मालती का मुख आवेश से रक्तवर्ण हो गया, सुनते

सुनते शशांक को तंद्रा सी आ गई, उनकी आँखें झपकने लगीं। उन्होंने क्षीण स्वर से कहा "रमापति—नहीं, नहीं—मालती—मैं तो देखता हूँ कि मेरे जीवन का अंत—अब—"।

"महाराज! यह क्या कहते हैं? तो फिर मेरे जीवन का भी आज यहीं अंत होगा"। मालती फिर विलाप करने लगी। सम्राट् फिर मूर्च्छित से हो गए। थोड़ी देर में आँख खोलकर बोले "चित्रा—नरसिंह—बड़ी प्यास—जल—"।

मालती सम्राट् को उस दशा में छोड़ कहीं जाना नहीं चाहती थी। पास में कहीं पीने योग्य जल मिलना भी कठिन था। उस बालू के मैदान में समुद्र के खारी जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता था। शशांक को प्यास से व्याकुल देख मालती बड़ी चिंता में पड़ गई। अंत में "अच्छा मैं जल लाने जाती हूँ" कहकर वह एक ओर गई। परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज शशांक-नरेंद्रगुप्त तपती बालू में प्यास से तलफते अकेले पड़े रहे!

इतने में वृक्ष की एक शाखा पर सवार वज्राचार्य्य चक्रसेन सम्राट् के सामने आ खड़े हुए और पुकारने लगे "महाराज—महाराज शशांक!" सम्राट् ने आँखें खोलकर जल मुँह में डालने का संकेत किया! वृद्ध वज्राचार्य्य बोले "महाराज! अदृष्टचक्र पूरा हुआ"। वृद्ध आर्य्य चट एक बूटी का रस शशांक के मुँह में डाल और घावों पर लगाते लगाते बोले "महाराज! वह बोधिसत्व नागार्जुन का लटका है। यह कभी व्यर्थ नहीं हो सकता"।

औषध मुँह में पड़ते ही सम्राट् का शैथिल्य हट गया, पीड़ा में भी बहुत कमी हो गई। वे सँभल कर बोले "प्रभो! यह आपने क्या किया? मुझे अब और क्या दिखाना चाहते हैं? हर्षवर्द्धन की कामना तो पूरी हुई"।

"नहीं महाराज ! माधवगुप्त का अपराध क्षमा कीजिए" ।

"माधवगुप्त ! आपकी बात समझ में नहीं आती है" ।

"महाराज ! समझ में तो मुझे भी नहीं आती है, अदृष्ट न जाने क्या क्या कहलाता है" ।

रमापति के वेश में मालती जल लिए आ पहुँची । जल मुँह में पड़ते ही-सम्राट् और भी स्वस्थ हुए । इतने में बहुत से अश्वारोहियों का शब्द कुछ दूर पर सुनाई पड़ा । देखते देखते सम्राट् के साथ की सारी अश्वारोही सेना उस बालू के मैदान में आ पहुँचा । अनन्तवर्म्मा ने आकर सम्राट् को अभिवादन किया । दो सैनिकों ने निःशस्त्र माधवगुप्त को लाकर शशांक के सामने खड़ा कर दिया । माधवगुप्त सिर नीचा किए चुपचाप खड़े रहे । शशांक ने बहुत दिनों से माधवगुप्त को नहीं देखा था । देखते ही स्नेह से उनका जी भर आया । वे बोल उठे "माधव !"

माधवगुप्त दौड़कर सम्राट् के चरणों पर गिर पड़े, उनकी आँखों से आँसुओं की धारा छूट चली । शशांक ने कहा "माधव ! तुम माधव के अधीश्वर और महाराज महासेन गुप्त के पुत्र होकर इतने कातर क्यों होते हो ?"

"भैया ! माधव—भिखारी—चरणों में स्थान—नहीं—महाराजाधिराज ! इस कृतघ्न का शीघ्र दंडविधान—" ।

"क्या हुआ, माधव ! तुम निर्भय होकर कहो" ।

माधवगुप्त के मुँह से एक शब्द न निकला ।

वज्राचार्य्य बोले "महाराज ! माधवगुप्त का भ्रम दूर हो गया है । हर्षवर्द्धन मगध के सिंहासन पर समुद्रगुप्त के किसी वंशधर को नहीं रखना चाहते । वे अपना कोई सामंत वहाँ भेजना चाहते हैं । माधवगुप्त को अपने साथ थानेश्वर और कान्यकुब्ज में रखना चाहते हैं"

शशांक—सेवा कराने के लिए—समुद्रगुप्त के वंशधर से ?

सम्राट् की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वे उठ बैठे और कड़क कर बोले "माधव! तुम समुद्रगुप्त के वंशधर हो। तुम्हारा मोह छूट गया, अब तुम मगध के सिंहासन के अधिकारी हो। तुम्हीं से यदि समुद्रगुप्त का वंश चलेगा तो चलेगा। मेरे स्त्री पुत्र कोई नहीं, और न कभी होंगे। मैंने अब तक विवाह नहीं किया है और न कभी करूँगा। मैं राज भोगने के लिए युद्ध नहीं कर रहा हूँ, मुझे राज्य की आकांक्षा नहीं है। मगध में गुप्तवंश का अधिकार स्थिर रखने के लिए ही मैंने शस्त्र उठाया है। मेरे जीते थानेश्वर राजवंश का कोई पुरुष या सामंत मगध के सिंहासन पर पैर नहीं रख सकता। अनंत!"

अनंत—महाराज!

शशांक—जिस प्रकार से हो माधवगुप्त को मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना होगा।

सम्राट् के मुँह से इतना निकलते ही अश्वारोही सेना जयध्वनि करने लगी। सम्राट् की पदातिक सेना भी पास आ गई थी। उसने भी शशांक का नाम लेकर भीषण जयध्वनि के बीच उस बालू के मैदान में रमणी के अत्यंत मधुर और कोमल कंठ से निकला हुआ गुप्तवंश के गौरव का गीत कहीं से आकर कान में पड़ने लगा। सब लोग मंत्रमुग्ध के समान चकित खड़े रहे। किसी को यह रहस्य समझ में न आया। सब यही समझे कि वनदेवी प्रसन्न होकर गा रही हैं।

सम्राट् ने पूछा "अनंत! वसुमित्र और सैन्यभीति कहाँ हैं?"

वज्राचार्य्य—महाराज के घायल होने का संवाद उन्हें भी मिल चुका है, वे भी पहुँचा चाहते हैं। महाराज! यशोधवलदेव की बात का स्मरण है?

शशांक—प्रभो ! कौन सी बात ?

वज्रा०—दक्षिण चले जाने की ।

शशांक—प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं ।

वज्रा०—महाराज ! सर्वज्ञ कोई नहीं—मैं तो लोकचर मात्र हूँ, एक स्थान पर कभी नहीं रहता । वसुमित्र और अनंतवर्म्मा अपनी सेना के साथ माधवगुप्त को ले जाकर मगध के सिंहासन पर बिठाएँ । हर्षवर्द्धन नहीं रोक सकते, उन्हें शीघ्र ही अपनी सेना पूर्व से हटानी पड़ेगी । आप माधवगुप्त को मगध के सिंहासन पर निर्विघ्न रखने के लिए कलिंग और दक्षिण कोशल के दुर्गम पहाड़ी प्रदेश में गुप्तवंश के गौरवरक्षक के रूप में अवस्थान करें । अदृष्ट चक्र की गति यही कह रही है । बस, महाराज !"

देखते देखते वृद्ध वज्राचार्य्य वृक्षशाखा पर सवार होकर बालू के मैदान में न जाने किधर निकल गए । फिर वे वहाँ दिखाई न पड़े । इतने में घोड़ों की टापें फिर सुनाई पड़ीं । एक दूत ने आकर सैन्यभीति, वीरेंद्रसिंह और माधववर्म्मा के आने का समाचार दिया ।

समुद्र के तट पर फिर शिविर स्थित हो गए । एक बड़े शिविर के भीतर सम्राट् शशांक, माधवगुप्त, अनंतवर्म्मा, माधववर्म्मा, सैन्यभीति और वीरेंद्रसिंह बैठकर मंत्रणा कर रहे हैं । स्थिर हुआ कि वसुमित्र, अनंतवर्म्मा और माधववर्मा माधवगुप्त को साथ लेकर मगध पर चढ़ाई करें । जब तक वे माधवगुप्त को मगध के सिंहासन पर बिठाकर न लौटें तब तक सम्राट् वहीं अवस्थान करें । उनके लौट आने पर दक्षिण की यात्रा हो । सैन्यभीति ने कहा—

"महाराजाधिराज ! मैं वातापिपुर से कई बार दक्षिणकोशल और कलिंग की ओर गया हूँ । मैं उन प्रदेशों से पूर्णतया परिचित हूँ । गुप्तवंश का स्मरण वहाँ की प्रजा में अब तब बना हुआ है । बौद्धसंघ

के अत्याचारों से दुखी होकर कलिंगवाले अब तक गुप्तवंश का नाम लेते हैं। कलिंग में पुष्पगिरि आदि संघाराम बड़े प्रबल हैं। बौद्ध आचार्य्य बालकों को पकड़ ले जाते हैं और संघ में भरती करते हैं। तांत्रिक बौद्ध बालकों को चुराकर बलि चढ़ा देते हैं। यह दशा वहाँ सैकड़ों वर्ष से है। प्राचीन वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के लिए बहुत से लोग समुद्रपार द्वीपांतरों में चले गए हैं। महाराज! आप धर्मरक्षक हैं, आपके ही हाथ उनका उद्धार हो सकता है।

शशांक—मैं अवश्य चलूँगा। बौद्धसंघ राजद्रोही हैं। इसी राजद्रोह के पाप से बौद्ध मत का चिन्ह तक इस देश में न रह जायगा।

डेढ़ महीने तक सम्राट् शशांक ताम्रलिप्ति में रहे। अनतवर्म्मा, माधववर्म्मा और वसुमित्र जिस समय अपनी सेना सहित माधवगुप्त को लेकर मगध में पहुँचे उस समय थानेश्वर की सेना देश छोड़ कर जल्दी जल्दी दक्षिणपश्चिम की ओर जा रही थी। यह देख कामरूप की सेना भी अपने देश लौट पड़ी। माधवगुप्त निर्विघ्न मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किए गए। थोड़े दिनों में सुनाई पड़ा कि दक्षिणापथ के सम्राट् द्वितीय पुलकेशी के हाथ से नर्मदा के तट पर हर्षवर्द्धन ने गहरी हार खाई। इसके उपरांत फिर हर्षवर्द्धन ने माधवगुप्त को मित्र छोड़ कभी सामंत आदि कहने का साहस न किया।

माधवगुप्त के सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही दिनों पीछे कलिंग और दक्षिण कोशल में "परमेश्वर परमभट्टारक परमभागवत महाराजाधिराज श्रीशशांक नरेंद्रगुप्त" की जयध्वनि गूँज उठी। प्राचीन वर्णाश्रम धर्म्म की मर्य्यादा वहाँ फिर स्थापित हुई। सम्राट् शशांक और उनके सामंत राजाओं की ओर से शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को बहुत सी भूमि मिली। इससे बौद्धसंघ का प्रभाव कम हुआ और तांत्रिकों का अत्याचार दूर हुआ।

उपसंहार

सम्राट् शशांक को कलिंग आए अठारह वर्ष हो गए। एक ऊँचे पहाड़ी दुर्ग के प्रासाद में राजर्षि शशांक पलंग पर लेटे हैं। उनके पार्श्व सोलह सत्रह वर्ष का एक बालक बैठा है। गुप्तवंश के गौरवगीत की मधुर ध्वनि दूर से किसी रमणी के कंठ से निकलकर आ रही है। सम्राट् कह रहे हैं—

"पुत्र, आदित्यसेन! अब तुम सयाने हुए। तुम सम्राट् महासेन-गुप्त के पौत्र हो। गुप्तवंश के गौरव की रक्षा अब तुम्हारे हाथ है। तुम्हारे पिता माधवगुप्त को मित्र कहकर हर्षवर्द्धन उत्तरीय भारत के सम्राट् बने हुए हैं। यह मित्रता एक मायाजाल मात्र है। मगध में गुप्तवंश के पूर्ण प्रताप की घोषणा के लिए यह आवश्यक है कि थानेश्वर से किसी प्रकार का संबंध न रखा जाय। तुम्हारे पिता के किए यह न होगा। यह तुम्हारे हाथ से होगा। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम गुप्तवंश के परमप्रतापी सम्राट होगे"।

समाप्त